



बोर सेवा मन्दिर
दिल्ली



२३८

क्रम संख्या

काल नं.

गण

१५०.८ पर्सन

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन घन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६]

महाकवि धनञ्जयविरचिता

नाममाला

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

अनेकार्थनिष्पण्टुः एकाक्षरीकोशथ



सम्पादक

प० शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, माननीर्थ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति
१००० प्रति }

चैत्र, वीरनि० स० २४७६
वि० सं० २००७
अप्रैल १९५०

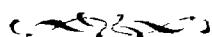
{ मूल्य
साढे तीन रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० पुण्यश्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
तन्मुपुत्र मेठ ज्ञानिप्रसाद जी द्वाग
संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

उस ग्रन्थमाला में प्राकृत मस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कल्प तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में
उपलब्ध आगमिक दायनिक पांचाणिक मार्तिन्यक और निर्वाचिक आदि विविध विषयों
जैनमार्तिन्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन, उसका मल और यथासम्भव अनवाद
आदि के साथ प्रकाशन होगा। जैन भवारों की मन्त्रिया शिलालङ्घ-
मग्रह विश्वाट विद्वानों के अध्ययनगृन्थ और लोकाहितकारी
जैन मार्तिन्य गृन्थ भी इसी गृन्थमाला में प्रकाशित होंगे।



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)
प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीनन्यायतार्थ, आदि
बौद्धदर्शनाध्यापक संस्कृत महाविद्यालय
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

प्रकाशक—

अयोध्याप्रमाद गोयलीय

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक—पृष्ठीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायत्राट, काशी।

स्थापनावद
फाल्गुन कृष्णा ९
वीर नि० स० २४७०

{ सर्वाधिकार सुरक्षित

{ विक्रम म० २०००
१८ फरवरी १९४४

नाममाला



स्व० मुनिंदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

SANSKRIT GRANTHA No 6

NAMAMALA

BY

MAHAKAVI DHANANJAYA

With the

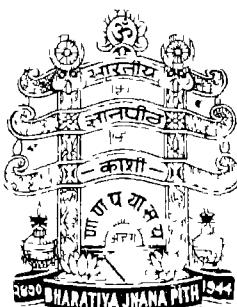
BHASHYA

OF

AMARAKIRTI

AND

The Anekartha mabhantu and Ekakshari Kosha



EDITED WITH NOTES

By

PUSSHAMBHU NATHA TRIPATHI

Vyakaranacharya Saptavita

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

First Edition
1000 Copies

CHAITRA VIRASAMVAT 2076
VIKRAM SAMVAT 2007
APRIL 1950

Price
Rs 3.8

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In memory of his late benevolent mother

SHRI MOORTI DEVI

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

In this Granthamala critically edited, Jain agamic, Philosophical, Pauranic literature, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit Apabhransha, Hindi, Kannada, Tamil etc will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies
of competent scholars and Jain literature of
popular interest will also be published

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

Prof MAHENDRA KUMAR JAIN

NY DUTCH IRYI, JAIN PRACHIN NYAYI FIRTHI Et.

Professor of Bauddha Darshana, Sanskrit Mahavidyalaya

Banaras Hindu University

SANSKRIT GRANTHA No. 6

Publisher

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

DURGAKUND ROAD, BANARAS CITY

Founded in
Falgun Krishna 9, }
Vir Sam 2470 }
All Rights Reserved }
} Vikram Samvat 2000
} 18th Feb 1944

FOREWORD

The Bharatiya Jnanapitha, Banaras, founded by Shri Shantiprasad Jain to perpetuate the memory of his mother Murtidevi, has undertaken an ambitious plan of scholarly publications dealing with all aspects of Ancient Indian Culture with a very broad outlook and vision, and has already issued a few works in various languages such as Sanskrit, Prakrit, Pali etc. The undertaking has secured a learned scholar of proved ability in Pandit Mahendra Kumar, Nyayacharya, of the Sanskrit Mahavidyalaya of the Banaras Hindu University as a General Editor. The Jnanapitha has already published a few works and has a number of others in active preparation.

The present volume contains two small works of the famous lexicographer Dhananjaya. The first is called NAMAMALA, a collection of synonyms, while the other is called ANEKARTHA—NAMAMALA, recording words with plurality of senses. The first work contains just 200 stanzas, while the other is smaller still. The most important feature of the first work is that it publishes for the first time the Bhashyas of AMARAKIRTI, who gives etymological explanations of each and every word in the work, and adds a few more synonymous words from his own observation. His Bhashyas follows the same methods as are used by Ksurasvamin in his famous commentary on AMARAKOSA. The entire work is very carefully edited with appropriate references to authorities by Pandit Shambhu Nath Tripathi, a Saptatirtha and also a Vyakaranacharya of repute. On reading his foot-notes, I often felt that Pandit Tripathi excels the Bhashyakara both in ingenuity and accuracy, nay, I would go further and say that his etymological explanations are happier still. I am sure the scholars will admire his work in the foot-notes.

The volume is further equipped with several indexes. They include naturally the word-indexes of both the works edited, but there are in addition index recording additional words from Amarakirti's Bhasya, a list of Yaugika words, a list of works and authors cited and a list of quotations cited in the work, all this being done by Pandit Mahadeva Chitravedi, Vyakaranacharya. In fact the editorial part of the volume is as thorough as is humanly possible, and I have nothing but high admiration for the ability of Pandit Mahendra Kumar, the General Editor, in securing such a team of scholars to produce this volume.

Banaras Hindu University
6th September 1949



P L V A I D Y A, M. A., D. Litt,
Mayurbhanj Professor and Head of The
Department of Sanskrit & Pali.

प्राकृकथन

(हिंदी अनुवाद)

अपनी पूज्य माता मूर्तिदेवीजी की स्मृति के लिए साहुशान्तिप्रसाद जी जैन द्वारा संस्थापित भारतीय ज्ञानपीठ बनारस ने विद्वत्तापूर्ण प्रकाशनों की एक उत्साहवर्धक योजना हाथ में ली है। प्राचीन भारतीय संस्कृत के विशाल दृष्टि व कल्पना बाले सभी अगों का प्रकाशन इस योजना के अन्तर्गत हैं तथा अब तक इस सम्प्ति से संस्कृत, प्राकृत, पाली, आदि विभिन्न भाषाओं के कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस योजना के सम्पादन के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के सुयोग्य विद्वान् प० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रधान सम्पादक के रूप में प्राप्त हैं। ज्ञानपीठ से अब तक कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कई एक प्रकाशन के लिए तैयार हैं।

वर्तमान ग्रन्थ में प्रसिद्ध कोशकार धनञ्जय को दो कृतियाँ सम्मिलित हैं। पहली नाममाला कहलाती है जिसमें पर्यायवाची शब्दों का संघर्ष है और दूसरी अनेकार्थ नाममाला, जिसमें अनेक अर्थ-बोधक शब्दों का संघर्ष है। पहली कृति में २०० श्लोक हैं जब कि दूसरी कृति उसमें काफी छोटी है। प्रथम कृति का सम्पूर्ण में उत्त्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर लिखा गया अमरकोटि का भाष्य पहले पहले प्रकाश में आ रहा है। अमरकोटि ने नाममाला के प्रत्येक शब्दों की व्युत्पत्ति देकर स्पष्टीकरण किया है आर अपनी दृष्टि में आए कुछ और पर्यायवाची शब्दों को शामिल कर दिया है। उनके भाष्य की वही सरणि पढ़ति है जो कि अमरकोश की प्रसिद्ध टीका में क्षीरस्वामी ने अपनायी है।

सम्पूर्ण कृति का सम्पादन स्थाननामा पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य संस्तीर्ण ने बड़ी सावधानी से तथा प्रभाणों का उपयुक्त उद्धरण देते हुए किया है। उनको टिप्पणियों का अध्ययन करने से, मुझे अनेक बार प्रतीत हुआ है कि पण्डित त्रिपाठी—युवित और शुद्धि दोनों में वही-कही भाष्यकार को भी मात कर गये हैं, इतना ही नहीं, उनके व्युत्पत्ति संबन्धी स्पष्टीकरण और भी अच्छे हैं। मुझे विश्वास है कि विद्वान् लोग टिप्पणी में त्रिपाठी जी के प्रयत्न को प्रशंसा करेंगे।

ग्रन्थ में अनेक अनुक्रमणिका लगा दी गई हैं। उनमें सम्पादन दोनों कृतियों की शब्द सूची का सम्मिलित होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु इसके अतिरिक्त अमरकोटि के भाष्य के अतिरिक्त शब्दों की सूची, योगिक शब्दों की सूची, उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ताओं की सूची तथा ग्रन्थ में उद्धृत वाक्यों की सूची भी सम्मिलित की गई है। यह सब पण्डित महावेद जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्यने किया है। सचमुच म ग्रन्थ का सम्पादकीय भाग उतना पूर्ण बना दिया गया है जितना मानवी शक्ति में सम्भव था। और इस सब के लिए मे प्रधान सम्पादक पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की योग्यता की संरक्षणा करता हूँ जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन में इस प्रकार की विद्वन्मण्डली को एकत्रित किया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
६ सितम्बर, १९४९

पी० एल० वेद
एम० ए० डौ० लिट०
मध्यरभज प्रोफेसर तथा
अध्यक्ष, संस्कृत पाली विभाग।

शब्दशिक्षा

"यद्यद्रहणि निषानं परन्नद्याधिगच्छति"-ज्ञानविनु०

शब्दशृङ्खला में पारगत व्यक्ति परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त इस बात को सूचना देता है कि साधक को पहिले शब्दशिक्षित और उसकी मर्यादा तथा भाव का ज्ञान आवश्यक है। यदि उसे शब्द के वाच्यार्थ भावार्थ और तात्पर्यार्थ की प्रक्रिया का बोध नहीं है तो वह भटक सकता है। बस्तुतः शब्द भावों के टोने का एक लगाड़ा बहन है। जब तक सकेतप्रहण न हो तब तक उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। एक ही शब्द सकेतभेद से भिन्न अर्थों का वाचक होता है। इसीलिए दर्शनशास्त्रों में एक पक्ष यह भी उपलब्ध होता है कि शब्द केवल वक्ता को विवक्षा को सूचित करते हैं, पदार्थ के वाचक नहीं हैं। 'धड़' शब्द का सकेत वक्ता ने जिस रूप में जिस श्रोता को ग्रहण करा दिया है उसी अभिप्राय का दौतन वह शब्द उस श्रोता को करा देगा। शब्द विद्यमान अर्थ को भी कहता है और अविद्यमान को। एक खरविषाण भी शब्द है जिसका अखड़ वाच्य पदार्थ इस सार में नहीं है और घट शब्द भी है जिसका वाच्य घड़ा मौजूद है। अतः शब्द के मम्बन्ध में यह निश्चय करना कि—यह शब्द अर्थवाची है और यह अनर्थवाची-टेही खीर है। फिर भी शास्त्रियों ने यह प्रयत्न किया है शब्द के सार्थकत्व और अनर्थकत्व का विवेक हो जाय।

उसका मुख्य उपाय है शक्तिप्रह या सकेतप्रहण। जिस अर्थ में जिस शब्द का सकेतप्रहण होता है वह उस अर्थ का वाचक हो जाता है। यह सकेत कब किसने ग्रहण कराया इसका निर्णय कर्त्तिन है। दीश्वर को सकेत ग्रहण कराने के लिए धमीटना श्रद्धा की वरतु है। उसका इतना ही अर्थ है कि वृद्धपरम्परा से शब्द सकेत का ग्रहण बराबर होता आया है और वह अनादि है। उसमें विशेष हेर फेर होकर भी सामान्यतया सकेत की परम्परा अनादि है। जब से यह जीव है तभी से शब्दसकेत है। इस सकेतप्रहण के उपाय निम्न लिखित हैं—

"शक्तिप्रह व्याकरणोपमानकोशानवाक्याद् व्यवहारनन्तः ।

वाक्यम्य शोपाद् विवृत्वंदिनि मानिष्यन् सिद्धपदम्य वृद्धा ॥"

अर्थात्—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशोष, विवरण और प्रसिद्ध शब्दके सान्निध्य से सकेत ग्रहण होता है। इनमें व्याकरण से यौगिक शब्दों का व्युत्पत्ति द्वारा सकेत ग्रहण हो भी जाय पर रुढ़ और योगरुढ़ शब्दों का सकेत ग्रहण व्याकरण से नहीं हो सकता। अन्ततः कोश ही एक ऐसा उपाय वक्ता है जिसमें सभी प्रकार के शब्दों का सकेत-ग्रहण हो जाता है।

कोश अर्थात् खजाना या भडार। व्याकरण से मिछ या वृद्धपरम्परा से प्रसिद्ध कैसे भी यौगिक रुढ़ या योगरुढ़ आदि शब्दों का अनेकार्थ के साथ सप्रह कोश में होता है। भाषा वही समृद्ध और जीवित समझी जाती है जिसका शब्द भडार पर्याप्त हो और जिसमें व्यवहार और परमार्थ के लिए उपयोगी सभी शब्द विद्यमान हों। जिसमें अन्य भाषाओं के या विदेशी शब्दों के पचाने की या उन्हें स्व-स्वरूप करने की सामर्थ्य हो। इस दृष्टि से सकृत भाषा उतनी समृद्ध नहीं बन सकी। इसका कारण यह रहा है कि इस भाषा पर एक वर्ग का प्रभुत्व रहा और उसने इसकी पाचन शक्ति को धर्म अधर्म के कल्पित बन्धन से जकड़ दिया था। उस वर्ग ने उस युग में प्रचलित अपभ्रंश और प्राकृत बोलियों का जो उस समय की जनबोलिया थीं उच्चारण करना पाया गया था। फिर भी सकृत की जो प्रकृति प्रत्यय उपर्युक्त आदि के योग से शब्दशोधन शक्ति थी

नाममाला

उसीके कारण यह बन्धनबद्ध होकर भी विद्वभौम्य अवश्य बनी रही। सस्कृत को लोकभाषा का पद या सबकी छोली होने का सौभाग्य नहीं मिल सका। इस भाषा सम्बन्धी धर्मधर्म विचार ने संस्कृत के कोशागार को भी सोमित कर दिया।

भाषा के एकाधिकारियों ने तो यहा तक कह डाला है कि अपभ्रंश या अन्य लोकभाषा के शब्दों में वाचक शक्ति ही नहीं है। यष्टि का अपभ्रंश लट्ठी या लाठी है। ये लट्ठी या लाठी शब्द में वाचकशक्ति स्वीकार नहीं करना चाहते। इनका कहना है कि वाचकशक्ति तो 'यष्टि' शब्द में ही है। लट्ठी या लाठी शब्द सुनकर जो श्रोता को लाठी पदार्थ का ज्ञान होता है उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम ही श्रोता लाठी शब्द को सुनकर सस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण करता है और किर उस 'यष्टि' शब्द से पदार्थबोध होता है। अर्थात् ऐसे श्रोता को जिसने स्वप्न में भी 'यष्टि' शब्द नहीं सुना उसे भी लाठी शब्द से पदार्थ बोध के लिए सस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण आवश्यक है।

इस भाषाभावित वर्णप्रभूत्व से सस्कृत भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन कर रह गई। पा० महाभाष्य के पृष्ठशा आत्मिक मे लिखा है कि—“तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छन वै, नापभाषित वै, म्लेच्छो ह वा एष अपयन्त्।” अर्थात् ब्राह्मण को न तो म्लेच्छ शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न अपभ्रंश कहा ही। अपशब्द म्लेच्छ है। अपशब्द का विवरण भी वहों यह दिया है—“ग्रन्ति तावच्छदोपदेश प्रियते, गौग्नियेनस्मिन्नपुर्दिण्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोजगद्वा इनि।” अर्थात्—गौ शब्द है और गावी गैया आदि अपशब्द है।

यद्यपि भाषा को सस्कृत रखने के लिए व्याकरण का सस्कार आवश्यक है तभी वह एक अपने निश्चित रूप में रह सकती है, लिंग और वचन का अनुशासन भी इसीलिए आवश्यक होता है, परन्तु उसके उच्चारण मे किसी जाति विशेष का या वर्ग विशेष का अधिकार मानने से उसकी व्यापकता तो रक्त ही जाती है। नाटकों में स्त्री, शूद्रों तथा दासों से प्राकृत भाषा का बुलबाया जाना उक्त रुद्धि का ही साक्षी है।

इन्हीं नहीं, धर्मक्षेत्र में साधु शब्द अर्थात् सस्कृत शब्द का उच्चारण ही पुण्य माना गया। इसका यह महज परिणाम था कि धर्म का ठेका भी भाषा प्रभूत्व के द्वारा एक वर्ग विशेष को मिला। हुआ भी यही। धर्म का अधिकार और उससे आर्थिक सम्बन्ध एक वर्ग का हो गया।

इस सम्बन्ध मे मौनिक क्रान्ति महावर्मण महावीर और बुद्ध ने की। उन्ने भाषा के इस कर्तिपत बन्धन को तोड़ कर जनभाषा में धर्म का उपदेश दिया और स्त्री शूद्र तथा पापर से पापर व्यवितयों के लिए धर्म का क्षेत्र खोला। धर्म के उच्च पद के लिए जाति का कोई बन्धन इन्हें स्वीकार नहीं किया। इस भाषाक्रान्ति से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। यह नहीं है कि प्राकृत भाषाएँ व्याकरण और लिगानुशासन से मुक्त हो। उनके अपने व्याकरण हैं, अपने नियम हैं, जिनके अनुसार वे पल्लवित पुष्टित और फलित होती रही हैं।

महावीर और बुद्ध के काल से लेकर इसकी तीसरी सदी तक प्राकृत भाषाओं को गति मिलती रही। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा मे उपलब्ध होते हैं। शासनादेश प्राकृत भाषा में चलते रहे हैं। पुन सस्कृत युग मे इन भाषाओं की गति मन्द पड़ी। इस युग मे जैन और बौद्ध आचार्यों ने भी ग्रन्थरचना सस्कृत में ही की। यही कारण है कि दोनों के विपुल साहित्य से सस्कृत का कोशागार भरा हुआ है। वार्षिक क्षेत्र में उथल पुथल तो नागर्जुन विजयग सम्बन्धद्वारा सिद्धासेन अकलक आदि के ग्रन्थों से ही भरी। तात्पर्य यह कि धर्मण परम्परा ने मध्यकाल में संस्कृत भाषा के विकास में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

नाममाला कोश का एक सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महाकवि धनञ्जय ने २०० श्लोकों में ही संकृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इनकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम, 'मनुष्य' के नामों के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से राजा के नाम, 'बृक्ष' के नामों के आगे 'चर' शब्द जोड़ने पर बन्दर के नामों का बन जाना आदि।

इसपर अमरकीर्ति विरचित भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्याकरणसिद्ध व्युत्पत्ति सूत्रनिर्वेश पूर्वक बताई गई है। उणावि से सिद्ध हो या अन्य रीति से पर कोई भी शब्द निवृत्यति नहीं रह पाया है। इन व्युत्पत्तियों की प्रामाणिकता के लिए महापुराण, पद्मनन्दि शास्त्र, यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामूल, द्विसन्धानकाव्य, बृहत्प्रतिक्रमण भाष्य, महाभारत, सूक्तिमुक्तावली, शब्दभेद, अनेकार्थधनिमञ्जरी, अमरसिंह भाष्य, आशाधर महभिषेक, नीतिसार, शाक्षत, हैमीनाममाला आदि ग्रन्थों तथा यश कीर्ति, अमरसिंह, आशाधर, इन्द्रनन्दि, क्षीरस्त्वामी, पद्मनन्दि, श्रीभोज, हलायुध आदि ग्रन्थकारों को नाम निर्देशपूर्वक प्रमाणकोटि में उपस्थित किया है। अनेक व्युत्पत्तिया तो अमरकीर्ति की कल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। यथा—

"प्रियों क्षुद्रजलवोदय स्पर्शेनि मरुत्" अर्थात् जिसके स्पर्श से क्षुद्र जन्तु मर जाय वह मरुत् है।

"न नन्दति भ्रातृजाया यस्या मत्या सा ननान्दा" जिसकी मौजूदगी में भौजाई खुश न हो वह ननादा—ननद है।

"यज्ञाना पशुकारणलक्षणानामरि यज्ञारि" अर्थात् पशुयज्ञ का विरोधी महादेव हैं। आदि।

इसके साथ ही एक अनेकार्थ निघण्टु भी मुद्रित किया गया है। इसके अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका लेख है—“इति महाकविधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शन्दसकीर्णे अनेकार्थप्रखण्डो द्वितीय-परिच्छेद ।” इसकी एक मात्र अशुद्धतम प्रति प० जुगलकिशोरजी मुख्तार अधिष्ठाता बीरसेवा-मन्दिर से प्राप्त हुई थी। रचना शैली आदि से यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं धनञ्जयकी कृति है, यद्यपि पुष्पिका वाक्य में स्पष्ट रूपसे धनञ्जय का उल्लेख है। इसके साथ ही एक अज्ञानकर्तृक एकाक्षरी कोष का भी मुद्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भा बीर-सेवा-मन्दिर से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत संस्करण—

अमरकीर्तिकृत भाष्य की एकमात्र अशुद्ध प्रति ऐलक पश्चालाल सरस्वती भवन झालरा-पाटन से प्राप्त हुई थी। इसीके आधार से इसका सम्पादन प० शम्भुनाथजी त्रिपाठी ने किया है। संस्करण में जो अनेक परिशिष्ट हैं वे सब प० महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने तयार किये हैं। टिप्पणिया प० शम्भुनाथ जी त्रिपाठी ने बड़े परिक्षम से लिखी हैं। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि उनके सर्वतोमुखी अगाध पाण्डित्य का परिचय टिप्पणी में पद पद पर मिलता है।

ग्रन्थकार

[महाकवि धनञ्जय]

नाममाला के कर्ता महाकवि धनञ्जय हैं। इन्होंने स्वयं अपने किसी प्रथ में अपने समय आदि के बारे में निर्देश नहीं किया है। ये गृहस्थ थे। द्विसन्धानकाव्य के अन्तिम इलोक की व्याख्या में उसके टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। इनकी ल्याति 'द्विसन्धानकवि' के नाम से थी। नाममाला के अन्त में पापा जानेवाला यह इलोक स्वयं इसका साक्षी है --

"प्रमाणमकलङ्घस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

द्विसन्धानकवे काव्य रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥"

अर्थात्-अकलङ्घदेव का प्रमाण शास्त्र, पूज्यपाद का लक्षण-व्याकरण शास्त्र और द्विसन्धानकवि का द्विसन्धानकाव्य ये तीनों अपूर्व रत्नत्रय हैं। यह इलोक नाममाला के भाष्यकार अमरकोटि के सामने था, उनने इसकी व्याख्या भी की है। इसमें इनका उप-नाम 'द्विसन्धानकवि' सूचित किया गया है। ठोक भी है, क्योंकि महाकवि धनञ्जय की सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिणी कृति द्विसन्धानकाव्य ही है। वरदिवारज सूरि ने पाश्वनाथ चरित के प्रशस्त में द्विसन्धान काव्य को प्रशस्त करते हुए लिखा है -

'अनेकभेदसन्धाना खनन्तो हृदये मुहु ।

वाणा धनञ्जयोन्मुक्ता कर्णस्येव प्रिया कथम् ।'

अर्थात् धनञ्जय के द्वारा कहे गए अनेक सन्धान-अर्थभेद वाले और हृदयस्पर्शी वचन कानों को ही प्रिय कंसे लगें जंसे कि अर्जुन के द्वारा छोड़े जाने वाले अनेक लक्षणों के भेदक मर्मभेदी वाण कण को प्रिय नहीं लगते ?

द्विसन्धान काव्य अपने समय में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख धाराधीश भोजगंज के समकालीन आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्त्तांड (पृ० ४०२) में किया है।

जल्दी (१२वीं सदी) विरचित सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के नाम से धनञ्जय की प्रशमा में निर्मलालित पद्म उद्भूत है--

'द्विसन्धाने निपुणता स ता चत्र धनञ्जय ।

यया जात फल तम्य सता चक्रं धनञ्जय ॥'

इस इलोक में राजशेखर ने धनञ्जय के द्विसन्धानकाव्य का मनोमुग्धकर सरणि से उल्लेख किया है।

धनञ्जय कवि के द्वारा एक विषाप्यहार स्तोत्र भी बनाया गया है। यह अपने प्रसाद ओज और गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह स्तोत्र कवि ने अपने सर्वदृष्ट पुत्र का विष उत्तारने के लिए बनाया था।

समयविचार-

इनके समय निर्णय के लिए निर्मलालित प्रमाण है --

(१) प्रमेयकमलमार्त्तांड आदि के रचयिता प्रभाचन्द्र (ई० १२वीं सदी) ने इनके द्विसन्धान-काव्य का उल्लेख किया है अत ये १२वीं सदी के बाद के विद्वान् तो नहीं हैं।

- (२) इसी तरह बाबिराज सूरि (सन् १०३५) ने पाश्वनाथ चरित में धनञ्जय और द्विसंधान का निवेद किया है अत ये ११वीं सदी के बाद के नहीं हैं।
- (३) जहाज (१२वीं सदी) ने राजशेखर के नाम से सूक्ष्मतमूकतावलों में जो पृष्ठ उद्भूत किया है, वह राजशेखर काव्यमीमांसाकार राजशेखर है। इनका उल्लेख सोमदेव (ई० ९६०) के यशस्तिलक चंभू में पाया जाता है अत राजशेखर का समय ई० १०वीं सदी मुनिश्चित है। राजशेखरके द्वारा प्रशस्ति होने के कारण धनञ्जय का समय १०वीं सदी के बाद का नहीं हो सकता।
- (४) डॉ० हीरालालजी ने षट्हंडागम प्रथम भाग की प्रस्तावना (पृ० ६२) में यह भूचित किया है कि जिनसेन के गुरु बीरसेन स्वामी ने धबला टीका (पृ० ३८७) में अनेकार्थ नाममाला का निष्पत्तिलिखित इलोक प्रमाणरूप में उद्भूत किया है—

‘हेतावेव प्रकाराच्यै व्यवच्छेदे विपर्यये।

प्रादुभर्वि समाप्तौ च इतिगद्व विदुरुधा ॥’

यह इलोक अनेकार्थ नाममाला का है। धबलाटीका वि० स० ८७३ सन् ८१६ में समाप्त हुई थी अत धनञ्जय का समय ११वीं सदी के बाद नहीं हो सकता।

- (५) धनञ्जय ने अकलक देव का उल्लेख ‘प्रमाणमकलङ्कस्य’ इलोक में किया है। अकलक का समय ई० ७वीं सदी निश्चित है, अत धनञ्जय ७वीं सदी से पूर्व के नहीं हो सकते।

सस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास के लेखकद्वय ने धनञ्जय का समय ई० १२वा शतक का माय निर्धारित किया है। (पृ० १७४) उनने अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ० बी० पाठक महाशय का यह मत^१ भी उद्भूत किया है कि—“धनञ्जय ने द्विसंधान महाकाव्य की रचना ई० ११२३ और ११४० के मध्य में की है”。 पर उपरोक्त प्रमाणों के आधार से धनञ्जय का समय ई० ८ वीं सदी का अन्त और नवीं का पूर्वार्ध सिद्ध होता है। जलहण की सूक्ष्मतमूकतावली में जो ई० १२वीं सदी की रचना है, राजशेखर के नाम से उद्भूत ‘द्विसंधाने निपुणता’ इलोक काव्यमीमांसाकार राजशेखर का ही हो सकता है, न कि प्रबन्धकोश के कर्त्ता राजशेखर का। सस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखकद्वय यहाँ आन्ति कर चूंठे हैं, वे स्वयं जलहण को १२ वीं सदी का विद्वान् लिखकर भी उसमें उद्भूत राजशेखर को १४वीं सदी का जैन राजशेखर बताते हैं।

अत धनञ्जय का समय उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार से ई० ८वीं का उत्तर भाग और नवीं का पूर्व भाग प्रमाणित होता है।

भाष्यकार अमरकीर्ति—

महापण्डित अमरकीर्ति ने नाममाला के भाष्य के अन्त में यह पुलिष्का वाक्य लिखा है—“इति महापण्डितश्रीमद्मरकीर्तिना त्रैविद्येन श्री ऐन्द्रवशोत्पन्नेन शब्दवेदेषां कृताया धनञ्जयनाममालाग्रां प्रथमकाण्ड व्याख्यातम्” इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अमरकीर्ति ‘त्रैविद्य’ उपाधि से विभूषित थे और वे सेन्द्रवश (सेनवश) में उत्पन्न हुए थे।

इन्होंने अपने को ‘शब्दवेदा’ उपाधि से अलगकृत किया है।

मंगल इलोकों में पूज्यपाद अकलङ्क विद्यानन्द और समन्तभाद्र के साथ ही साथ एक कत्याण-

१ इसी के आधार से कल्पद्रुकोश की प्रस्तावना (P XXXII) में श्री गमावतार शर्मा ने भी भी धनञ्जय का समय १२वीं सदी लिखा है।

कीर्ति को भी नमस्कार किया है। इन्होंने प्रन्थ के बीच में जहा आवश्यकता भी नहीं है वहाँ भी अपना नाम देने में सकोच नहीं किया है। कई स्थानों पर धनञ्जय के श्लोकों की उत्थानिका में भी “सम्प्रति भनुष्वर्गं आरभ्यते अमरकीर्तिना” (प० १३) अद्वि लिखा है। जो स्पष्टत, अम उत्पन्न करता है। एक जगह तो धनञ्जय के इस श्लोकाश्र की व्याख्या करते हुए स्वयं अपना ही नाम लिख दिया है—“वारिधिर्वर्ष्यतेऽधुना। अवुना डुदानीं वारिधिर्वर्ष्यते कथयते। केन भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना। स्पष्टतया यहा ‘केन’ का उत्तर ‘धनञ्जयन’ होना चाहिए था।

अमरकीर्ति नाम के तीन विद्वानों का पता लगता है—

(१) ‘छक्कमोवएस’ आदि प्रन्थों के रचयिता अमरकीर्ति^१। इन्होंने वि० स० १२४७ भादो सुबी १४ के दिन छक्कमोवएस प्रन्थ समाप्त किया था। अर्थात् ये ईसदीय १२वीं सदी के अन्तिम भाग और तेरहवीं के प्रारम्भ में विद्यामान थे। ये अमितगति आचार्य की परम्परा में हुए हैं। इनकी गुण परम्परा यह है:—अमितगति, शान्तिषेण, अमरसेन, श्रीषेण, चन्द्रकीर्ति और चन्द्रकीर्ति के शिष्य अमरकीर्ति।

(२) वर्धमान के प्रगृह अमरकीर्ति। इनकी परम्परा इम प्रकार है^२। . देवेन्द्र विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति, . धर्मभूषण वर्धमान। वर्धमान ने शक संवत् १२५५ बैशाख सुबी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निष्ठा बनवाई थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक १२५० के शासपास सिद्ध होता है। ये ईसदीय १४वीं सदी के विद्वान् थे। इनके इस समय का समर्थन शक १३०७ में उत्कीर्ण विजयनगर के शिलालेख से भी होता है।

(३) दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति। इनके सम्बन्ध में दशभक्त्यादिशास्त्र में लिखा है,—

“जीयादमरकीर्त्याद्यभट्टारकगिरोमणि ।

विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविद ॥

अमरकीर्त्युत्तिविमलाशय कुसुमचापमदाचलवज्रभृत् ।

जिनमतापहृतारितमाङ्च यों जयति निर्मलधर्मगुणाथय ॥”

अर्थात्—शास्त्रकोविद विमलाशय कामजेता निर्मलगुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमतके प्रकाशक अमरकीर्ति भट्टारक विशालकीर्ति के सधर्मा थे।

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४०३ सन् १४८१ में हुआ था। यह उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र में विद्यमान है^३। अत उनके पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति का समय करोब सन् १४५० अर्थात् ईसदीय १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है^४। दशभक्त्यादि शास्त्र का समाप्तिकाल १४०४ शक अर्थात् १४८२ ई० है।

१ देखो डा० हीरालाल का ‘अमरकीर्तिगणि और उनका षट्कर्मोपदेश’ लेख। जैन मि० भास्कर भाग २ अक ३।

२ जैन शिलालेख सग्रहका १११० शिलालेख।

३ प्रशस्तिसग्रह के समादक प० के० भुजबली शास्त्री ने ‘शाके वह्निखराविधचन्द्रकलिते सवत्मरे’ का अर्थ शक १४६३ किया है। जब कि दशभक्त्यादि शास्त्र की समाप्ति सूचक ‘शाके वेदलराविधचन्द्रकलिते’ का अर्थ १४०८ शक किया है। दोनों जगह श का शून्य लेना चाहिये। यदि दशभक्त्यादि शास्त्र शक १४०४ में समाप्त हुआ है तो उसमें शक १४६३ में हुई विद्यानन्द की मृत्यु की चर्चा कौसे आ सकती है? ४. देखो प्रशस्तिसग्रह, प० १२८।

इन तीन अमरकीर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता छक्कमोवएस के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि उनका काल वि० १२४७ के आसपास है, जब कि नाममाला के भाष्य (पृ० ६२) में आशाधर के सहायिषेक से उद्धरण दिया है। आशाधर ने अपना अनागारधर्मसूत वि० १३०० में समाप्त किया था। अत व्रथम अमरकीर्ति इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हो सकते।

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्यकर्ता अमरकीर्ति वि० १३०० अर्थात् ईसवीय १२४३ तेरहवीं सदी के पहिले के विद्वान् तो नहीं है। इन्होंने भाष्य में भोज (११वीं सदी) इन्द्रनन्दि (१०वीं सदी) पद्मनन्दि (१२वीं सदी) सोमप्रभ (१२वीं सदी) हेमचन्द्र (१२-१३वीं सदी) आदि के ग्रन्थों से भी नामोलेख पूर्वक अवतरण लिए हैं। शेष दो अमरकीर्ति पृथक् ध्यानित तो हैं ही। द्वितीय अमरकीर्ति की प्रशंसा में विजयपुर के शिलालेख में निम्नलिखित पद्म मिलते हैं—

“गिव्यस्तस्य गुरोरासीदनर्गलतपोनिधि ।
श्रीमानमरकीर्त्यार्थो देशिकाप्रेसर शमी ॥
निजपक्षपुटकवाट घटयित्वानलरोधतो हृदये ।
अविचलितबोधटीप नममरकीर्ति भजे तमोहरणम् ॥”

अर्थात्—अमरकीर्ति महान् तपस्वी शान्त और लम्बी समाधि लगानेवाले योगी थे। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अमरकीर्ति शास्त्रकार की अपेक्षा योगी और तपस्वी ही विशेष रूप से थे। नाममाला भाष्य में जिस प्रकार की यशोलिङ्गसा टपकती है वह एक योगी और तपस्वी में नहीं हो सकती। अत मेरे विचार से द्वितीय अमरकीर्ति भी प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं हैं।

तृतीय अमरकीर्ति के वर्णन में 'शास्त्रकोविद' विशेषण उनके पाण्डित्य का निर्देश कर रहा है। अत हमारे प्रकृत प्रथ्यकार दशभक्त्यादि महावास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति हैं। ये सन् १४५० के आसपास अर्थात् पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् थे। इस समय का साधक एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि इनने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। कल्याणकीर्ति का एक जिनयज्ञकलोदय ग्रन्थ मिलता है।^१ उसको प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य थे। कल्याणकीर्ति ने जेट सुदो ५ शक सत्वत् १३५० में जिनयज्ञफलेदय समाप्त किया था। अर्थात् सन् १४२८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था। यदि यही कल्याणकीर्ति अमरकीर्ति के द्वारा समृद्ध हुए हैं, तो मानना होगा कि अमरकीर्ति पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् हैं।

आभार-

इस ग्रन्थ के सम्पादक प० शमभुनाथजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सत्ततीर्थ अनेक शास्त्रों के गभीर विद्वान् हैं। वर्षों तक उनने जैन विद्यालय इन्दौर में साहित्य और व्याकरण का अध्यापन कराया है। वे जैन परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। उनके जैसे अगाध ज्ञानी निरहङ्कारी और विद्याजीवी विद्वान् हैं। उनके तलस्पर्शी गभीर पाण्डित्य का निर्दर्शक यह सत्करण है। ज्ञानपीठ इस ग्रन्थ के सम्पादक के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित है।

डॉ० पी० एल० वैद्य ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। प० हर्गोचन्द्रजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने अनेकार्थ निधण्टु का सम्पादन किया है। प० महादेव चतुर्वेदी ने सम्पादन परिशिष्टनिर्माण और प्रूफ सशोधन में पूरा योग दिया है। प० वृजनन्दनजी मिश्र व्याकरणाचार्य ने भी प्रेस कापी आदि में पूरा सहयोग दिया है। गुलाबचन्द्रजी व्याकरणाचार्य एम० ए०

^१ देखो प्रशस्ति सप्त्रह प० १६।

ने प्रावक्यन का हित्यो अनुबाद किया है। पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेकार्थनिघण्टु और एकाक्षरी कोश की प्रति भेजी। प० श्रीनिवासजी शास्त्री ने भाष्य की प्रति भेज कर अनुग्रहीत किया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के स्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्षा सौ० रमा रानी जी की संस्कृतनिष्ठा, उदार दृष्टि, ज्ञानानुराग और सौजन्य इस संस्था के जीवन हैं। अपनी स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के संस्कृत विभाग का यह छठवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस भद्र दम्पति से ऐसे ही अनेक लोकोदयकारी सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

इस संस्था के कर्मनिष्ठ मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की कार्यदृष्टि, सत्प्रेरणा और प्रयत्न से इस संस्था का इस रूप में सञ्चालन हो रहा है। मेरे इन सब का आभार मानता हूँ।

'भारतीय ज्ञानपीठ काशो,
पौष शुक्ल १५
वीर स० २४७६
३११५०

—महेन्द्र कुमार जेन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन-व्यय

४००)	कागज २० रोम २२×२९/३२ पोण्ड	५८५।।।) कार्यालय व्यवस्था प्रूफ सशोधन आदि
९७५)	छपाई पृष्ठ १९६ दर ५०) प्रति फार्म	४२६।।।) सम्पादन
२००)	जिल्द बैंधाई	५००) भेट आलोचना, विज्ञापन आदि
६०)	कबर छपाई	७८७।।।) कमीशन
४०)	कबर कागज	

कुल लागत ३९३४।।।)

१००० प्रति छपी। लागत एक प्रति ३।।।।)

मूल्य ३।।।)

सभाष्या नाममाला

अनेकार्थनिघण्टुः एकात्मरी कोशश्च

महाकविधनङ्गप्रणीता०

नाममाला०

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता०

—
श्रीपूज्यपादमकलङ्घनन्तब्रोध विद्यादिननिदिनमिन च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिमसल प्रणिपत्य वीर भाष्य करोमि परम बुष्टुद्विसिद्धं ॥ १ ॥

सरस्वत्या० प्रसादेन रच्यते॒ऽमरकीर्तिना॑ ।

भाष्यं धनञ्जयस्येद् बालाना धीविवृद्धये ॥ २ ॥

यद्यपि धनञ्जयो० (येनो) क्तो भावो वक्तु न शक्यते ।

तथाऽप्यह प्रवक्ष्यामि वादेव्याश्र प्रसादत ॥ ३ ॥

पूर्वाचार्यकृता प्राप्यो व्युत्पत्तिश्चपदिश्यते ।

क्वापि क्वापि स्वबुद्धयाऽपि ज्ञमतामत्र मे त्रुपैः ॥ ४ ॥

५

शिष्टासमाचार (षट्याचार) परिपालनाथ नमस्कारसुदगतधर्मद्वारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थे
च धनञ्जयब्रुवः इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

१०

तन्मामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।

उन्मूलयत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः—

“एनमो०” अरहताणा एनमो सिद्धार्थं एनमो आइरियाण । एनमो उवज्ञक्याणं एनमो लोप सञ्चसा-
हूण ॥१७८॥ इदंगिवधम् । नमामि नमस्करोमि । किंविशिष्टम् ? अवाङ्मनसगोचरम् वाक् च वाणी मनसे॑ १५
च चित्त वाङ्मनसे॑ तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचर न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अलच्यत्वरूपत्वात् ।
तथा चोक्त शब्दभेदे—

“नभन्तु॑ नभसा सार्थं मनस मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपन्तु तपसा सह ॥”

तथा च पदानन्दिशास्त्रे—

“४स्वानुभूत्यै भवेद् गम्य रम्य यज्ञात्मवेदिनाम् । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥”

२०

१ एतत्पञ्चनमस्कारात्मकमन्त्रप्रतिपाद्यमहस्तिद्वाचार्योपाध्यायसर्वसाधुरूपमत्र ज्योतिः । २ नभ तु
नभसा सार्थमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनसशब्दः साधु । ३ साम्प्रत निर्णयसागरयन्त्रा
लयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्य किञ्चिदन्यथोपलब्धम् । तदित्यम्—

कुमुद कुमुदा चापि योगिस्याद् योगिता सह । तमस्तु तमसा प्रोक्त रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥३४॥
अत्र कालप्रकर्षाद्यव्यपि मनसशब्दः प्रभ्रष्टस्थथापि तदानीन्तनमूलपुस्तके तत्थैवासीदिति धृष्टम् ।

यत् अविद्यां पापविद्याम्, चाकुकारसूत्रम्, वैद्यकसूत्रम्, चित्रकर्मदिसूत्रम्, वृत्यसूत्रम्, गन्धर्व-सूत्रम्, पटहग्नूत्रम्, आगदसूत्रम्, योद्धसूत्रम् मद्यसूत्रम्, शूतसूत्रम्, राजनीतिसूत्रम्, चतुरङ्गसूत्रम् । गज-तुरगपुरुषाङ्गीष्माङ्गोखडगदाङ्गजनाना [च विद्या पापविद्या] कथ्यते, ताम् उन्मूलयति मूलादुङ्केदयति ।
यत्^१ विद्यामपि उन्मीलयति स्थापयतीत्यर्थ ।

५ द्वयं द्वितयमुभयं यमलं युगलं युगम् ।
युगम् द्वन्द्वं यमं द्वैतं पादयोः पातु जैनयोः ॥२॥

दश युगमे । द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वयम्, “द्वित्रिभ्यामयद् वा^२” द्वितयम् द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वितयम् । उमयम् उमौ अवयवौ यस्य “द्वित्रिभ्यामयद्” इत्यनुवर्तमाने “उमान्या नित्यम^३” इत्ययट् न तु तयट् । यमलं यम लातीति यमलम् । युगलं युग लातीति युगलम् । युगडं युगडकं च । युगं १० युज्यते धर्मवृत्त्या युगम्^४ । समाश्रेयत्यन्य युगम् । युगम् युनक्ति द्वितीयेन युज्यते शिलप्यते युगम् । “युजित्तित्रिजा धर्मक्”^५ । द्वन्द्वम् द्वौ द्वावित्यर्थं द्वन्द्वम् । यन्छत्युपरमत्येकत्वात् यमम् । द्वान्यामित द्वीतम्, द्वीतमेव द्वैतम् । पातु खतु ।

ऋषिष्मुनिर्यतिर्भिक्षुस्तापसः संशितो व्रती ।

तपस्वी संयमी योगी वर्णी मायुश्च पातु वः ॥३॥

१५ द्वादश मुनैः । ऋषति कालत्रय जानातीति क्राष्टः । “रिषिशुचिंचानाम्युपधातिकः”^६ । तथा च यशस्तिलके^७ —

“रेपणात्क्लेशारशीनामृषिमाहुमेनीषिण ।”

यतिः यो देहमात्राराम सम्यविद्यानैलाभेन तृष्णामरितरणाय योगाय शुक्लध्यानधर्म-ध्यानाय यत्ते स यतिः^८ । तथा च यशस्तिलके —

२० “यः पापपाशनाशाशय यत्ते स यतिर्भवेत् ।”

मुनि, तपःप्रमावात् सर्वमन्यते मुनि । “मन्यते: किरत उच्च^९ ।” तथा च —

“१३मान्यत्वादापविद्याना महद्विद्विकीत्यते मुनिः ।”

भिक्षु भिक्षते इत्येवशीलो भिक्षु । ‘सजन्ताशसिमिक्षामु^{१०}’ तापसः, तपो विद्यते यम्य स तापस । “अणु^{११} च ।” तप सहस्रान्या न केवलमस्त्यर्थं विनीनौ अणु च, वृद्धि । संरितः सशायते स्म सशितः । “१४श्यतेत्रते नित्यम् ।” व्यवस्थितविमापया शो तनुकरणे इत्यस्य व्रतेऽयं नित्यमिकारो भवति, विकल्पो नास्ति । व्रती, “हिसाऽनृतम्भेयाऽब्रह्मपरिग्रहैभ्यो विरतिर्वतम्”^{१२} । व्रत विवरेऽस्य व्रती । तपस्वी “अनशनावसौदैर्यवृत्तिपरिसख्यानरसपरित्यागविकृतशशयामनकायक्लेशा बाह्य तपः^{१३} ।” “प्रायश्चित्तविनयव्याघ्रावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्”^{१४} तपऽच विद्यते यस्येति तपस्वी । सयमी, सयमन सयमः इन्द्रियप्राणलक्षण । सयमो विद्यते यस्यति सयमी । योगी, * युजिर्^{१५}

१. यत् इत्यस्य पूर्वम् ‘तथा’ इति पद योज्यम् । २. है० श०७।१।५५१ । ३. एकत्सूत्रं है० श० नौपलव्यम् । परतु द्वित्रिभ्यामयद्वा इत्यनुवर्तमाने उमान्या नित्यमिति दीक्षोनवचनात्तस्यमेवै-तत्मन्त्रमिति निश्रीयते । ४. कालवाचक्युगपरतयेव बुत्तिः, प्रकृतायेव तु युग लातीत्येव । ५. का० उ० १।५७ इति धर्मक् प्रत्ययः कुत्व च । ६. गृनाम्युपधातिकः का० उ० ३।१५ इति किप्र० । ७. यशस्तिं० आ० द० ४४ । द०. यती प्रयत्ने । इः सर्वघातुम्य का० उ० ३।१४ इप्र० । ८. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १०. का० उ० ४३ इति किप्र० । मनु श्रवणीधने । ११. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १२. का० स०० ४। ४। ५१ । १३. पा० स०० १।२।१०३ । १४. इत्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति पातञ्जलमाध्यम् ७।४।४१ । १५. त० स०० ७।१ । १६ त० स०० । १७ त० स०० । १८. *एवचिन्चहिताशस्थाने युजिर् योगे रुधादौ परस्मैपदो युज् समाधौ वा दिवादौ आत्मनेपदी इत्येवम्भाट्. सुगमः ।

योगे, युज समाधौ पर० युज् समाधौ वा० दि० । आत्म० युज् रुधादौ । पर० युज समाधौ वा दि० । आत्म० * युनक्ति युज्यते वा इत्येवंशील योगी । युजभेत्यादिना॑ विनिष्ट् । वर्णा॑, वर्णो॑ ब्रह्मचर्यमस्त्यस्य वर्णा॑ । साधुः॑, शिष्याणा॑ दीक्षादिदानाध्यापनपराहृमूख सकलकर्मोन्मूलनसमर्थो मोक्षमार्गानुष्ठानपरो य. स साधु । सिद्धि साध्यति साध्ययिष्यति वा साधुः॑ ।

“स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिकं च शिष्याणाम् ।
कर्मोन्मूलनशक्तो [धर्म] ध्यानः स चात्र साधुर्जेयः ॥”
“कृवापाजिमीत्वदिसाध्यशूदृपणिजनिचरिचटिष्य उण्” । चो युष्मान् पातु रक्षु ।

दीक्षितं मौण्ड्यं शिष्यं च तमन्तेवासिनं विदुः ।

चत्वारं शिष्ये । [दीक्षितम्] दीक्षा सजाताऽत्येति । *तारकितदिदर्शनात्सजातेऽर्थं इतच् । मौण्ड्यम् मुण्डे मस्तके भव वपनादिकं मौण्ड्यम्॑ । शिष्यम्॑, शिष्यते व्युत्पादते गुरुणा शिष्यः । १० “वृत्त्वाजुगीण्णशासुस्तुगुहा क्यप्” । गुरोरन्ते वस्त्यन्तेवासी तम । विदु, कथयन्ति ।

कृतान्ताऽगमसिद्धान्ताः

त्रयं सिद्धान्ते । लोकाना सन्देहस्य कृत, अन्तो विनाशो येन म् कृतान्तः । आगच्छतीत्यागमः॑ आगमनमागमो वा । सिद्धान्तो [सिद्धोऽन्तो] निधयो यस्य स सिद्धान्तः, समयोऽपि । सर्वे पुति ।

ग्रन्थः शास्त्रमतः परम् ॥ ४ ॥

१५

ग्रन्थातिः॒ रचयतीति ग्रन्थः । शास्त्रि शास्त्रम् ।

भूमिर्भूः पृथिवी पृथिवी गहरी मेदिनी मही ।
धरा वसुमती धात्री क्षमा विश्वम्भराऽवनिः ॥ ५ ॥
वसुधा धरणी क्षोणी क्षमा धरित्री क्षितिश्च कुः ।
कुम्भनीलोर्वगं चोर्वीं जगतीं गोर्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

२०

सप्तविश्वतिर्भूमौ । भवति सर्वमत्र भूमिः । “ऊर्मिभूमिरम्य” । भवत्यस्मात्सर्वं भूः । रेफान्तञ्चाव्ययम्॑ प्रथते पृथिवी पृथिवी च । गुह्यतीति॑ गहरो । रुद्धरीति॑ पाठ । न्याये मेत्रति॑ स्मित्यति॑ मधुकैटमेदोयोगद् वा मेदिनी । मध्यते मही । मह पूजायाम् । धरत्यगान् धरा । वस्त्यस्या॑ वसुमती । दधाति॑ स गृह्णाति॑ सेषजाये॑ वैद्यो यामिति॑ धात्री । “कर्मणि॑ षेष पून्” । केचिद्वातेरपीच्छन्ति॑ क्षमणं क्षमा॑ । “पाऽनुबन्धमिदादिभृत्वद्” । विश्व विमर्ति॑ विश्वम्भरा॑ । “नाम्नि॑ तृष्णुजिधारि॑ तपिदर्मसहा॑ सजायाम्” । खपत्ययः॑ भूतानवति॑ श्रवनिः॑ । छियामी॑ । २५ “क्षृतसृत्वम्भृत्यव्यवृत्तिं ग्रहिष्योऽनि॑” । अनि॑, प्रत्ययः॑ वसु॑ दधातीति॑ वसु॑ या । धरति॑ पर्वतानिति॑ धरणि॑ । “वृत्रोऽनि॑” । क्षोणि॑ क्षुपम् क्षोणि॑ । क्षियामी॑ । क्षोणी॑ । “दुक्षुरु कुशब्दे” । क्षमते भार क्षमा॑ क्षमा॑ च । धरति॑ सर्वं धरित्री॑ । क्षयति॑ क्षय प्राप्नोति॑ प्रलयकाले॑ क्षितिः॑ । कार्यति॑ कूर्यते वा कुः॑ । कुम्भो॑ गत्नोत्पत्तिश्रीपो॑ इत्यस्या॑ कुम्भनी॑ । एति॑ जन इमाम् इला । “इगमुराकपिलिकादिदर्शनालत्वम्” । “शृष्टादय”—२०

१. युजभजसुजदिष्टदृहुहाङ्कीडत्यजामुरुधाङ्क्यमाट्माङ्क्यसरज्ञाङ्याट्माना॑ च इति॑ पृण्॑ का० स० ४४४२२१ २. का० उ० १११३३ ३. तदस्य सजात ताराकादेरितच्॑ इति॑ का० र० ४०० स० ५०८ ४. मोण्ड्यमस्यात्तोत्यपि॑ विग्रहे॑ निवेश्यम् । अर्शं आदिभ्योऽच्॑ ५ का० स० ४२२२३ ६. ग्रथयते॑ रच्यते॑ इति॑ कर्मणि॑ विग्रहो॑ योग्यः॑ । ७ का० उ० ३१३२ इति॑ भवतेर्मिप्र० कित्वं च । ८ गृहीत्वा॑ गहरी॑ रुद्धरी॑ इत्यर्थपा॑ठ इति॑ युक्तम् । ९ का० स० ४४४०८० इति॑ पून् । १० वस्तुतस्तु॑ क्षमते॑ इति॑ क्षमा॑, पचादित्वादच्॑, दाप्॑ । ११ का० स० ४४४२२१ १२. का० स० ४२३४४ १३ का० उ० २१४३ १४ का० उ० २१४३३ शृतसृष्टृज॑ इत्यादसूत्रम् । १५. का० उ० २११७ ।

‘शूद्रोग्रवज्रविग्रभद्रगारभेरिराः’ एते रक्षत्ययन्ता निपत्यन्ते । क्लेशमुर्वति हिनस्ति फलेन उर्वरा । उर्वाँ । उर्वा युर्वा दुर्वा धुर्वा हिसार्था । सर्वमुर्वति व्याप्नोति उर्वि । ब्रियामी । उर्वा । राजान्तर गच्छति जगति: । ब्रियामी; जगति । पूजा गच्छति शौः । श्लीनोः । गमेडोः । “‘गोरौ धुटि’” हृयौत्वम् । धृज् धारणे । धृः । धरति धरते । हृज् । अस्य वृडिः । धारि जातम् । वसु वस्त्रनि वा धारयति वसुन्धरा । नाम्नि
५ तृभृ०^३ खप्रत्यय । कारितस्याऽन्त कारितलोपः । अभिधानात् हस्वः । “हस्वा रुषोमोऽन्तः ।” “लिया” मादा ।” भूतधात्री, रत्नगर्भा, विपुला, सागराम्बरा, रत्नवर्ती, रसा, अचला, अनन्ता, डथाम—
काश्यवी, गोत्रा, स्थिरा, सर्वसहा ।

तत्पर्यायधगः शैलस्तत्पर्यायपतिर्नृपः ।

तत्पर्यायस्तो वृक्षः शब्दमन्यं च योजयेत् ॥ ७ ॥

१० योजयेत् योजयेत् अन्यं शब्द च । तत्पर्यायधरः शैल । भूमिधर, भूधर, पृथिवीधरः पृथिवीधर, गहरीधर, मेदिनीधर, महीधरः, धराधरः, वसुमतीधर, धात्रीधरः, विवभराधरः, अवनीधरः, वसुधाधरः, धरणीधर, द्वाणीधर, द्वामधर, धरित्रीधरः, त्रितिधरः, कुधरः, कुमिनीधरः, इलाधरः, उवराधरः, उर्वधरः, जगतीधरः, गोधरः, वसुन्धराधरः । सप्तविशति नामानि शैलस्य ज्ञेयानि । तत्पर्यायपतिर्नृप । भूमिपति, भूपति, पृथिवीपति:, पृथिवीपति, गहरीपति, मेदिनीपति, महीपति, धरापति, वसुमतीपति, धात्रीपति, द्वाणीपति, धरणीपति, द्वामपति, धरित्रीपति, कुपति, कुमिनीपति, इलापति, उवरापति, उर्वपति, जगतीपति, गोपति, वसुन्धरापति । सप्तविशति नामानि वृप्त्येति ज्ञातव्यानि । तत्पर्यायरुहो वृक्षः । भूमिरुहः, भूरुह, पृथिवीरुह, पृथिवीरुह, गहरीरुह, महीरुह, धरारुह, वसुमतीरुह, धात्रीरुह, द्वाणीरुह, द्वामरुह, धरित्रीरुह, कुरुह, कुमिनीरुह, इलारुह, उवरारुह, उर्वरुह, जगतीरुह, गोरुह, वसुन्धरारुह । सप्तविशतिपर्यायनामानि वृक्षस्येति ज्ञातव्यानि ।

दरीभृदचलः शृङ्गी पर्वतः मानुमान् गिरिः ।

नगः शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरी त्रिकुन्मरुत् ॥ ८ ॥

द्वादश पर्वते । दरी विभक्तिं दरीभृत् । स्वस्थानात् न चलति अचल । शृङ्गमस्यास्तीति
२५ शृङ्गी । पर्वाणि सन्त्यस्य पर्वते । “‘पर्वमरुम्या त ।” सानुरस्त्यस्य सानुमान् । जल गिरतीति गिरिः । “‘गृनाम्युपधात्कि ।’” न गच्छतीति नग । “‘डोऽमशायामपि ।’” नाम्नुपदे गमेडोः भवति । शिला
उच्चीयतेऽत्र, शिलोच्चय । लम् आकाशम् अतीति अद्रि । “‘भूच्चदिभ्य कि ।” शिखरमस्यस्य
शिखरी । त्रिक पृथिवीधर स्तुभाति विस्तारयतीति त्रिककुत् । वर्णविकारत्वाद् भकारस्य । तकार ।
३० स्तम्भुः स्तुभुस्तुभुमुम्भुन्य शनुश्चेति वक्तव्यमत्रान्य धातो प्रयोग ।” मियन्ते कुदजन्तवोऽस्य
स्पर्शेनेति मरुत् । “‘मृघोरुति ।” शैल, क्षितिधर, गोत्र, आदार्थ, कुत्र, ग्रावा ।

प्रस्थं पाश्वं तटं सानुमेखलोपत्यका तटी ।

नितम्भमन्तो दन्तश्च तद्वानपि गिरिः स्मृतः ॥ ९ ॥

१ का० सू० २। २।३३। २ नाम्नि तृभृजिधारितपिदमिसहा सज्जायाम् इति पूर्णे का० सू० ४।३।४४। ३ नाम्नि तृभृजिधारितपिदमिसहा सज्जायाम् इति पूर्णम् का० सू० ३।६।४४। ४ का० सू० ४।१।२२। ५ का० सू० २।४।४०। ६ पर्वमरुतस्त श०च० सू० ४।१।७३। ७ का० सू० ३।१।३। ८ का० सू० ४।३।४७। ९ का० उ० ३।१।५२। १० वर्णविनाशेन सकारस्य लोपोऽपि बोध्य । ११ श०च० २।१।९६। त्रीणि कुदानि शृङ्गाण्यस्येति विग्रहो तुन्यत्र । त्रिककुतपर्वते पा०सू० ५। ४।१।७६ इत्यकारलोप । १२ का० उ० १।३०।

पर्वतमेखलाया दश । प्रस्थीयते जनेनात्र प्रस्थम् । “^१ नामिनस्त्वच” क । उभयम् । पाति रक्षति जनान् पाहवर्म् । तद्यति उच्छ्रुत्य गच्छुति तद्भू । त्रिषु लिङ्गेषु । सनोतीति सानु । ^२ कृवापा-जिमीन्वदिसाध्यस्त्रियगणिजनिचरिचटिन्य उण् ॥ “शण दाने” अस्य धातो प्रयोग । मेहनस्य ख तस्य मा-लातीति निरुक्ति । मिनोति प्रक्षिप्ति कामिचित्तानिति वा मेखला । उपत्यका उप समीपे भवा उप-त्यका ॥ “^३उपाधिग्या त्यक्त्वासन्नारुदयोः ॥” तद्यमस्यास्ति तटी । क्रीडार्थं जनस्ताभ्यतीति^४ नितम्बः । अमतीत्यन्तः । ““^५मृगवाहस्यमिदमिलूपूर्म्यस्त ॥” तप्रत्यय । तद्वानपि गिरिः स्मृतः । प्रस्थवान्, पाश्ववान्, तद्वान्, सानुमान्, मेखलावान्, उपत्यकावान्, तटीमान्, नितम्बवान्, अन्तवान्, दन्तवान् ।

गजाधिपः पतिः स्वामी नाथः परिवृढः प्रभुः ।

ईश्वरे विभुगीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता ॥१०॥

चतुर्दश राज्ञि । न्यायमार्गेण राजते इति राजा । “^६वृष्टित्तिराजिविन्प्रदिवियुत्य” कनिः । “को यष्ट्वद्मावार्थ । एव्य कनि प्रत्ययो भवति । अधिग्ये ऐश्वर्ये पाति रक्षतीति आधिप । तथा च उपसर्गवृत्तौ-अधिवशीकरणाधिप्रानाध्ययनेश्वर्यस्मरणाधिकेषु ॥” पात्यवति पति । “पातेर्डति । श्रसाङ्ग-डति-त्ययो भवति । ‘अमु गतौ’ सुर्वूर्व । शोभनमनीति स्वामी । ‘साव्वरेस्ति’ दीर्घश्च ।” सावुपदे अमेर्धार्तोरिन् प्रत्ययो भवति । नाथयति गिपु नाथः । “तृहि त्रृहि वृद्धो” । हो वृह । अत एव वृहः ॥५॥ परिपूर्वान् परिवृहति परिवर्वहति स्म वा परिवृढः । “^७गत्यर्थां” इति क । “^८परिवृढहठो प्रभुवलवतं” ॥५॥ एतौ प्रभुवलवतोर्थयोर्यथासख्य निषायेते । परिपूर्वम् वृहेरिडभावो नलोपस्च । वहनुहोः प्रकृत्यन्तर-योरपीत्यन्ते । ये तु ग्रन्थान्तरयोरिच्छान्ति, तेषामन्ते “तृह त्रृहि वृहि वृहि वृद्धो” इति पाठान्तर वर्तते । तेन पाठान्तरेण द्वस्य वा “तृहः वृह” इति निपातः । तत्र वर्वहति स्म दर्हति स्म इति वाक्य क्रियते । प्रभवतीति प्रभुः । “^९भुवो डुर्विशप्रेषु च” ॥ “^{१०}डानुवन्ध” उकारलोपः । “^{११}ईश ऐश्वर्ये” इष्टे इत्येवशील ईश्वर । “^{१२}कशिपिसभातीशस्याप्रमदा च च” ॥ एषा वरो भवति तन्त्रीलादिषु । विभवतीति विभु । दुप्रत्ययः । ईष्टे शक्नोति सृष्टिस्थितिप्रलयान् कर्तुम् ईशानः । आश्रितजनान् विभर्ति पोपयति भर्ता । इन्दर्ति परमैश्वर्यसुकृतो भवतीति इन्द्रः । ““^{१३}स्फायित्तिरिविशकिदिपिक्षुदिस्मदिमन्दिचन्द्रनुन्दीनिद्यो रक्” ॥ एतीति इनः । “^{१४}इराजिकृपिम्यो नक्” ॥ ईष्टे ईशिता ।

अनोकहस्तरः शास्त्री विटपी फलिनो नगः ।

द्रुमोऽड्ग्रिपः फलेश्राही पादपोऽगो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

द्रादश वृक्षे । अनसः शक्तस्य अक गति हन्तीति अनोकहः । “^{१५}अंशोकहप्रत्ययेन वा अनोकहः । तरन्त्यनेनातप तरुः । “^{१६}भ्रमुत्तचरित्सरितनिमस्त्रिशीड्भ्य उ ॥” शास्त्राः सन्यस्य शास्त्री । विटपो विस्तारो-

१ का० स० ४३। ५। वतुतस्तु नामिन स्थञ्चति कद्रत्ययस्य कर्तेरि विधानादत्र घन्तये कर्विधान-मिति क । २ का० ०३० ११ । ३. पा० स० ४३। ४ इति त्यक्तन् प्रत्ययग्राप् च । ४. क्रीडार्थं जनैस्त-म्यते काङ्गद्यते इति कर्मणि विग्रही न्याय । ५ का० ०३० ४२७ । ६ का० ०३० २१३ । ७ उ० वृ० ११ । ८ का० ०३० ३५२ इति पातेर्डतिप्र० टिलोपस्च । ९ का० ०३० ६६८। पाणिनीयैस्तु स्वामिनैश्वर्ये पा० स० ४२। १२६ इति त्वशब्दादामिनप्रत्ययेन साधितः । स्वमंश्वर्यमस्यास्तीति विग्रहः । १०. गत्यर्थाकर्मकश्ल-षशीड्यथासवसज्जनरहजीर्यतिस्यश्च इति पूर्णं का० स० ४१६। ४४। ११. का० स० ४१६। १२ का० स० ४१४। १३. डानुवन्धेन्त्यस्वरादेलोप इति पूर्णं का० स० ४१६। ४२। १४. का० स० ४१४। १५. का० स० ४१४। १६ का० ०३० २५१ । १७ अन प्राणे । अनिति श्वामोऽङ्गवास करोतीति । अन धातोरोकहप्रत्यय औणादिक इत्यपेक्षिताशः । १८. का० ०३० १५ ।

- प्रस्तुत्यस्य चिट्ठी। फलानि सन्त्यस्य फलिनः । ५ “फलवर्हान्यामिनच् ।” न गच्छतीति नगः । ६ “डोऽ-
सशायामपि” । द्रवति वृद्धि गच्छति अथवा द्रुहृ॒कैकदेशोऽस्यास्तीति द्रुमः । श्रद्धिभिरुचरणैः पिबति
पाति वा अङ्गूष्ठिपः । अङ्गूष्ठिपश्च । फलानि यहृणातीति फलेग्राही । अभिधानादीर्घः । ७ “फलमलरजः सु
ग्रहेः” पादै पिबति पानीय पादपदः । न गच्छतीत्यगः । ८ “नगस्याऽप्राणिनि वा” विकल्पेन नकारलोपः ।
५ वनस्य पति वनस्पतिः । “पारस्करादित्वात्सुट् । महीरुहृ, कुटः, शाल, पलाशी, द्रुः, वृक्षः, कुञ्जः,
विष्टरः, अगश्चापि ।

तत्पर्यायचरो ज्ञेयो हरिविलिमुखः कपिः ।
वानरः मूवगश्चैव गोलाङ्गूलोऽथ मर्कटः ॥१२॥

- एकोनविशति नामानि हगौ । अनोकहचर, तरुचरः, शाखिचर, विटपिचर, फलिनचरः,
१० नगचरः, द्रुमचर, श्रद्धिपचरः फलेग्राहिचर पादपचरः अगचर, वनस्पतिचरः । इत्यादिद्वादशनामानि
मर्कटस्य ज्ञेयानि । हरतीति द्विरिः । ११ “ह सर्वधातुंय ।” वलयो मुखेऽस्य वलिमुखः । कम्पते वायुना शरीरे
कपिः । “अहिकम्प्योर्न लोपश्च ।” आया कि प्रत्ययो भवति नलोपश्च । वन वनति सम्भवते वानरः
नरोऽपि । लकेन उःफालेन गच्छति प्लवगः । १२ “डोऽसंजायामपि” च । गा भूमि लङ्घतोति गोलाङ्गू
लम् गोनाङ्गूनम् यामा गोलाङ्गूल उणादित्वात् “लगे दीर्घश्च ।” मृदुप्राणयागे । मिथ्येन मर्कटः ।
१५ ‘जटा मर्कटो’ एतावटप्रयायान्तां निपात्येते । वनौका । लवङ्गम् । कीश । शाखा गः ।

विपिनं गहनं कक्षमण्य कानन वनम् ।
कान्तारमटवी दुर्गम्

- नव वने । वेष्यते कम्पयने मयेनात्र विपिनम् । १३ “वेपितुयोर्हस्यन्तः” इतीनच् । उणादौ
उग्यते । १४ जिनाऽजिनेणिरुपिनितुहिनमहिनानि ।” एतानि इनप्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते । १५ गद्यते
२० मृगादिभिर्गहनम् । उभयम् । कषति वर्षति कक्षम् । अर्पयते गम्यते श्वापदै अररयम् । प्रतिभ्रायन्ति अत्र
वा अरण्यम् । १६ “अतेरन्य” अस्मादन्य प्रत्ययां भवति । उभयम् । कन्यते गम्यतेभिन् काननम् ।
वन्यने सेव्यते वनम् । कान्तम् जलान्तम् गच्छति इच्छन्ति वा कान्तारम् । अटन्यस्यामटवि । ख्यामीः ।
अटवी । दुखेन महता काटेन गम्यते दुर्गम् । नानाऽर्थे । सत्रम्, हव्यम्, दावम्, अरण्यानी, फलम
(१७ अफलम्) ।

१. पात० भाष्य० ५०।१२।१२२ । २ का० स० ४।३।४७ इति गमेडः । ३. का० स० ४।२।४७
अनेन ग्रहणिन् । एव सति दृढयभावात् फलेग्राहिरिति रूप सम्भवति । तत्राभिधानादीर्घ इति दीक्षाकारः ।
तथाभिधायकवचनाभावात्कोपान्तरेषु फलेग्राहीति दीर्घरहितस्यै वर्दशनाच्च फलेग्राहीति रूप चिन्तयम् ।
४ नेदेश किमपि सूत्र कातन्ये । नगोऽप्राणिनि वा इति हेऽश० स० स० ३।२।१२७ । ५ पारस्करप्रमत्तीति
च सज्जायाम् प० स० ६।१।१५७ । ६ अत्र अ० चि० ४।१८० प्रमाणम् । तटुक्तम्-वृक्षोऽग्न शिखरी
च शाखिकलदावादिर्द्विरुद्धमो जीर्णोद्विष्टी कुटः त्वितिरुहः कारस्करो विष्टरः । नन्यावर्तकरालिकौ तस्वरु
पर्णा पुलुक्यदिप सालानोकहगच्छपादपनगा रुक्षागमौ पुष्पदः ॥ इति । ७ का० उ० ४।४। ८ का०
स० ४।३।४७। ९ खर्जिकृषिमसिपिङ्गादिभ्य ऊरीलौं का० उ० ३।६० इन्यूल०० उणादित्वाल्लगे दीर्घश्चेति
दुर्गम्बृति । १०. का० उ० ३।५८ । ११ प० उ० २।५५ । १२ का० उ० २।२२ । इतीनप्रत्यय वपेर-
कारेकारश्च । १३. गाहृ विलोडने । बहुलमन्यत्रापीति युच् । द्वच्छृगहनयोरिति निर्देशाद्ग्रस्तवः ।
१४ का० उ० ३।२। १५ कानयति दीपयति स्मरादि । कनी दीप्तौ । युच् । कम् जलम् अनन जीवनमस्य
वेति विग्रहोप्यूच् । १६ फलपुष्परहिते वन्य-अवकेशि अफल शब्दा कल्पदुकोशे दृष्टाः । तटुक्तम्—
‘नवर्यात्कलपर्योऽवकेशि वन्यपि इत्यपि । फलपुष्पविरहित एते वन्यादयस्त्रिपु ॥

तच्चरः स्पाद् वनेचरः ॥१३॥

चरशब्देन युक्ते शब्दस्य नव नामानि । विपिनचरः, गहनचर, कद्मचर, अग्ण्यचरः, कान-
नचर, वनचर, कान्तारचर, अटवीचर, दुर्गचर ।

पुलिन्द शवरो दस्युनिपादो व्याथलुधकौ ।

धानुष्कोऽथ किरातश्च सोऽण्यानीचरः स्मृतः ॥१४॥

पोलति भ्रमति महत्व याति गच्छति पुलिन्दः । पुलीन्दश्च । शवति^१ निर्दयत्वं गच्छतीति
शवरः । तालव्यः । शवति अरण्य शवर । दस्यति अन्यमुपक्षिण्योति दस्युः । “जनिमनिटसिम्यो यु॒३”^२
एव्यो यु प्रत्ययो भवति । निष्ठेदति पापकर्मात्र निपाद । निषदरच । वा॑ ज्वलादिनीभुवो णः । “व्यध
ताडने” व्यध विध्यतीति व्याधः । “दिहि॒तिहिश्लिगिव्विविध्यतीणश्याता च”^३ एवा णो भवति ।
लुभ्यते गृह्यते मासे लुधकः । स्वार्थेः कः लुधकः । धानुषा^४ सह वत्तें इति धानुषः । किराति शरान्^५
किरातः । अरण्यस्य अरण्यानी (तत्र) चरतीति अरण्यानीचर^६ । इन्द्रैवरणमवर्शवरुद्धमृद्धिमयमारण्यव-
यवनमातुलाचार्याणामानुकूलिश्च । अरण्यानीति ।

वार्वारि कं पयोऽम्भोऽम्भु पाथोऽर्णः मलिलं जलम् ।

मरं वनं कुश नीरं तोयं जीवनमविपम् ॥१५॥

श्रष्टादश पानीय । वार्यति तृपामिदम् वारि, दृणोति वा चारि । “शृवसिवपिगजिवैनिन-
भेरिज्”^७ ८५२ य हत्र प्रत्ययो भवति । ऋकार इज्वदभावार्थ । गन्तम् वार् । क्षीक्षत्वे । काम्यते इष्यते
कम्, कायतीति (वा) । “९० कायते दृतिडमौ” प्रत्ययो भवत । पीयते पयते वा पयः । “पीड् पाने”^८
“सर्वै॒धानुष्योऽसुन्”^९ अमति गच्छति स्वादुत्वं सन्तम् अम्भम्^{१०} । “अग्रम गत्तो”^{११} “अग्रे॒॑म्भोऽन्तङ्च”^{१२} अकार
उन्नचारणार्थः । “अवि शब्दे” “अम्भु” इति सौंचो वा “सेवायाम्”^{१३} अम्भ्यते तृष्णातैर्गित्यस्तु^{१४} । “१५ अन्वि-
कम्बिभासुः”^{१५} आम्याम् प्रत्ययो भवति । पीयते पाति वा पाथः । “१६ रघिकासिकुपिपातृवच्चिर्चिसि-
चिगुयस्थकः”^{१६} एव्यम्भकू प्रत्ययो भवति । को यग्वद भावार्थः । ऋणोत्पर्णः । गम्यते “स्वानपानार्थैः
मान्तम् अरण्यस्”^{१७} सरति गच्छति सलिलम्^{१८} । उणादै॒पच सेचने^{१९} । “२० धान्वादेः पः सः”^{२०} “सेचते”^{२१}
इति सर्वललम्^{२२} । “सर्वेलिलश्च चत्य लुक्”^{२३} सर्वेलिलः प्रत्ययो भवति चत्य लुक् च । जडति नीच
गच्छति जलम्^{२४} । जड च । ग्रणाति हिनस्ति तृप्णाम् इति शरम्^{२५} । वन्यते सेवयते एवत वनम्^{२६} । कोशते
कुशम्^{२७} । प्राणिचेष्टा तुद्धि नयतीति नीरम्^{२८} । मीयते हिनस्ति तृपा मीरम् च । तुद्धति तृपाम् तोयम्^{२९} । “तु॒३
संत्र आवरणार्थो वा । जीवतेऽनेन जीवनम्^{३०} । जीवनीयम् च । आनुवन्ति समुद्रमित्यापः । आनोतेः क्विप्
प्रत्ययो भवति । हस्वश्च । अप्यस्त्रिया बहर्यः । क्वचिदेकत्वम्^{३१} । क्लीवत्वम्^{३२} । अपशब्दौ बहुवचनान्तः ।

१ शव गत्तो न्वादि । वाढलकादर । २ का० उ० ४११ । ३ का० सू० ४२४५५ ।
४ का० सू० ४२४५८ । ५ धनु प्रहरणमस्येति व्युत्पन्निर्यक्ता । प्रहरणमिरण् । ६ किरातीति
किरः । कु विक्षेपे । कप्रत्यय । अततीत्यत । अत सातत्यगमने । पचायन्^{३३} किरञ्चासावतश्चेति किरात
इति पूर्णव्युत्पत्तिः । ७. महादरण्यमरण्यानी तत्र चरतीति विग्रहो युक्तः । ८ इद पाणिनीय ४११४० अत्र
यमेत्यधिकः पाठः । ९ का० उ० ४५५ । १० का० उ० ५४५० । ११ का० उ० ४५५६ । १२ का० उ० ५४६६ ।
अमति स्वादुत्वं गच्छतीति शेषः । रामाश्रमस्तु अमिशवदे इत्यतोऽसुन् प्रत्ययमाह । १३ का० उ० ५४५५ ।
१४ का० उ० २१० । १५ अर्यते इत्यस्य पर्ययो गम्यते । यतोऽरण्यस् शब्दो नस्त्रयान्तः । ऋृ गत्तो^{३४}
१६ का० सू० ३१८२४ । १७ सलति गच्छति निमिति विग्रहे सल् गतौ इत्यत्मात् सर्वलक्ष्यनि०
इत्यादि १५४७० सूत्रेण साधितोऽन्यत्र । १८ का० उ० ६३९ ।

“अपश्च”^१ इति घुटि दीर्घः । आपः । अघुट्स्वरत्वात् शसादेन दीर्घः । अपः । “अपः भेदः”^२ इति विभक्तिभे पत्य दः । अद्विदः । अदृश्यः । अपाम् । अप्सु । ^३ वर्गदिः शपसेषु द्वितीयो वा । अप्सु । अप्सु । आमन्त्रणे—हे आपः । वैवेष्टि देह शैत्येन ब्याप्तोतीती चिष्ठम् । उभयम् । घनरसः, पुष्करम्, मेघपुष्पम्, पानीयम्, उदकम्, कीरम्, सुवनम्, दकम्, कमलम्, कीलालम्, अनृतम्, कबन्धम्, सर्वतोमुखम्, ५ आनर्त इति नानार्थे ।

तत्पर्यायचक्रो मत्स्यस्तत्पर्यायप्रदो घनः ।

तत्पर्यायोद्भवं पद्मं तत्पर्यायधिरम्बुधिः ॥ १६ ॥

तस्य पर्यायस्तपर्यायः, तन्पर चरशब्दे प्रयुज्यमाने मत्स्यनामानि भवन्ति । वार्चर, वारिचरः, कृचरः, पयश्चरः, अभ्यश्चरः, अम्बुचरः, पाथश्चरः, अर्णश्चरः, सलिलचरः, जलचरः, शरचरः, वनचरः, १० कुशचरः, नीरचरः, तोयचरः, जीवनचरः, अप्चरः, विषचरः । प्रदप्रयोगे वारिपर्यायशब्दाम्बे घनस्य नामानि भवन्ति । वार्प्रदः, वारिप्रदः, कम्प्रदः, पयःप्रद, अम्भःप्रदः, अम्बुप्रदः, पाथःप्रदः, अर्णःप्रदः, सलिल प्रद, जलप्रदः, शरप्रदः, कुशप्रद, नीरप्रदः, तोयप्रदः, जीवनप्रदः, अप्रदः, विषप्रदः । इत्यादीनि घननामानि । तत्पर्यायोद्भव पद्माम् । वारिपर्यायशब्दाम्बे उद्भवप्रयुज्ये उद्भवशब्दप्रयोगे कमलनामानि भवन्ति । वारुद्भवम्, वार्युद्भवम्, कम्पुद्भवम्, पयुद्भवम्, अम्भुद्भवम्, अम्बुद्भवम्, पाथुद्भवम् अर्णुद्भवम् १५ सलिलोद्भवम्, जलोद्भवम्, शरोद्भवम्, वनोद्भवम्, कुशोद्भवम्, नीरोद्भवम् तोयोद्भवम्, जीवनोद्भवम् अवुद्भवम् विषोद्भवम् । तत्पर्यायधिरम्बुधिः । वा शब्दा (शब्दपर्याया) म्बे धिप्रयुज्ये धिशब्दप्रयोगे अम्बुधिनामानि ज्ञेयान्म । वार्षिं, वारिधि, कन्वि, पयोधि, अम्भोधि, अम्बुधि, पाथोधि, अर्णोधि, सलिलधि, जलधि, शरधि, वनधि, कुशधि, नीरधि, तोयधि, जीवनधि, अविधि, विषधि ।

पृथुगोमा पदक्षीणो यादो वैमारिणो झाषः ।

२० विसारी शफरी मीनः पाठीनो (३) निमिपस्तिमिः ॥ १७ ॥

एकादश मत्स्ये । पृथूनि विस्तीर्णानि रोमाण्यस्य पृथुरोमा । पृथुक्षीणि स्पर्शन-रसन-धारण-चक्षु-श्रोत्र-मनासि यत्य स. पदक्षीणः । याति गच्छति जले, याद । विसरति “ग्रहादेर्णिन्”^४ विसारी मन्त्य इति । त्वार्येऽणु । वैमारिण । क्षपति जन्मन् दिनस्ति भव । “सु गतौ” । सु गृ ऋ गतौ वा” । सृ गृ विषर्वा^५ विमरति विमसर्ति वा इत्येवशील, विसारी । “विप्रित्यामाद सत्तेर्णिन् प्रत्यय । अस्यो० २५ (स्य) वृद्धि । विमारिन् इति जाते सि । ““इनहरु [पूर्ववत्] (पूर्षार्थणा शौ च)” । शक्ति शफरः । शफा (न्) त्रायन्ते (राति) शीघ्रगत्वाच्छाफरी । मीतये हिम्यतेऽन्योऽन्यत, मीनः । अद्विष्टव्यात् पाठयति भद्यत्वेन पाठयते वा पाठीनः । निमिषति परस्पर हिनस्ति हन्तीति वा “निमिष” । “नाम्युपध (धार्) पृकृगृजा क.” । तिम्यति जलेनाद्रो भवति तिमि । मत्स्यः, अण्डजः, शकली, विसार, जलचर, शल्की ।

३० घनाघनो घनो मेघो जीमृतोऽभ्रं बलाहकः ।

पर्जन्यो मिहिगे नग्राद्

१ का० सू० २।२।१९ । २ का० सू० २।३।४३ । ३ का० सू० ४० सू० २५७ ।
४ का० सू० ४।२।५० इति णिन् प्र० । ५ पा० सू० ३।२।७६ उत्प्रतिम्यामाडि सर्तेषु परसंख्यानम्
इति काशिकावृत्ति । ६ का० सू० २।२।२१ । ७ निमेपरहितत्वान्मीनानाम् । कोषान्तरेषु तेषामनिमिपसज्ञा-
दर्शनान्वच अत्राप्यनिमिष इत्येव छेदो युक्त । ८ तु निमिष इति । तदुक्तम्-‘विसार शकली शल्की
शवरोऽनिमिषस्तिमि’ अ० चिं ४।१।१० । ९ का० सू० ४।२।५।१ ।

न व मेघे । हन हिंसागतयोः । हन्तीति घनाघनः । “अच् ‘घनाघन’ इति सूत्रेण घनाघन इति निपातः । अथवा “२चिकिलदचक्नसचराचरचलाचलपतापतवदावदधनाघनपादूपटा वा” इति नामभूता सज्जा रुद्धाः । तत्र किलदे “३नाम्युपधात्” कः । कन्सिचरिचलिपतिवदिहनिपाटयतिभ्योऽच्चप्रत्ययो द्विवचननिपातन चेति । वाशब्दात् किलदः क्नसः, चरः, चलः, पतः, वदः, घनः, पटः, इत्यपि भवति । हन्यते वायुना घन । “४मूर्तौ घनिश्च ।” अल् । मिह सेचने । मेहति सिङ्गति भूमिष्ठिति मेघ । ५ “अच्यु” चाम् (दिव्यश्च) अच् । न मिनो गुण । “५वद् तु, ६८ इन्येवमादीना चज्जोः कगौ भवत । हश्च (हस्य च) घो भवति । जीवनस्य जलस्य मूत पुटश्च इति निरुक्त्या जीमूतः । जीवन्यनेन भूतानि वा जीमूत । जीव प्राणने । अग्रन्ययोः राति वा अभ्रम् । अग्र गत्यर्थ । न भ्रश्यति तपो यस्मादित्येके । आगोति सर्वा दिशो वा अग्र क्लीवे । ७बलाकादिभिर्हीयते बलाहक । वारिवाहको वा । प्रवर्षति जल पर्जन्य । उणादौ “पृजी सम्पके” पृड्ने पृणन्ति वा पर्जन्य । “८पर्जन्यपुष्ये” १० इति अग्न्यप्रत्ययान्तो निपातये । मेहति सिङ्गति विश्व मिहिर । महिर मुहिरश्च । न भ्राजते न शोभते न भ्राद् । “९विभ्राजिपृथुर्विभासाम्” एषा किवृ भवति । अब्दः, स्तनयितु, पयोधरः, धाराघरः, धूमयोनि, तडित्वान्, वारिदि, अग्नुभृत्, मुदिरः, बलमुच् ।

शम्पा सौदामि (म) नी तडित् ॥१८॥

आकालिकी क्षणरुचिर्विद्युत्

१५

पट् शम्पायाम् । शम्प्यति शीघ्र शम्पा । शम्पा च । शम्पित्वा वा शम्पा । सुदामा अद्विणा एकदिक् सौदामि (म) नी । ११तेनेकदिगत्येण । शोभनस्य टामो वन्धनरजोरिय सटशी सौदामि (म) नी । सौदामीनी च । ताडयति तडित् । ताडयतेर्णिलुक् । ताडयति मेष ताडयतेऽसौ वेति तडित् । तान्तम् । आकलयति स्तोककाल रोचते वा आकालिकी । १२“आद् मर्यादाऽभिविध्यो ।” क्षणे क्षणे रोचते शालते क्षणरुचिः । विश्वोतते विद्युत् । चपला, क्षणिका, शतहदा, हादिनी, अचिराणुः, २० ऐरावती, चत्रला, चटुला, दिश्या ।

तत्पतिरम्बुदः ।

विद्युत्तंच्छब्दाये पतिशब्दे प्रयुज्यमाने अग्नुदनामानि भवन्ति । शम्पापति, सौदामनीपति, तडित्पति, आकालिकीपति, क्षणरुचिपति, विद्युत्पति, निर्धातपति, अग्निपतिः, वत्रपतिः, उल्कापति, इत्यादिमेघनामानि स्युः । २५

निर्धातमशनिर्वज्रमुल्काशब्दं च योजयेत् ॥१९॥

चत्वारो वत्रे । निर्हन्यतेऽनेनेति निर्धातम् । पर्वतादीनश्नाति, अशनिः । “१३श्वत्सुष्टुत्र्यम्य-

१ हत्यर्षव्यं च का० वार्तिकम् । अच् घनाघन इत्याकारक वचन न क्वचिदिप्लव्यम् । शा० सू० ४।१।५५ घनाघन पादूपटम् इति । २ इद तु नोपलव्यम् । चरिच्लिपतिवदीना वा द्वित्वमच्याक् चाम्यासस्य वक्तव्यम् इति कात्या० वा० । ३ का० सू० ४।२।५१ । ४ का० सू० ४।४।५० इति हत्येलप्त्रो घनिरादेशश्च । ५ का० सू० ४।२।४८ । ६ न्यद्यक्वादीनाम् इति का० सू० ४।६।५७ इति हस्य घ । ७ बलाकाभिर्हीयते । ओहाद् गतां । कर्मणि क्तुन् । अथवा बलेन हीयते आहायते वा क्तुन् इति रामाश्रम । पुरोदरादित्वाद् वारिवाहकशब्दस्य बलाहक इति निपातश्च । ८ का०उ० ३।८।६ ९ का० सू० ४।६।५७ । १० तेन प्रोक्तमित्यत्तेनेत्यधिकारे “एकदिक्” इति जै० सू० ३।३।८।१ । ११ समानकालावायन्तौ यस्या इति विग्रहे आकालिकडायन्तवचने इति पा० सूत्रेण समानकालशब्दस्याकाल आदेश इकट् प्रत्यये टित्वान्दीपि आकालिकीति मूलोक्तमपि साधु । १२ का० उ० ४।४।३ ।

श्यविवृतिप्रहित्योऽनिः ।” एव्योऽनिः प्रत्ययो भवति । “दु उ स्फूर्जा वज्रनिधोषे” स्फूर्जतीति वज्रम् । शूद्रादयः^२—“शूद्रोग्रवज्रविप्रभद्रगौरभेरीराः” एते रक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पर्वतेष्वपि वज्रति वज्रम् । उषति च्छलति उल्का । उल् इति सांत्रोऽय धातुर्वा ।

परिष्टकर्दमः पङ्कः

५ त्रय. कर्दमे । परि समन्ताद् भाराकान्तः सीदति गन्तु न शक्नोतीति परिपत् । “३सत्सू द्विपद्वृ-हुशुजविदभिदिल्लजिनीराजासुपसर्गे” एषासुपसर्गेऽनुपत्तर्णेऽपि नाम्युपधात्स्वप् । कृणोति चेष्टा हिनस्तीति कर्दमः । “४पृथिचरिकदिभ्योऽम्” । पञ्चयते विस्तार्यते वर्षकालेन पङ्कः । उभयम् । उणादौ ‘पन च’ पनायते पन्यते वा पङ्कः । ‘पसिपनिभ्या कः’^३ आन्या कः प्रत्ययो भवति । तथा चामरसिह—

“५निपद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽशी शादकर्दमौ ।”

१० निपद्वर, जम्बाल., शाद, इच्चिकिल, चिकित्सशानेकार्थे ।

तज्जम्

तस्मात् जम् उद्भवम् पङ्कजम्, कर्दमजम्, परिपजम्, इत्यादीनि कमलनामानि भवन्ति ।

तामरसं विदु ।

कमलं नलिनं पदम् सरोजं सरसीरुहम् ॥ २० ॥

१५ खरदण्डं कोकनदं पुण्डरीकं महोत्पलम् ।

दश कमलनामानि भवन्ति । ताम्यति जन काङ्क्षति तामरसम् । श्रमर्सिहभाष्ये—“ताम प्रकर्पां रसोऽनुस्य तामरसम् । तमः प्रकर्पाऽथस्तारस्तम्यवत् ।” केन मस्तकून मल्यते धर्यते कमलम् । श्रिया वासार्थ काम्यते वा । ‘पटिकमिशुशिकुशिःयः कलः’^४ एव्य कल. प्रत्ययो भवति । कम्मल च । नला. सन्त्यस्य नलिनम् । नलिनि आकर्पति श्रिय वा नलिनम् । ‘पुलिनलितलिमलिद्रुहित्य किन’^५ । नल च । पद्यते पाति लक्ष्मीरत्र पश्चम् । “६श्रितिशृद्धुमुद्विक्षणीपदभायालुम्यो म ।” उभयम् । सरसि तडागे जातम् सरोजम् । सरस्या रोहति प्रादुर्भवति सरसीरुहम् । ७खरच्च तदण्डन्च खरदण्डम् । कोकाश्चक्रवाका नदन्त्यत्र कोकनदम् । क्लीबे । [रक्त] कुमुदम्^६ । रक्तकमलाच्च । विशेषणम् [कुमुदकमलविशेषे] । पुणति माङ्गल्यात्वात्पुण्डरीकम् । मट (मुट) प्रमदीने स्थाने । पुण्डरित्येके । पुण्डति पुण्डरीकम् । भाष्यकर्तृमनं पुण शोभे । पुणति जल्पति २५ शोभा पुण्डरीकः^७ । “अनुनासिकान्ताद्वृः” अनुनासिकान्ताद्वातोर्द्व प्रत्ययो भवति । महच्च तदुत्पल च महोत्पलम् । तथा च हुलायुधः—“पुण्डरीकं सिताम्बुजम्”^८

१ स्फूर्जतीति विग्रहे स्फूर्जधातो वजादेशो रक् प्रत्ययश्च निपात्य । वज गतौ । वजतीति विग्रहे केवल रक् । २ का० उ० २।१७ । ३ का० स० ४।३।७४ । ४ का० उणादौ एतत्सूत्रं नास्ति । पा० उ० स० ४।८४ कलिकर्योर्म इप्यमप्र० । ५. का० उ० ५।३० । रामाश्रमस्तु पच्चि विस्तारे कर्मणि हलश्चेति घञ् इत्याह । ६ अमर० १।१०।१ । ७ दी० भा० १।१।४०। ८ का० उ० ६।१ । ९. का० उ० ६।६ । १०. का० उ० १।५।३ । ११ खरो दण्डो यमेति विग्रहो न्यायः । १२ अथ कोकनद रक्तकुमुदे रक्तपक्जे इति मेदिनी तदिशेषे प्रमाणम् । १३-पर्फरीकादयश्च पा० उ० ४।२० इति मुदधातो रीकन-प्रत्ययान्तं पुण्डरीकशब्दो निपात्यते । रामाश्रमस्तु पुडिधातोरीकन-प्रत्ययमाह । भाष्यकर्तृमते पुण धातोरीकप्रत्ययो डान्तागमश्चेत्युभय विशेषम् । केवल इप्रत्ययस्तु न युक्तः । १४ हलायुधः ३।५८ ।

इन्दीवरं चारविन्दं शतपत्रं च पुष्करम् ॥२१॥

स्यादुत्पलं कुवलयम्

सत् नीलोत्पले । इन्दति शोभैश्वर्ये प्राज्ञोति इन्दीवरम् । अरान् राजी । विन्दति इति अरविन्दम् । विदूलं लाभे, विदृ अग्पूर्वः । अरान् विन्दतीति अरविन्दः । “कर्मणि च विद” श-प्रत्ययो भवति । इति परसूत्रम् । स्वमते—अन्यत्रापि चेति [कर्मण्यण्^१] अण् बाधक । ““साहिसाति-वेशुदेजिचेतिग्रारिपारिलिपि(मिष्ठिविन्दा त्वनुसर्णे” एषामनुपसर्णे शो भवति । चक्रस्ताऽवयव अर-विन्दम् । पिण्डी (पुण्डरीक) कमलेऽये तु (अपि) अरविन्दम् । राजविशेषस्तु अरविन्दः । केचित्कम-लेऽपि पु स्त्र मन्यन्ते । शत पत्राण्यस्य शतपत्रम् । क्लीबे । शोभा पोषयति पुष्यति वा पुष्करम् । शोभामुत्कर्षेण पलति गच्छतीत्युत्पलम् । कौ बलते प्राणिति कुवलयम् । कुक्षितो बहिर्वलयः पत्रवेष्टन-मस्येति श्रीमोऽः ।

५

१०

विशेषप्राप्त—

अथ नीलाम्बुजन्म च ।

इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे ॥२२॥

नीलाम्बुजन्म । इन्दतीन्दीवरम्^३ । कुवलय [दलनीलेति] सामान्यस्य [नीले] विशेष-वृत्ति । अस्मिन् सिते । रात्रौ विकास करोति चन्द्रेण काम्यते वा कौ मोदते वा कुमुदम् । दान्तन्त्र । के उदके जले रौति केरबो हसौ, नस्येद प्रिय कैरवम् । क्लीबे ।

१५

तदूती

तस्य कमलस्य पर्याये ‘उती’ इति प्रयुक्त्यमाने कमलिनीमानि भवन्ति । तामरसवती, कमलवती, नलिनवती, पद्मवती, सरोजवती, सरसीहवती, कोकनदवती, पुण्डरीकवती, महोत्पलवती, अर-विन्दवती, शतपत्रवती ।

२०

विसिनी ज्ञेया

दिनविकासिन्यामेक^४ । विसमस्त्यम्या विसिनी । नलिनी । पुटकिनी । मृणालिनी । व्रततीर्वन्लरी लता ।

वल्लीनामानि योज्यानि-

चतुर्वृं (चत्वारो व) लृर्याम । वृणोतीति व्रतती । प्रकृष्टा ततिरस्या व्रतती^५, व्रततिश्च । जपादित्वादवत्त्वम् । वल्लते वल्लरी । लाति ललति चित्त वा लता^६ । बहूते वेष्टते वल्ली । वल्लादीः । बल्लिगिदन्तोऽुपि । छियामी । वल्ली । व्रातश्च । वीरक् (ध्), गुल्मिनी, प्रतानिनी, शारिवा^७, किर्मी च । वृक्षशाखायामपि ।

१ का० सू० ४।३।१ । २ का० सू० ४।३।५। ३. इन्दतीतीन्दी. लक्ष्मी । सर्वधातुम्य इन उ० सू० ४।१।७ इतीन् । कृदिकारादत्तिन इति डीष् च । तस्यावरमिष्टम् इति व्युत्पत्त्वन्तरम्यूद्यम् । ४ एक, विसोमीशद इत्यर्थः । ५ अत्र चत्वारो वल्लर्यामिति युक्तम् । ६ प्रतनोतीति व्रतति । तन् धातो क्षिच् । तौ च सजायामिति क्षिच् । पृष्ठोदरा-दित्वात्पत्स्य व इत्यन्त्र । ७ लति औत्रो धातुर्वेष्टनार्थो लततीति लता । पचायच् इत्यन्त्र । ८ सारिवाशब्दोऽनन्तमूलनामकौषधिविशेषवाचक । किर्मि छो भ्वर्णपुन्या स्यादपि मालापलाशयो-रिति-विश्वलोचनप्रमाणत किर्मिशब्दः । किर्मीशब्दो स्वर्णपूत्री-माला-पलाशवाचक । वृक्षशाखायां लताया वा उभावप्यप्रसिद्धौ । अतोऽत्रेदमेव प्रमाणम्

वारिघिर्वर्णतेऽधुना ॥२३॥

अधुना इदानीं वारिघिर्वर्णते कथते । केन १ भाष्यकर्ता मुनिश्रीमदमरकीर्तिना ।
साम्राज्य समुद्रनामानि प्रारम्भन्ते—

स्रोतस्विनी धुनी सिन्धुः सूवन्ती निम्नगाऽपगा ।

५ नदी नदो द्विरेफश सरिन्नामा तरङ्गिणी ॥२४॥

एकादश नद्याम् । स्रोतः प्रवाहोऽस्यस्या स्रोतस्विनी । धुनोति कम्पते धुनिः^१ । छियामी^२ ।
धुनी । स्यन्दति जले चलति सिन्धुः । त्रिषु । “स्यन्देः^३ सम्प्रसारण धश्च ।” तटेभ्यो जल स्वति स्ववन्ती ।
निम्न गच्छति निम्नगा । आ समन्तादाप्नोति अद्भिरगति वा आपगा^४ । आपेन वा गच्छति आपगा ।
नदत्यव्यक्त शब्द करोति नदी । नदति नदः । “अच्^५ पचादियश्च” अच् । द्वोरेको तटो यस्य द्विरेफः ।
१० सरति समुद्र गच्छति सरिति । तान्तम् । तरङ्गा सन्त्यस्या तरङ्गिणी । तटिनी, नर्मरिणी, कूलङ्कणा,
शेवलिनी, सरस्वती, समुद्रान्ता, हादिनी, स्रोत, कर्पुर्^६, कुल्या, हीपवती, रोधोवक्ता ।

तत्पतिश्च भवत्यविधः,

तस्या धुन्या. पतिर्भुनीपतिरित्यादिसमुद्रनामानि भवन्ति । स्रोतस्विनीपतिः, धुनीपति, सिन्धु-
पतिः, स्ववन्तीपति, निम्नगापति, आपगापतिः, नदीपति, नदपति, द्विरेफपति, सरितपति, तरङ्गिणीपतिः ।

१५

पारावारोऽमृतोद्भवः ।

अपारवारकूपारौ रत्नमीनाऽभिधाऽकरः ॥२५॥

समुद्रो वारिराशिश्च सरस्वान् सागरोऽर्णवः ।

नव समुद्रे । पारमावृणोति पारावार । अन्तस्योदभव अमृतोद्भव । अपार वार् जल
यत्राद्दूरो अपारवा । न कु पृणोति मर्यादापालनाद्कूपारः । इलायुषे—“न कु पृयिवी पिपर्ति व्या-
२० ष्टोतीति अकूपारः^७” अकूपारोऽुपि । रत्नमीनशब्दयोरग्रे आकरे प्रयुज्यमाने समुद्रनामानि भवन्ति ।
रत्नाकर, पृथुरोमाकर, पड़क्षीणाकर, यादाकर, वेमारिणाकर, कपाकरः विसार्थाकर, शफाकर,
मीनाकरः, पार्ठीनाकरः, निमिषाकर, तिष्याकर । ‘उन्दी क्लेदनं’ सम्पूर्व । समन्तादुन्त्यस्मादिति
समुद्र^८ । ‘स्फायितिच्चवाच्चशक्तिप्रिक्षुदिरुदिमदिमन्दिच्छ्युन्दीन्द्यो रक्’ “अनिदनुवन्वानाम-
गुणेऽनुपङ्क्” । तथा च इलायुषे^९—“मुदन्ति मिश्रीभवन्ति भौमाऽन्तरीक्षनादेयजलान्यत्र समुद्रः”^{१०}
२५ अपरसिंह^{११}—“समुनत्ति समुदः” । वारिणा जलाना राशिर्विशिष्ट । सरासि जलप्रसारणानि
सन्त्यस्य सरस्वान् । सागरस्यापत्य सागर, सगरतनयै खात्वात् । अणासि सन्त्यस्य अर्णव ।

१ धुनोति कम्पयति वेतसादीन् । धुत्र् कम्पने । किप् । पृयोदरादित्वाचुक् । नान्तवान्डीप् धुनी
इति रामाश्रमः । २ का० उ० १७ । ३ अद्भिरगतोति विग्रहेऽप पकारस्य जट्वाभावोऽकारस्य
दीर्घत्वं च पृयोदरादित्वेन निपातात्साध्यम् । ४ का० स० ४२१४८ । ५ अत्र कर्मरिति दीर्घोकारान्तपाठो
युक्त । तदुक्तम्—कर्पूरनदी करीपाग्न्योरिति शाश्वत ६७२ । ६ यादस् शब्दस्य सकारान्तवाद् याद आकर
इत्येव न त यादाकर । ७ समन्तादुन्ति आद्रीकरोति भूभागमेतावानेव विग्रह । अत्रास्मादित्यपा-
दानार्थीकोक्तो नपेक्षणीय । समीचीना मुद्रा जलचरविशेषा यस्मिन् सह मुद्रया मर्यादया वर्तते वेति
व्युत्पत्त्यन्तरगमयूक्तम् । ८ का० उ० २१४ । ९ का० स० ३६१ । १० सुद ससर्गे चुरादि सम्पूर्व ।
कथादावदन्ते तत्पाठाच्चुरादिशिञ्चो वैकल्पिकत्वान्मुदन्तीत्यपि पक्षे । समो मकारलोप पृयोदरादित्वात्तत्र
बोध्य । ११. क्षी० भा० १६१।

तथा च क्षीरस्वामिभाष्ये—“अर्णोऽस्यास्त्वर्णवः । ‘अर्णसो लोपश्च’ इति वः सलोपश्च ।”
उदधि, उदन्वान्, तोयनिधिः, जलराशिं वीचिमाली, शशध्वजः । तदभेशा सात-लवणोदः, क्षीरोदः,
सुरोदः, इन्द्र स्वादूद, दध्युदः, घृतोदः ।

सीमोपकण्ठ तीरश्च पार रोधोऽवघिस्तटम् ॥२६॥

सप्त समीपे । पित्रं बन्धने । सिनोति बधातीति सीमा । “३ वर्षमोमाग्रीष्माऽधमाः” ५
एते मक्षप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठस्य समीपे उपकरणम् । तरन्त्यमातीरम् । तरति प्लवते
इव के तीरं वा । “पिपर्ति वृणोति जलेनेति पारम् । पार्यते समाप्यते इस्मिन्निति वा । रुद्धि
जल वैगेन रोधस् । सान्तम् । उभयम् । अवधानम् अवधिः । “४ उपसर्गे दः किं” । तटश्च आहन्य-
तेजमसा तटम् । त्रिपु । तटः । तटी । इन्द्रो वा । तटि । स्त्रियामी, तटी । कूलम्, कच्छ,
प्रपात, तीरम् । १०

भङ्गस्तरङ्गः कल्लोलो वीचिस्तकलिकाऽवलिः । पाली वेला तटोच्छ्रवासौ विभ्रमोऽयमुदन्वत् ॥२७॥

“५ कादश तरङ्गे । भज्यते जले स्वयमेव भङ्गः । तरति प्लवते तरङ्गः । “६ नृपतिभ्यामङ्गु”
आभ्यामङ्गुप्रत्ययो भवति । “७ कल्त्यन्तेनेन नय कल्लोलः । कुमित लोडति कल्लोल इन्येक ।
याति (वयति) गच्छति वीचि । स्त्रियामी, वीची । वृद्धिसुकैर्येण कलयति उत्कलिका । स्त्रि- १५
याम । आ समन्ताद् वलते आवलि । पाल्यते पालि । स्त्रियामी । पाली । वेलर्यति पूर्णिमादि-
कालमपदिशति वेला । स्त्रियाम । तटश्च उच्छ्रवासरच तटोच्छ्रवासो । तटति तटः । उच्छ्रवमनम्
उच्छ्रवास । विभ्रमति विभ्रम विकारः । कस्य १ उदन्वत् समुद्रस्य । ऊर्मि, लहरी ।

सम्प्रति मनुष्यवर्गं आरन्यते श्रीमद्भरकोर्मिना—

मनुष्यो मानुषो मर्त्यो मनुजो मानवो नरः । ना पुमान् पुरुषो गोवा

२०

एकादश मनुष्ये । मनोरपत्य मनुष्य । * “८ कुरुनिषादेभ्य प्रथमाऽप्येऽपि” । कुरुनिषादाभ्या-
मणीपि मनो मानतश्च । वचन्चिदद्विस्वरस्य न वृद्धिः । अष्टवा । * मनुष्य । मानुष । उणादौ च ।
मन्यते सुखद् खादिकमिति मनुष्यः । “९ मनेहत्य” उस्यप्रत्ययः । मानवति मान्यते इति वा मानुष ।
“१० मानेनम्” उस्यप्रत्ययः । उभयम् । २५

१ क्षी० भा० १६ । २ कोपान्तरेपु समुद्रस्य शशध्वज इति नाम नोपलव्यम् । क्य
चित्समाधानपैक्षावा शशध्वज इति पाठो बोव्य । एशी चन्द्रो ध्वजश्चह वशप्रस्थापक यस्येति
तद्विग्रहः । चन्द्रस्य समुद्रप्रभवत्वं पुराणप्रसिद्धम् । ३ का० उ० १५६ । ४ तृः झवनतरणयो । क-
प्रत्यये अहत इर्दीर्यत्वं च । अत्रोणादि शरणम् । सरलं पन्थास्तु पार तीर कर्मसमानो । ततस्तीरय-
तीति विग्रह पचायच्च । ५ पालनपूरणयो पृष्ठानुस्तेन पिपर्तीन्यस्य पूरयतीति पर्यायो युक्तो न तु
वृणोतीति । ज्वलादित्वाण्ण । क्षीरस्वामी तु परे पाश्वेभव कूलम् पारम् इत्याह । ६ का० स० १५७०
इति किः । ७. का० उ० ५२२ । ८ कल्ल अव्यक्तं शब्दे कल्लन्ते इत्यस्य शब्दायन्ते इत्यर्थः । उणा-
दित्वादोलच्छ्रूः । क जलम् तस्य लोलश्चन्वलोऽवयवः । अनुस्वारस्य परसवर्णो लकार इति गमाश्रमः ।
९ वेष्मसंवरणे । वेत्रो डिच्च उ० स० १७२ इतीचिप्र० । १०. *एव चिह्निताशस्थाने “मनो पण्ड्यैः”
का०ल०७०० १९३ इति प्य प्रत्ययो इति पाठो युक्त । ११ का० उ० ६१० । १२. का० उ० ६११ ।

“उड्डीय वाङ्छित यान्तो वरमेते भुजङ्गमाः ।

न पुनः पक्षर्हानतवात् पड्गुप्रायन्तु मानुषम् ॥”

भ्रियते मन्त्र्य । “‘नुदस्यः’ स्वार्थं त्यो वा । मनोर्जातं मनुजं । मनांरपत्यं मानवः^१ ।

नृणाति विनयति नरः, ‘योन्मुखाण्यो’ नयतीति वा । “‘नियो डाङ्गुबन्धश्च” । अस्मात् ऋन् प्रत्ययो

^५ भवति, स च डाङ्गुबन्धं इष्यते न्यत्पत्स्वरादिलोपार्थः । पूर्यते कुलमनेन सान्त-४पुमान् । उणादौ पूडः पवते पुनातीति वा पुमान् । “‘सिर्मनन्तश्च’” अस्मात्सिं प्रत्ययो भवति, अस्य च मन् अन्त चकाराद् हस्तव्त च । इकार उच्चारणार्थः । पुरि पुरि शयनात् पूरणाद् । पुरुषः । पृणाति पूर्यति वा स्त्राणामुदर गर्भेणोति पुरुषः^२ । “‘पुणाते ३ कुषः’” अस्मात्कुप्र प्रन्यया भवति । कोऽनुबन्धः । अन्येषामर्त्याति वा दर्शवः । पुरुषः । लत्वे पुरुषः, पुलुप्रश्च । “‘गुण परिवेशने’” । गुण्यति गोधा^४ ।

१०

घवः स्यात्तरपतिनृपः ॥२८॥

तस्य मनुष्यशब्दस्याप्ते धव-पतिशब्दप्रयोगे नृपनामानि भवन्ति । मनुष्यधव , मानुषधव,, मन्त्रधव , मनुजधव; मानवधव नरधव , नृधवः, पुन्धव , पुरुषधव गोधाधव . । मनुष्यपति, मानुषपति मनुजपति , मानवपति , नरपति , नृपति , पुम्पति , पुरुषपति गोधापति ।

१५

भृत्योऽथ भृतकः पत्तिः पदगोऽनुगः ।

भटोऽनुजोद्यनुचरः शस्त्रजीवी च किङ्करः ॥२९॥

एकादश सेवकः । भ्रिवते इति भृत्यः । “‘भृत्रोऽमज्ञायाम्’” । भ्रियते गजा भृतः । स्वार्थं क । भृतकः । पतति अधो गच्छति पत्ति�^१, पतन वा । [पदान्याम] अतति [पदातिः^२] । पदातिक । औराणादिक इक । १० विनयादित्वात्वार्थे ठण् । पद्म्या^३ गच्छतीति पदगः । अनु पश्चाद् गच्छति अनुगः । भटति युद्ध विभर्ति भटः । अनुजीवतीत्येवशील, अनुजीवी । अनु पश्चाचरतीत्यनुचर । २० शनैरेण आयुधेन जीवतीत्येवशील शस्त्रजीवी । कि कुत्सित कार्य विदवाति किङ्कर । सहायः, सेवक , पदज्येष, पद्म्या पदिकव्य । तथा च यशस्तिलके-(श्लो० १३०)

“सत्य दूरं विहरति सम माधुभावेन पुसा धर्मश्चित्तात्सह करुणया याति देशान्तराणि ।

पाप शापादिव च तनुते नाचवृत्तेन सार्व सेवावृत्तेः परमिह पर पातकं नास्ति किञ्चिचन ॥”

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुजङ्गना ।

२५

ललना कामिनी योग्यिद् योषा सीमनितनीति च ॥३०॥

१ का० उ० ६१२ । २ वाणपत्ये का० र०० पू० ४७३ इत्यण् । ३ का० उ० २११ । ४

पाति पुनाति वा पुमान् । पाते डुम्युन् पूजा डुम्युन्, पा० उ० ६१७० इति डुम्युन् इति प्रक्रियाऽन्यत्र ।

५ का० उ० १४२ । ६ पुरि शयनादिति तु निरुक्तप्रकारो विग्रहस्तु पुणातीत्यादिरेव । ७. का० उ० ३१४ ।

८ गोधाशब्दस्य पुरुषार्थे कोपान्तरप्रमाण नोपलब्धम् । तदुक्तम्— गोधा तलनिहाक्योः ’ विंलो० । गोधा

प्रणिर्वशेषे स्यज्ज्याप्रात्य च वारंगे । आकारान्तलीलगत्वं च सर्वत्रास्योत्तम् । अ०स० २४३। अतोऽस्य

मूल मृग्यम् । गोद इति पाठे तु गोदो मस्तिष्कमस्यात्तीति गोद । मुख्यमस्तिष्कवत्वात् पुरुष इति समाधेयम् ।

तदुक्तम् गोद तु मस्तकस्नेहो मस्तिष्को मस्तुलुङ्क अ० चि० ३२८९ । ६. का० स०० ४१२।२५ इति

क्षेप् । १ औराणादिकस्ति, किंचक्तो च मशायामिति वा किंच् । पतन वा इति व्युत्पत्तिस्त्वप्रासङ्गि-

कत्वादुपेदया । ११ अज्यतीत्याच पा०उ० ४१३० इत्यतेरञ् । पादस्य पदाज्यातिहतेषु इति पदादेशश्च ।

१२ विनयादेष्टण् जै० स०० ४१२।४० । १३ पदान्या पदान्या वेसि वक्तव्यम्, न तु पदन्यामिति । पाद

इत्यापते । पादस्य पदाज्यातीति पादस्य पद् ।

नितम्बिन्यवला वाला कामुकी वामलोचना ।
भामा तनूदरी रामा सुन्दरी युवती चला ॥३१॥

द्वाविशतिः छियाम । “स्तूरु आच्छादने” स्तृणात्याच्छादयति स्वदीपान् परगुणानि-
ति खी । उणावौ । स्तृणात्याच्छादयति लज्याऽमानमिति खी । स्तृणातेष्टु ” प्रत्ययो भवति ।
अकागमात्रः । “रमुर्वर्णः” । अथवा इट्टपाठः । डाङ्गुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । डकरो ५
नदावर्थः । रकारमात्र एव । अमरसिहमाप्ये—‘स्त्यायस्य(तेऽ) स्या गमः स्त्री ।’ तथा च हलायुधे—
“स्तृणाति विवेकमान्द्वर्जनात्त स्त्री” । नरस्य छो जातिश्चेतनारी । नर बनति भजते वनिता । मुह वैचित्रे
कायेपु मुहति मुग्धा । मुहंधक् “हस्य गः ।” भामते कुम्पते (ति) भामिनी । [भामः] क्रोधोऽस्यस्याः
वा भामिनी । विभेन्यस्माद्(त्यसौ)भीरु । “भियो मम्लुको च ।” भीरुः । प्रशस्तान्यद्वान्यस्या अङ्गना ।
लाङ्गयति (लडति) विलमति, ललयति (ललति) नरमीप्सते वा ललना । “लल ईसायाम्” । भोगान् १०
कामयते कामिनी । युपु, सौंत्रोऽय धातु सेवाऽयें । योषति पुष्प गच्छति रंतच्छया आत्मनो योषा ।
“कष शिष जप भष दष मष रष रिष यूष जृष हिसार्या.” । योषति हिनस्ति हन्तीति योषित् । “हस्तड़ि-
रुहियुपिभ्य इति.” एन्य इतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । अमरसिह—“योनि पुमा योषित् ।”
अजादित्वादाप्रत्यये योषिता च । सीमन्तोऽस्त्वा सीमन्तिनी । बधाति चित्त बधः । नितम्बोऽस्यस्या
नितम्बिनी । न विश्वते बलमस्या अवला । ‘ब्रा’ सामान्य लाति गृहातीति वाला । ‘क्षु कान्तो’ कम् । १५
“क्षेरिनद् कारितम्” इन् । “श्रस्योप०” दीर्घ, । कामयते इत्येवशीला कामुकी । “शकमगमहन्तुष्प-
मूस्थालपपतपदामुकत्र ।” । कारितलोप । “निमिष०” दीर्घाभाव । ऋकाराऽनुवन्वत्वात्पूर्वस्योप० दीर्घ ।
वामे मुन्दरे लोचने नेत्र यम्यः सा वामलोचना । “भाम क्रोधे” चुरादो । भामयति । “भाम क्रोधे”
+वादावकाराऽनुबन्ध आत्मनेपदी । भामते भामा । चक्षुदोषादिदर्शनात् । तनु सूक्ष्मसुदर यस्या सा
तनूदरी । नरेषु रमते, मनासि रमयति वा रामा । ३ । मुहु द्रियते आदियते जनोऽनु शोभनो दरो २०
वराङ्गुच्छद्रमस्या वा । ३सुन्दरी । अथवा ‘सुन्दर’ इति सौंत्रोऽय धातु । युवतशब्दादादिविहितम्ति ।
युवति । यु मिश्रण यानि नगन् मिश्रयति आँणादिको वा आति युवति । छियामा । युन्ती ।
यूनीत्यन्य । तथाहि प्रयोग —

“भर्ता मगर एव मूल्यवमति प्राप्तः मम्बन्धुभिः ,

यूनी कामयं दुनोनि च मनो वैघव्यदुःखाद वप्तुः ।

वालो दुस्त्यज एक एव च शिशुः कष्ट कृत वेधसा,

जीवामीति महीपते प्रलपति यद्वैरिसीमन्तिनी ॥”

चलचित्तान्पुरुपान् चालयतीति चला ॥” । वामनेत्रा पुरुषी, वासिता वर्णिनी, प्रमदा, रमणी,

२५

१ का० उ० ८३६ । २ का० स० १२१० । ३ क्षी० भा० २६२ । ४ का०उ०
६१८४ इति धिक् प्र० हस्य गश्च । ५ का०स० ४१४५६ । ६ का०उ० १३५ । ७. क्षी० भा०
२६२ । ८ का० र० ७० ४६२ । ९ का० स० ४१४३४ । १० कारितमज्ञा कात्मन्त्रव्याकरणे का० स०
३१६४४ इतीनो लोप । इन् कारितमज्ञा कात्मन्त्रव्याकरणे । ११ निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इनि
परिनाषेन्टशेषाले अहृतव्यूहपरिभापार्थरूप । १२ रमते रामा । ज्वलादित्वाप्ण । रमयतीति तु न युनम्,
प्यन्तस्य ज्वलादित्वामावात् । १३ सु अतीव उनार सुन्दरी । उन्दी ब्लेदने । बाहुलकादरप्र० । शकध्वादि-
त्वादुकारस्य पररूपम् । गौरादित्वान्दीप् इति रामाश्रम । १४. का० स० २४४५० । १५ चलचिर्चि
पुरुषश्रेतीति चलत्येव विग्रह । पचायत् । गिजन्तात् चाला इति स्यात् ।

दयिता, प्रतीपदर्शनी, कान्ता, वशा, महिला, महेता च ।

भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्र गेहिनी गृहम् ।
महिला मानिनी पत्नी तथा दारा: पुरन्ध्रयः ॥३२॥

दश कलत्रे । डुभूत्र धारणपोषणयोऽ । भ्रियते पुष्यते गर्भेण भार्या । “ऋवर्णव्यञ्जना-५ न्तात्प्रथ्यग्” । अकारमात्र । अत्योपधावृद्धि । भार्या हृत जातम् । “ख्यामादा” । आप्रत्यय । प्र० सि । “श्रद्धाया सिलोपम्” मिलोप । “ज्या वयोहानौ” जा (जि) नाति जाया । जनी प्रादुर्भावे च’ । सुखी जायते आत्मा उत्र जाया । “सन्ध्यादय—सन्ध्या वन्ध्या जाया इत्यादय शब्दाः यकृत्ययान्ता निपात्यन्ते । जनयति पुत्राञ्जनिः । इ “सर्वतातुंयः” । कुले साधु कुल्या “यटगवादित” । “कड मदे” कड ताँदादि । कडति मायति योवनेनेति ७कलत्रम् । “अमिनक्षिकडिम्योडत्र” अत्रप्रत्यय । १० कडवम् । डलयोरैक्यम् । प्रथ मि० नपु० “अका० सुरा० । मोऽनु० । गेहमस्त्यस्या गेहिनी । ‘ग्रह उपादाने” । गृहांत प्रत्युपार्जित गृहम् । “१०गेहत्वक्” अकृपत्यय । “ग्रहिज्या ११”—सम्प्रसारणम् । मव्यते पूज्यते । मोहल्ला । मान प्रणयकोपीऽस्या मानिनी । पति पतति याति पत्नी । “द विदारणे” । द० क० । दोर्यते शतवण्डीभवति पुरुष एभिरिति दारा । “११भावे” वृत्र । अकारमात्र । ३वृद्धि । दार हृति जातम् । प्रथमा जम् । प्रया बहुत्व च । पुर धमयन्ति, नेत्रान्ते पुर शरीर धरन्तीति १४पुरन्ध्रयः । १५ ज्ञेत्रम्, सहधर्मचारिणा, गृहा, महचरी, सहचरा ११

वल्लभा प्रेयसी प्रेष्टा रमणी दयिता प्रिया ।
इषा च प्रमदा कान्ता चण्डी प्रणयिनी तथा ॥ ३३ ॥

एकादश वल्लभायाम् । वल्लते पत्युश्चित्त सवृणोतीति वल्लभा । “१०कृशलिगर्दिरासि-वलिवलिम्योऽन्” अम प्रत्यय आप्रत्यब्ध । अतिशयेन प्रिया प्रेयसी । “तर॑७तमेयच्चिष्ठ” प्रकर्षा॒उथे २० ‘तर तम ईयसु इष्ठ’ इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन प्रिया प्रेष्टा । रमते जनोऽत्र, मनासि रमयति

का० स० ४२।३५ इति ध्यग्यप्रत्यय । २ का० स० २।४।४३ । ३ का० स० २।१।३७ ।
४ का० उ० ४।३० । ५ का० ३०।३।१४ । ६ का० स० २।६।११ इति यत्प्र० । ७ का० उ० ३।५५
गठ सेचने । गडति गङ्गयते वा “गडेगदेश्चकः” पा० उ० इत्यत्रन् । डलयोरेकत्वम् । कड शासने मदे ।
कडति कृष्णत वा वातुलकादत्रन् । कल मधुर ध्वनि त्रायते रक्षति वा । त्रैदू पालने क इत्यन्यत्र ।
८ अकारादसम्बुद्धो युश्च इति पूर्णे का० स० २।१।७ इति सेलोपो युरागमस्त्व । ९ मोऽनुस्वार
व्यञ्जने इति पूर्ण का० स० १।४।१५ इत्यनुस्वार । १० का० १०० स० ४।२।६० । ११. का० स० ३।४।२
ग्राहज्यावध्यव्याविवष्टिव्याच्चप्रच्छिव्यवस्थेनामगुणे इति पर्णसूत्रम् । १२ का० स० ४।५।१३ । १३ का०
स० ३।६।५ । अस्योपप्राया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्शु इति सूत्रव्यरूपम् । १४ स्यात्तु कुटुम्बनी पुरन्त्री
२।६।६ । इयमरादिकीशोऽपुरुषान्तपुरुष्णीशव्यवस्थैव सत्त्वादत्र पुरन्ध्रय इति पाठोऽपुक्त इति न
भ्रमितव्यम् । पुर धरन्तीति विग्रहे “अन इ” पा० उ० ६।१।३९ इति इ । पृष्ठोदरादित्वात्पुरोऽुकारान्तत्व
मुमागमन्तन्ति रोत्या तस्यामुपरते । अत एव “तौ म्नातकैवन्युमता च राजा पुरन्त्रिभित्र क्रमश
प्रयुक्तम्” इति रघु । पुरन्वमयन्तीति न विचारसहम्, तत्साधकानुशासनविरहात् । १५. भार्यादिपुरन्ध्रयन्त-
शाहेषु सामान्यविशेषप्रभावादर्थभेदो न विसर्तव्यः । तद्यथा—भाया, जाया, कुल्या, कलत्र, गेहिनी, यह, पत्नी
दारा परिणातज्ञोवाचका । महिलामानिन्द्यो विशिष्टनायिके । पुरन्त्री पतिपुत्रवती । १६. का०उ० ३।१२ ।
१७. एतच्च कातन्त्रसूत्र नोपलव्यम् । गुणाद्वादेष्यम् शा० स० ३।४।७।५ इतीयमुपत्ययो वौ॑य ।

वा रमणी । नरेषु दयते गच्छति ईषे वा दयिता । प्रीणति पतिचित्त रज्जयति प्रिया । हज्यते इध्यते वा इष्टा । प्रकृष्टो मदोऽस्या प्रमदा । काम्यते नरेण कान्ता । चण्डते कुप्यति चरणी । चण्डिका च । प्रणयोऽस्या अस्तीति प्रणयिनी ।

सती पतिव्रता साध्वी पतिवत्येकपत्यपि ।

मनस्विनी भवत्यार्या-

५

सप्त पनिव्रतायाम् । एक पतिरस्तीति संती^१ । पतिव्रत करोति पतिरेव व्रत सेव्यो नान्यो यस्या इति वा पतिव्रता । पतिसेवैव व्रत यस्याः पतिव्रता । यस्तुति—“नास्ति^२ खीणां पृथग्यज्ञो न व्रतमिति”^३ । साधयति साध्वी । पतिरस्या अस्तीति पतिव्रती^४ । एक पतिर्यस्याः सा पक्षपती । मनोऽस्या अस्तीति मनस्विनी । अर्थते सेव्यते आर्या । मुचिरिता ।

विपरीता निरूप्यते ॥ ३४ ॥

मया घनज्जयेन, माष्यकर्ता अमरकीर्तिना वा कथ्यते विपरीता असद्वा ।

१०

बन्धकी कुलटा मुक्ता पुनर्भूः पुंचली खला ।

पद् बन्धक्याम् । बन्धाति तहज्जितानि बन्धकी । कुलमटि कुलटा । तथा चोणादौ “टल ट्वल वक्लये” हेताविन । अस्योपवाया दीर्घ । कुलपूर्व । कुल टालयति कुलटा । ‘कुले’ टाले-रिलुक् उश्^५ कुले उपपदे टालेरिलन्तस्य इः प्रययो भवित इल्कु च । स्वाचार मुच्यते (स्म) पत्या जनैर्वा मुक्ता । पुनर्भवतीति पुनर्भूः । पुमास चालयति पुंश्चली । वा पञ्चेन्द्रियोऽप्यमुख लाति गृह्णातीति १५ खला, अन्यपुष्पत्वात् । पाशुला, स्वरिणी, असती, इत्वरी, धर्षणी, अविनीता, अभिसारिका, चपला ।

स्पर्शाऽभिसारिका दृती स्वैरिणी शम्फली तथा ।

पञ्च दूर्याम् । ‘स्पृश स्पर्श’^६ । स्पृशति, स्पृश्यति, अत्राक्षीति पर्स्पर्श वा वज् । स्पर्श । ‘पद्-रजविशस्पृशीचा वज्’^७ । नामिनश्च गुण । ‘जियामादा’ आप्रत्यय । स्पर्शा । पुरुषान्तरमभिसरति अभिसारिका । दूयन्तेऽस्या^८ मालयति दृती । ईरुगतौ कम्पने च^९ । ईरु । ईरुगम ईरु । “भावे”^{१०} घन् प्रय । त्वय ईरु, स्वर । स्वरौ वियतेऽस्या स्वैरिणी । “तदस्याऽस्तीति” मन्त्वःत्वीन्^{११} इन् । “‘नदायन्त्रिववाह’^{१२} ई प्रन्ययः । रपूवणम्य^{१३}” नम्य गत्वम् । श मुखम् कर्त्ति निष्पादयतीति शम्फली । तथा तेनैव प्रकारेण ।

गणिका लज्जिका वेश्या स्पार्जीवा विलासिनी ।

पण्यस्त्री दारिका दामी कामुकी मर्ववद्धभा ॥ ३६ ॥

२५

नव वेश्यायाम् । गण, पेटकोऽस्त्वत्वा, गणवतीश्वरानीश्वरो वा गणिका । ‘लज्जि लाजि लाजि लज तर्ज भर्त्तने’^{१४} । लज्जयति निः स्वान्पुरुषान् तर्जयतीति लज्जिका । वेशो वेश्यावाटे भवा वेश्या^{१५} । रूपेण आ समन्ताजीवतीति रूपाजीवा । विलासोऽस्याऽस्तीति विलासिनी । तथा चोकम—

“हातो मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः ।

विलासो नेत्रजा झोयो विभ्रमोऽत्र हग्नतयोः ॥

३०

१ असधातो शतप्रत्ययात्तो द्वीवन्तः सतीशब्द । २ “नास्ति खीणा पृथग् यज्ञो न व्रत नाप्युपोषणम् । पति शुश्रूपते येन तेन स्वर्गे न हीयते”^{१६} इति मनुस्मृति. ५।१५५। ३ पतिवत्नी, एकपत्नी इति पाठो युक्त । ४ का० ३० ५।४७ । ५ का० सू० ४।५।१ । ६ का० सू० ३।५।२ नामिनश्चोपवाया लघो इति पूर्णसूत्रम् । ७ दूयन्ते परित्यन्ते । अत्यं कर्त्तर छीपुमासः । ८ का० सू० ४।५।३ । ९ का० सू० २।६।१५ । १० का० सू० २।६।५० । ११ का० सू० २।४।४८। “रपूवर्षणेभ्यो नोममन्त्य स्वरहयकवर्गाऽन्तरो ऽपि”^{१७} इति पूर्णं सूत्रम् । १२ वेशेन नेपथ्येन शोभते, “कर्मवेशावत्”^{१८} इति यत् । वेशो भवा दिगादित्वावद् ।

पण्ट्य स्त्री परथरुली । परिमाण कृत्वा रमयतीत्यर्थः । हणाति विदारयति कामिनम् दारिका । दस्यति परिकर्मणा ज्ञयति, ददात्यात्मान वा दासी । दाशी । तालव्यदन्त्यः । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । सर्वेषां पुरुषाणा वल्लभा सर्ववल्लभा । सैरिन्ध्री ।

५

“^१चतुष्प्रिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी ।
प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री कथ्यते बुधैः ॥”

गन्धकारिका । पण्ट्यस्त्री च ।

कान्तेष्टौ दयितः प्रीतः प्रियः कामी च कामुकः ।
वल्लभोऽसुपतिः प्रेयान् विट्श्च रमणो वरः ॥३७॥

त्रयोदश कान्ते । काम्यतेऽभिलायते कान्ते । इष्यते इष्ट । दया कृपा सजाता अस्येति दयितः ।
 १० “^२ताप्तिकादिदर्शनात्सजातेऽर्थे इतच् ।” “^३इवर्णावर्णयोलोपः स्वरे प्रत्यये पे च ।” आकारलोपः । सौरेकः ।
 प्र प्रकर्षण इ कामसुखम् इत प्रातः श्रीत । पृथोदरादित्वात् आकारलोपः । प्रीणातिस्म श्रीतः ।
 प्रीणाति प्रीणिते वा प्रियः । “^४नाम्युपध्योक्त्राजा कः ।” “^५स्वरादादिवर्णोवर्णान्तत्य धातोरज्ञुवै ।”
 कामोऽस्यात्तीति कामी । कामयते इत्येवशील कामुक । वल्लते वल्लभः । “^६कृशशलिगदिर-
 रसिवलिवलिम्पोऽभः ।” अभ प्रत्यय । असूना प्राणाना पति, असुपति । अतिशयेन प्रिय प्रेयान् ।
 १५ “^७प्रियस्थिरस्किरुचहुलगुरुचद्वृप्रदीर्घवृन्दावनाः ।” विट शब्दे
 विटति कामोदेकशब्द करोतीति विटः । “^८इगुप्तेति कः ‘रमु क्रीडायाम् ।’ रम् । रमते कदिच्चत् ।
 त प्रयुहन्ते इत् । अस्योपधादीर्थः । “^९मानुब्रव्याना हृत्वः ।” रमयतीति रमणः । “^{१०}नन्यादेषु ।”
 “^{११}युवक्षानामनाकान्ता” अन् । “^{१२}कारितस्य” कारितलोपः । “^{१३}रयूः” नस्य खत्वम् । वृणोति वर-
 यति वा वरः । कमिति । पति । वरयिता । भर्ता । भोक्ता । धवः । रुच्य । अभीक । “^{१४}अम्य-
 २० नुभ्या कामपितरि को वा दीर्घश्च” जनयति कः । अभिकः । अमुकः । प्राणाधिनाथः । सेक्ता ।

सवित्री जननी माता

त्रयः मातरि । सूते जनयति सवित्री । जनयति जायतेऽस्या वा जननी । माति गर्भोऽत्र
 १ “मानयति वा माता । अम्बा ।

जनकः सविता पिता ।

२५ त्रयः पितरि । जनयति उत्पादयतीति जनकः । पुत्रान् सृजते (सूते) सविता । अहितात्
 पाति रक्षतीति पिता । “उणादौ” पा रक्षणे, पातीति पिता । “स्वमादयः”^{१०} । “स्वसुनप्तृनेष्टुत्वष्टु
 क्षत्तुहोत्प्रशास्त्रपितृमातृद्वित्रामातृभ्रातरः” एते शब्दास्त्रनप्रत्ययान्तः निपात्यन्ते ।

१. “^१चतुष्प्रिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी । प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री स्ववशेति चेति कात्य”
 इत्यमरकोशे क्षी० स्वा० । २ का० रू० पू० ५०८ । ३ का०सू० २१६४४ । ४ का० सू० ८२०५१ । ५
 का०सू० ३१४५५। इतीपु । ६ का० उ० सू० ३११२ । ७ पा०सू० ६१४१५७। इति प्रियशब्दस्य प्रादेश ।
 ८. “^२इगुप्तशास्रीकिर क.” पा०सू० ३१११३५। ९ का० सू० ३१४६५। इति हस्त्व । १०. का० सू०
 ४२२४९। इति युप्रत्यय । ११ का० सू० ४६४५४। इति योरनादेश । १२ का० सू० ३१६४४।
 इतीनो लोपः । १३ का० सू० २१४४८। १४ कातन्त्रे नैतत्स्त्रमुपलब्धम् । जैनेन्द्रव्याकरणे—“शृद्गलिं-
 कोदरिके” त्यादि सूत्रम् ४। १। १७। तेन कप्रत्ययान्तः पक्षे दीप्तान्तश्वाभिकोऽभीक इति निपातितः । १५.
 मानयतीर्थ, विग्रहस्तु मातीत्येव । मा माने । तृच् प्रत्ययान्तः । १६. का० उ० २। ४२ ।

देहापघनकायाङ्गं वपुः संहननं तनुः ॥ ३८ ॥
कलेवरं शरीरं च मूर्तिः

दश देहे । देहस्त्र अपघनश्च कायश्च अङ्गं च । समाहारसमासत्वादेकवचनम् । दिह । देखीति देहः । “दिहितिहितिलिपिश्वसिन्यध्यतीष्यातां च” । एषा णो भवति । अपहन्यते अपघनः । ‘मूर्ती॒ वनिश्च’ अल् । चित्र् चयने । चि । चीयतेऽसौ कायः । ‘३शरीरनिवासयोः कथादः’ ५ चिनोते शरीरे निवासे चायें घन् भवति आदेशस्त्र को भवति । उख, णख, वख, मख, रख, लखि, इखि वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, स्वगि, इगि, रिगि, लिगि गत्यर्था । अङ्गति मरण गच्छतीति अङ्गम् । उप्यन्ते पुरुषायां अनेनेति वपुः । ‘ऋ॑पूर्वपिचक्षिजनितनि-धनिम्य उत्स॑’ एव उत्स॑प्रययो भवति । सहन्यन्ते सपद्यन्ते धातवोऽत्र संहननम् । धातुभिः रसासृग्रामास-मेदोऽस्थिमजशुक्रैस्तन्यन्ते तनुः । तनू । उणादों तनुवित्तारे । तनोतीति तनू । ‘कृषि॑’चमितनिधनि-बधिसर्जिलिङ्ग॑य ऊ’ एव्य ऊप्रत्ययो भवति । कलते स्थिरत्वं गच्छति कलेवरम् । कडति मात्रति वा कलेवरम् । कडेवर च । अपरसिहमध्ये॑ ‘कलयते कलेवरम्’ । शीर्थते लक्ष्य गच्छति रोगज्वरादिभि शरीरम् । ‘कृ॑शशोण्डुम्य ईर् ।’ एव्य ईरप्रत्ययो भवति । उणादित्वात् । मूर्ढां मोहसमुच्छ्राययोः॑ मूर्ढ॑न मूर्तिः । मित्रां किं । ‘घोपवन्योश्च कृति॑’१० इति नेट् । “राल्लोप (ध्या)॑११ इति छकार-लोप” । “नामिनार्बोदकुचुरु रोर्यज्ञने॑१२ दीर्घ॑ । व्यञ्जनम्॑१३ । प्रथ॑ सि । ‘रेक॑१४ । विपह॑ । १५ वर्षम् । पुरम् । ज्ञेत्रम् । गोत्रम् । धनः । पुद्गल । प्रतीक । अवयव ।

अस्मिन् भवः

अस्मिन् काये भवः कायभव । देहभव । अपघनभव । अङ्गभव । वपुर्भव । सहनन-भव । तनुभव । कलेवरभव । शरीरभव । मूर्तिभव । कायज । देहज । अपघनज । अङ्गज । वपुर्ज । सहननज । तनुज । कलेवरजः । शरीरजः । मूर्तिजः । एतानि पुत्रनामानि भवन्ति । भव २० प्रयोगे ।

सुतः ।

पुत्रः सनुरपत्यं च तुक् तोकं चात्मजः प्रजा ॥३९॥

अश्वै पुत्रे । सूयते सुत । पुनातीति पुत्रः । “१०पूत्रो हस्त्वश्च॑” अस्मात् त्रक्प्रत्ययो भवति धातोर्हस्त्वश्च । कोजुणार्थ । तथा च सोमनीत्याम॑१—“य उत्पन्नः पुनाति वशं स पुत्रः । अथ २५ पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते वा पुत्रः । सूयते सुनुः । ११०सूविषिम्या यग्वत्॑” आन्या तु प्रत्ययो भवति, स च यग्वत्॑” पूर्व प्राणिगर्भमिच्छने॑” वल शल पत्नू पथे च गतौ॑” पत् नन् पर्व । न पतति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ तदपत्यम् । “नन्जि॑१४ पतेर्य॑” यप्रत्ययः । नस्य॑१५ तदपु० सि । नपु०

१. का० सू० ४२४५८ २. का० सू० ४५५५८८८ इत्यल् घन्यादेशश्च । ३. का० सू० ४५५३५ । ४. का० उ० २४६८ ५. का० उ० १३१६ कले शुक्रे मधुराव्यक्तव्यनो वा वर श्रेष्ठम् । “हलदन्तादि॑” ति सप्तम्या अलुक् । इत्यन्यत्र । ७. क्षीर० भा० २४६७० ८. का० उ० ३४८८ ९. का० सू० ४५५७२८ इति किप्रत्यय । १०. का० सू० ४६६८० ११. का० सू० ४१५५८८ १२. का० सू० ३८१४ । १३. “व्यञ्जनमस्वर पर वर्णं नयेत्” इति पूर्ण कातन्त्रसूत्रम् । १४१२१। इति व्यञ्जनस्य पर-वर्णयोगः । १४. “रेकतोर्विचर्जनीय॑” इति पूर्णम् । का० सू० २३४६३। इति सकारस्य विसर्गं । १५. का० उ० ४४१। १६. नी० वा० समु० ५ सू० ११ । १७. का० उ० २८८१८८८ १८. का० उ० ६३०। १९. “नस्य तत्पुरुषे लोप्य॑” इति पूर्णम् । का० सू० २५४२२। इति नलोप ।

अका०^१ । मोऽनु०^२ । तोजति तुक् । स्वयते तोकम्^३ । आत्मनो जात आत्मज । प्रकर्पेण
जाता प्रजा । “सप्तमीष्वचम्यन्ते जनेऽर्ड॑” बाल, पाक, अर्मक, गर्भपोतरच । पृशुक, शिशु,
शाव, डिम्ब, वटु, माणवक, भ्रूण ।

उद्घस्तनयः पोतो दारको नन्दनोऽर्भकः ।
स्तनन्धयोत्तानशयौ—

अथो बालक । उद्घतीति उद्घह । खश् । तनोति विस्तारयति वशम्, तनयः । “तने०^४
कय॑” पवते वातेन पोत॑ । दारयति दणाति वा तस्येना मनासि “दारक । ‘दुनदि समुद्दौ०^५”
नद् । अत एव नन्द । नन्दति कश्चित्समन्यः प्रयुड्के० ॥० धारोश्च होतो (हेतौ)” इत् । नन्दयतीति
नन्दन । “नन्दि० वासिमादिदूषिषाधिशोभिर्विर्धिन्य॑ इनन्तेऽयोऽसज्जायाम्” युप्रत्ययः । स्वमते “नन्दादे-
र्यु॒” यु प्रत्ययः ॥१० युक्तानाम०^६— इति युस्थाने अनः । ॥११० कारितस्यानामि० कारितलोप ।
अर्ह मह पूजायाम्^७ अर्हत्यर्भकः । ॥१२० मूकादय॑” मूक्युकाऽर्भकपृथुकवृकसकूका एते कप्रत्य-
यान्ता निपात्यन्ते । स्तनौ धयतीति स्तनन्धय । ॥१३० शुनीत्तनमुत्तज्जूलास्यपुण्येषु घेटः० ॥१४० खश् ।
उत्तान, शेने उत्तानशय । ॥१५० उत्तानादिपु कर्तृपु॒ अच् ।

स्त्री चेद् दुहितरं विदुः ॥४०॥

पुञ्चा दुहिनरं०^{१६} दोग्धि मातृकुल दुनोति वा विदु, कथयन्ति । तनया, पुत्री ।

१५

वयस्याऽली सहचरी सधीची सवयाः सखी ।

पट् सख्याम्^{१७} । वयसा तुल्या वयस्या । वयसी च । आ समन्ताच्चित लाति आलि० ।
स्त्रियामी० आली० । सह सार्धं चरतीति सहचरी० । सहायतीति सध्य॒ । ॥१८० सहसन्तिरसा सत्रिमिति-
रय॑” ईप्रत्यये सधीची० । सह वयसा वर्तते सवया०^{१९} । समान खयातीति सखि (खा)० । स्त्रियामी०
सखी० । ॥१९० “सख्यादय” सखि अश्रि प्रहि इत्यादयो डिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

२०

आलीविवर्जितं मित्रं मम्बन्धो मित्रयुक् सुहृत् ॥४१॥

चत्वारो मित्रे० आली रहितानि वयस्यादीनि नामानि मित्रवाच्यानि स्युरित्यर्थः । त्रिमिता
स्नेहने० । मेवति स्म मेदते स्म वा स्नेहयुक्तो भवति स्म वा मित्रम् । ॥२०० “चमिदिम्या त्रक्” आम्या०^{२१}

१ “अकारादसमुद्दौ॒ मुश्च इति पूर्णम् । का० स० २०२३७ इति सेलोंपो सुरागमश्च ।
२ “मोऽनुस्वार व्यञ्जने०” इति पूर्णम् । का० स० १५१५१ । ३ “तु ज्ञात्वा व्यञ्जननिकेतनेतु०” चुरादौ॒
वा णिच् । तोजति पितृधनमादने० तुक् इति टीकाशय । ४. तौति पूर्यति पितृकार्य पितृरभावेऽपीति
तोकम् । तु सौत्रो धार्त्तिर्हिमाग्रात्तिर्हिमि० चादुलकात्क इति व्युत्पत्यन्तरमप्युहम् । ५ का० स० १५११।
इति जनेऽर्ड॑ । ६ का० ३० २०२५१ इति तन धातो० कथप्रत्यय । ७ पवते वातेनेति विप्रहस्तु नौका-
वाचकपोते चोऽय । पुत्रार्थं तु पुनाति पवते वा वश पोत॑ । मृग्वाहस्यमि०” इति का० ३० ४१२७।
सूत्रेण तप्त्यय । ८ मुवतिमनोदारण बालदाग न घटते । अतो दणाति दारयति वा मातृयैवनम्,
पित्रीनिसन्तानता जन्यातिवेति तदाशयोऽन्युन्नेय । ९ का० स० ३०१०१० १० का० स० ४१२४९।
“नन्दादे यु॒” इति सूत्रे दुर्गवृत्तिः । ११ का० स० ४१६५४ । १२ का० स० ३०१४४ इतीनो लोपः ।
इन कारितसज्जा कातन्ते । १३ का० ३० २०५८। १४ का० स० ४१३१३१। १५. का० स० ४१३१८
अत्र दुर्गवृत्ति० । १६ दोग्धि पितृकूलं दहति दुनोति वा मातृकुल दुहिता । स्वसादित्वात्तुन्प्रत्यय
इत्याशयः । १७ का० स० ४१६३१। इति सहस्य सध्यादेश । १८ समान वयो यस्या इति विग्रहो
न्याय । ज्योतिर्जनपदेति समानस्य सादेश । १९ का० ३० ४१९। २० का० ३० ४१४० । २१. मेवति
मेदते इति वर्तमानकालिको विग्रहो युक्त, न तु भूतकालिक ।

त्रक् प्रत्ययो भवति । ककारो यण्दभावाऽर्थस्तेनागुणत्वम् । सम्यक् स्नेहेन बधारीति सम्बन्धः । मित्र युनक्तीति मित्रयुक् । सुषु हरति चित्र सुहृद्^१ । शोभन हृदय यस्य वा । सखा, निर्ग. ।

सहकृत्वा सहकारी सहायः सामवायिकः ।

चत्वारः सहाये । सहकृतवान् सहकृत्वा । ‘कृतश्च’^२ क्वनिप् प्रत्यय । प्र० सि० । ‘बुटि३ चा०’ दीर्घः । सह समन्तात्करोतीति सहकारी । ‘नाम्यजातौ४ णिनिस्ताच्छील्यं’ । सह सार्धम् अयते गच्छति सहाय । समवाये नियुक्तः सामवायिकः । इकण् ।

सनाभिः सगोत्रो बन्धुश्च सोदर्यः

चत्वारो भ्रातरि । समाना नाभिर्यस्य सनाभिः । समान गोत्र यस्य सगोत्रः । बधारीति स्नेहेन बन्धुः । ‘पट्यसि’ वसिहनिमनित्रपीन्दिकनिद्वन्धिवत्यणिम्यश्च’ एन्य एकादशम्य उ प्रत्ययो भवति । सोदर्यः । समानोदर्य, तर्गर्भ., सोदर, समानोदर, आत्मीय, स्वजनः, आपः, शातिः, १० सनाशेयः, सपिण्ड ।

अवरजोऽनुजः ॥ ४२ ॥

कनीयान्-

द्वौ (त्रयो) लघुभ्रातरि । अवर पश्चाजातः अवरजः । (अनु) पश्चाजात अनुजः । ‘सप्तमी५ पञ्चम्योर्ज (म्यन्ते ज) नेर्द६’ । अयमनयोरतिशयेन युवा कनीयान् । ‘युवाऽल्पयो७ कन्वा । कनिष्ठः । १५

अग्रजो ज्येष्ठः

अग्रे जात अग्रजः । प्रकृष्टो वृद्धो ज्येष्ठ । ‘वृद्धस्यै८ ज्य’ वृद्धशब्दस्य ज्य आदेशो भवति । पूर्वजः, वरिष्ठ, वर्षीयान्, अग्रिय ।

भ्रातृजानी स्वसाऽनुजा ।

त्रयो भगिन्याम् । भ्रातृजाता भ्रातृजानी९ । स्वस् (स्य) ति ज्ञप्ति ज्ञिपति ज्ञित्त स्वस्त्^{१०} । २० शृदन्तः । अनु पश्चाजाता अनुजा । भगिनी । भग्नी च । जामि । यामिश्र ।

भर्तुः स्वसा ननान्दा स्यात्-

स्यात् भवेत् । भर्तुःस्वसा भगिनी । ननान्दा । ‘टुनदि समृद्धौ११’ । नद् । ‘अत॑१ एव०’ ननु पूर्व । न नन्दति भ्रातृजाया यम्या सत्या सा ननान्दा । ‘नज्रि१२ च नन्देष्वर्ण॒ दीर्घश्च’ नज्रि उपपदे

१ सुषु हरतीतिव्युत्पत्तिस्तु तान्तसुहृदत्शब्दे सम्भवति । मित्रवाचकदान्तसुहृदशब्दे तु शोभन हृदयं यस्येत्येव । हृदयस्य हृदादेश समासे । २ का०स० ४।३।९।० ३. “बुटि चासम्बुद्धौ१४” का०स० २।२।१७ । का०स० ४।३।७६। ५ का०उ० १।६। ६ का०स० ४।३।०।१। ७ वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ८ वर्तमान-कातन्त्रे नोपलब्धम् । ९. नान्यस्मिन्कोषे भ्रातृजानीशब्द उपलब्ध, नाप्येत्तन्साधक किमपि ध्याकरण-सन्नम् । भ्रातृजातेति विग्रहोऽपि भगिन्यर्थेऽसगत । तथापि भ्रात्रा सह भ्रातृजातेति विग्रह्य बाहुलकादौ-णादिकमण्णप्रत्यय जनधातो प्रकल्प्य अणन्तत्वान्वीपि भ्रातृजानीति शब्दो ग्रन्यकारप्रत्ययात् कथञ्चित् उपाधेय । १० स्वस्यति ज्ञिपति चित्र भ्रातृ स्वसेति विग्रहो चौ॒य । “अमु ज्ञेपरो॑” दिवादौ । सुपूर्वकातत “मुज्ज्वलेष्वर्ण॒ न” इति शृन्प्रत्यय । कातन्त्रोणादौ तु ‘स्वसादयः’ इति ‘स्वस् प्राणने’ इत्यत शृन्प्रत्यये शकारस्य सकारे च “श्वसितीति स्वसा” इत्याह । अत्र ज्ञिपतीति दर्शनात् ‘अमु ज्ञेपणे इत्येव भाष्य कर्तुरभिप्रेत इति शायते । ११. “अत एव वर्जनादिदमनुबन्धाना नोऽस्तीति॑” दुर्गवृत्ति । का० स० ३।६।१०। १२ का० उ० स० २।३।९।

सति नन्देवर्धतोश्चर्णुन् प्रत्ययो भवति अकारो दीर्घश्च भवति । ननान्दा इति जातम् ।

मातुलानी प्रियाम्बिका ॥ ४३ ॥

द्वौ मातुलभार्यायाम् । मातुलस्येय भार्या मातुलानी । “इन्द्रं वरुणं भवशर्वं रुद्रहिमयमारण्य-यव्यवनमातुलाचार्याणामातुक् ईपूच्” । अम्बैव अम्बिका । ‘अम्बादिभ्यो डलेका’ ड, ल, इ, प्रत्यया ५ भवन्ति । प्रिया चासौ अम्बिका प्रियाम्बिका ।

वैर्यागतिरमित्रोऽरिर्द्विट् सपत्नो द्विषद्रिपुः ।

आत्रव्यो दुर्जनः शत्रुद्दृष्टे द्वेषी खलोऽहितः ॥ ४४ ॥

पञ्चदश शत्रौ । विशिष्टाम् ई लक्ष्मीम् ईरयति निर्गमयति वीरं, वीरस्य कर्म वैरम् । [वैरमस्यास्तीति वैरी ।] वैरिपुरमित्ति गच्छति आरातिः^३ आरातिश्च । न मित्रम् अमित्रम् । १० अधमान्तरादिवत् । “विषप्तेन नच्” इति सारस्वतं “सूत्रम्” । शत्रुविषप्तिं अरिः । द्वेषीति द्विट् । “सत्” सूदिग्रदुहुव्युजविदभिदल्लिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि” क्रिप् । एकार्याऽमिनिवेशेन समान पतति सपत्न । द्विष्टे द्विषन् । निष्ठुर रथति रिषु । “रज्जुतर्कुवल्गुफल्मुशिशुरिपृशुनघव ।” एते उप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तं प्राप्तणार्थं प्राप्तस्य बाधनार्थम् । लक्षणेन यद्यदिष्टद्व तत्सर्व निपातनात्सद्म् । तथा क्षीरस्वामिन्—“रेपयनि रिषुः । रेषु गतौ । भ्रातर व्ययति मारयति १५ भ्रातृव्य । दुष्टजन दुर्जनः । परमभट्टारकश्रीयश कीर्तिसम्भाषितप्रम्य—

“प्रशस्या न नमस्याऽपि दुर्जनैर्या विधीयते ।
कण्टकः पादलग्नोऽपि न शुभाय प्रजायते ॥”

तथा च सूक्ष्मिकावल्याम् —

“वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्ष्मकुहरे
वरं भस्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तविनिहितो
न जन्य दौर्जन्य तदपि विपदा सद्म विदुषा ॥”

अत्र ये केचिद् दुर्जना, मन्ति, तेषा मस्तकेशनिपातो भवतु । तथा च^१ —

“दुर्जनं सुहियउ होव जगि सुयणु पयासिउ जेण ।

अमित्रविसे वासस तिमिण जिमि मरगउ कच्चेण ॥”

२५ शृणाति शीर्यते वा “शत्रु । दूष्यते निन्द्यते लोके दुष्ट । द्वेष्ट^२ द्वेषोऽस्यस्य वा द्विषन् ।

१ पा० स० ४।१।४९। अत्र सत्रे यमेत्यविक पाठ । २ “द्वायनान्तयुवादिभ्योऽण्”युवादित्वादण् । ततो मत्वये “अत्र इन्हनौ” इतीन् । ३. “ऋ गतो” । आडुर्वकाद् ऋषातोर्बहुलकादातिप्रत्यय । अन्यत्र तु न राति सुख ददातीति न न शुर्वकात् ‘रा’ (दाने) धातो किञ्च कोच सज्जायामिति किञ्च । ४. “तदन्यतद्विरुद्धतदभावेषु नच् वर्तेते” इति वक्तव्यम् । “अन् स्वरे” सार० समा० १४ स० । ५ का० स० ४।३।७।४। ६ का० उ० स० १६। ७ क्षीर० भा० २।८।१०। ८ “व्येज् सवरणे” धात्नामनेकार्थ-त्वादिसाऽये वृत्ति । आतोऽनुपर्गे क । ९ निर्णयसगरयन्त्रालयप्रकाशितकाव्यमालाक्षम गुच्छेसुक्ति-मुकावलौ ६१ श्लो० । १० सावयघ० दो० २। ११ “जन्वादय । जन्मशसुशिशुशत्रव ।” एते उप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । इति का० उ० दुर्ग० त्र० शा८। १२ द्वेषोऽस्यस्येति केवलमर्थाऽभिप्रायेण । विग्रहस्तु द्वेषीत्येव । शत्रृप० ।

खलति सज्जनगुणानाच्छादयतीति खला । न मैत्रीं हिनोति गच्छति, न हितो वा, ० अहित । अभियातिः, प्रतिपद, असहन, जिषासु, परिपन्थी, पर, अषुद्धत, अपथी, पर्यवस्थाता, शान्तव, प्रत्यनीक, देवण, दुर्दृद, दस्यु, अभिमन्थी ।

दीधितिर्भानुसूतोऽशुर्गमस्ति: किरणः करः ।

पादे रुचिर्मरीचिर्मास्तेजोऽर्चिगौर्युतिः प्रभा ॥४५॥

५

षोडश किरणे । दिधीते दीयने दीधिति । “दीधीडो डिति” दीधीडो धातोर्दितिः प्रत्ययो भवति । ‘भा दीमौ’ भाति भानुः । “दामागिवृत्यो तु” । एन्यो तु. प्रत्यय स्यात् । बसति रबौ ४ उत्त्र । पुसि । अशनुते जगद् व्याप्रोति अशुः । छी । उणादौ । अनन्च । अनितीति अशुः । अनेः “शु” अनेधातो शुप्रत्ययो भवति । [“भा दीमौ” भाति भानुः ; “दामारी”] गा मुव बमस्ति १० गमस्ति ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्ययः ।

पोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृष्ठोदरे ॥”

१०

कीर्यते किरणः । हलायुधे—‘किरति विक्षिपति तत्मांसि किरण’ । “१ कमून्या कन । कीर्यते करः । पदाने पादः । १० पदरुचिवशस्युशोन्ना घन् ।” रोचते रुचिः । घ्रयते तमीनेन मरीचि । स्त्रीनो । उणादौ । घ्रियते मरीचि । “११ मृकण्यामीचि” आम्यामीचि प्रत्ययो भवति । भासते २५ घ्रिपि सान्तो भास्त् । स्त्रीनो । पु स्त्रेवेति शब्दभेद । भा । नासौ । भास । तंजयतीति तेजस् । अर्चयतीति अर्चिप् । अर्चयते अर्चिः । अर्चिः “शुचिर्हचित्तुपिछदिल्लिदिभ्य इतिः ।” गच्छति तमोऽत्रोदिते गौ । स्त्रीनो । घोतन द्युति । घोतने (वा) द्युति । प्रभाति प्रभा । रोचि, अभीशु, प्रद्योत, रश्मि, वृणि, रुचि, विमा, धाम वसु केतु, प्रग्रह, उपघृति, धृष्णि, पृश्नि, मयूख, विरोक, शेकन्च ।

२५

२०

दीमिज्योतिर्महो धाम गश्मरूजो विभावसुः ।

सप्त नेजसि । दीयने दीमि । घोतने उग्रोति । ‘ज्योतिरादय’^{१३} । ज्योतिर्बहिरादय । महति मह १४ । सान्तम । धीयने सूर्येण नान्तम् धामन् । रशि सोत्र । रशति अशनुते रशिम । “ऊर्ज बलप्राणनयो ।” ऊर्जयतीति ऊर्ज । क । [१५ विभा वमुर्यस्य स विभावसुः ।] (विभा । वसु ।)

२५

शीतोष्णप्रायपूर्वाञ्चौ तदन्ताविन्दुभास्करौ ॥४६॥

तथोरन्तौ^{१६} तदन्तौ । इन्दुभास्करौ । इन्दुश्च भास्करश्च इन्दुभास्करो । कथभूतौ १ शीतोष्ण-

१ न मैत्रीं हिनोतिमेति भूते विग्रहो वीन्य । गत्यर्थवार्कर्त्तरि क । न हितमस्मादिति रामाश्रम । २ का० उ० म० ६।२६ । ३ का० उ० म० १।१ । ४ ‘बस् निवासे’ बस् धातो ‘स्त्रायि तञ्ची’ त्यादि उ० भूत्रेण रक्प्रत्यय सम्प्राणरण च । ५ का० उ० म० ५।८८ । अशयति विभाजयति “अश विभाजने” उप्रत्यय व्युत्पत्यन्तर च । ६ पुनरुक्तत्वात्परिहार्य । ७ वमस्ति दीपयति । “भस भर्मनदी-प्त्यो” । तिप्रत्यय । पृष्ठोदरादिवात्पोडशादौ वर्णविकारवदोकारस्याकार । ८ शा० म० २।२।७।२। “पृष्ठोदरादय” इत्यत्र कारिकारूपेण पठित । ९ का० उ० म० ६।१।४ । १० का० म० ४।५।६ । ११ का० उ० स० ३।८।३ । १२ का० उ० स० २।४।८ । १३ का० उ० स० २।४।५ । १४ महन् मह । महते पूज्यते वेति रामाश्रम । १५ वस्तुतत्तु “विभा” इति ‘वसु’ इति च तेजतः सज्जा । समुदितो “विभावसु” शब्दस्तु सूर्यग्निवाची । तदुक्त “सूर्यवही विभावसु” इति अम० को० ३।३।२।६। १६ ते दीधित्यादयः शब्दा अन्ते योस्तौ तदन्तौ इत्येव समानो वीन्यः । तयोरन्ताविति समाप्तम् लेखकप्रमादात्प्रयुक्त ।

(प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतोष्णौ (प्रायेण) पूर्वाञ्चौ यथोरिन्दुमास्करयो (तौ) शीतोष्ण (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतदीधिति । शीतदीधितिमान् । शीतभानु । शीतभानुमान् । शीतांशु । शीतांशुमान् । शीतगमस्ति । शीतगमस्तिमान् । शीतकिरण । शीतकिरणवान् । शीतपादः । शीतपादवान् । शीत-
 ५ रुचि । शीतरुचिमान् । शीतमरीचिमान् । शीतार्चि । शीतार्चिष्मान् । शीतभा । शीतभा-
 भान् । शीतगोवा^१ (मा) न् । शीतद्युति । शीतद्युतिमान् । शीतप्रभ । शीतप्रभावान् ।
 शीतदीपि । शीतदीपिमान् । शीतज्योति । शीतज्योतिमान् । शीतमहा । शीतमहस्तान् । शीतधामा ।
 शीतधामवान् । शीतरश्मि । शीतरश्मिमान् । शीतोर्ज । शीतोर्जवान् । शीतविभाष्मसु ।
 शीतविभावमुमान् । किरणशब्दानां (द्वेभ्य) पूर्वे शोतशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति ।
 उष्णशब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । उष्णदीधिति । उष्णदीधितिमान् । उष्णभानु ।
 १० उष्णभानुमान् । उष्णोक्त्त । उष्णोक्त्तवान् । उष्णांशु । उष्णांशुमान् । उष्णगमस्ति ।
 उष्णगमस्तिमान् । उष्णकिरण । उष्णकिरणवान् । उष्णपाद । उष्णपादवान् । उष्णरुचि । उष्ण-
 रुचिमान् । उष्णमरीचिमान् । उष्णभा । उष्णभास्तान् । उष्णनेजा । उष्णनेजस्तान् ।
 उष्णरुचि । उष्णरुचिमान् । उष्णांशु । उष्णद्युति । उष्णद्युतिमान् । उष्णप्रभ । उष्ण-
 १५ प्रभावान् । उष्णदीपि । उष्णदीपिमान् । उष्णज्योति । उष्णज्योतिमान् । उष्णमह-
 स्तान् । उष्णघामा । उष्णघामवान् । उष्णरश्मि । उष्णरश्मिमान् । उष्णोर्ज । उष्णोर्जवान् । उष्ण-
 विभाष्मसु । उष्णविभावमुमान् ।

शशी विधुः सुधासूतिः कौमुदीकुमुदप्रियः ।

कलाभृच्छन्द्रमाश्वन्द्रः कान्तिमानोपधीश्वरः ॥ ४७ ॥

दश चन्द्रे । शशो गुस्यास्तीति शशी । विदधात्यमृत विधुः । “वौ धात्रश्व^२” । सुधा अमृत
 २० सूथे सूधासूति । कुमुदानामिय विकाश (स) हेतुत्वात्कौमुदी (ज्योत्स्ना तस्याः प्रियः कौमुदीप्रियः) ।
 कुमुदाना प्रिय अभीष्ट कुमुदप्रियः । कला बिर्भूति कलाभृत् । “मा माने” चन्द्र मातीति
 चन्द्रमाः^३ । ‘चन्द्रे’ माने” चन्द्रे उपरये अस्मादसन् प्रत्ययो भवति । अगुणवदभावादकारलोपः ।
 भिन्नयोग स्पर्शार्थ गव । चन्द्रतीति चन्द्र । ‘रसायि’ तत्त्विविशिक्षिप्तिष्ठुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्रुदी-
 न्द्रियो रक्^४ । कान्तिगस्तीति कान्तिमान् । ओषधीनामीश्वरः ओषधीश्वरः । इन्दुः सोमः, राजा,
 २५ रोहिणीवल्लम्, अञ्ज, ऋद्येशः अत्रिनेत्रप्रसूतः । तथा चोक्त यशस्तिलके—^५

“आहु नेंत्रोत्थमत्रः स्तुतमसृतनिये य हरेन्मर्मन्धु
 मित्र पुष्पायुधस्य त्रिपुरविजयिनो मौलिभूषाविधानम् ।
 वृत्तिक्षेत्रं सुगार्णा यद्युक्तलितक बान्धव केरवार्णा,
 सम्प्रीति वस्तनोतु द्विजरजनियतिश्वन्द्रमाः सर्वकालम् ॥”

^१ “मादुपधायाश्” इत्यादि वत्वविधायक सूत्रम् । मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णवर्णोपवाच्च
 मतोर्माकारस्य वकार शास्ति । अत्र तथात्वाभावात् “शीतगोमान्” इति वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु शीत-
 गोशब्दत्य कर्मवारये ततो “गोरतद्वित्तुकि” इति इच्छा दुर्बारत्वात् “शीतगवान्” इति सुवचम् ।
 सिद्धान्ततस्तु नेहशस्यले मनुष्याणि । तदुक्त “न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुत्रीहित्तदर्थप्रतिपत्तिकर” ।
 २ का० उ० स० ५१। कुपत्यय । ३. चन्द्र कर्पूर माति तुलयति सादृश्येनेति ग्रन्थोक्तविग्रहार्थ ।
 चन्द्रमाहूलाद मिमीने तुलयति सादृश्येनेति विग्रहान्तरमप्यूद्घम् । ४ का० उ० स० ४५७।
 ५. का० उ० स० २। आश्वा० ३। ४७ इलो० ।

प्रालेयाशु., श्वेतरोचि, शशाङ्क., द्विजराज, रजनिकर., पीयूषरुचि, निशीथिनीनाथ, जैवाटक, मृगाङ्क., दाचायणीरमणः, मा० अप्युच्यते, सत्यभामेतिवत्। सुधामर्ति अमृतनिर्गमः, समुद्रनवनीतम्। देश्याम्^२।

उडूनि भानि तारक्षं नक्षत्रम्-

चत्वारो नक्षत्रे। अवति प्रभाम् उडू^३। क्लीकीवे। तथा चामरसिहे^४--

५

“नक्षत्रमुक्षं भन्तारा तारकाऽप्युडू वा विश्याम्।”

भाति दीप्त्यते भम्। क्लीरस्वामिनि--“भा विद्यतेऽस्य भम्।” तरन्त्यनया तारा^५। तारयति वा। ऋद्धोति हिनस्ति तम् ऋक्षम्^६। नक्षति खे याति न तम् क्षि (क्ष) णोति वा नक्षत्रम्। “अमि॒नक्षिकडि॑योऽन्तः।” तारक क्लीवेऽपि। यच्च॑ शाश्वतः--

“नक्षत्रे वा॑उक्षिमध्ये च तारकं तारकाऽपि च।

१०

लक्ष्य च—

द्वित्रेव्योमिनि पुराणमौक्तिकघनच्छायै. स्थितं तारकैः”

तत्पतिः

(नक्षत्र पर्यायेभ्य वर) पतिशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति। उडूपति। तारापति। ऋक्षपति। नक्षत्रपति:। उडूराजः। उडूस्वामी। उडूनाथः। नक्षत्रेश्वर। तारेन्दृ।

१५

निशा।

क्षणदा रजनी नक्षं दोषा श्यामा क्षिपा

सम रात्रौ। निशाति तनूकोति चेष्टामिति निशा, निशो वा। “आत^७०ऽचोपसगै”। क्षणमवसर ददातीति क्षणदा। तमसा रजति रजनि। क्लियामी। रजनी। रजनशब्दाद् वा नदादित्वादः। नेनेकि नक्षम्। दुष्ट दूषयति याऽत्र दोषा। आदन्तोऽव्ययाऽनव्यय। श्यायन्ते गच्छन्ति गच्छित्रा अत्र श्यामा। तयाऽनेकार्थ^८०(वनि)मखर्यम्—

“श्यामा रात्रिस्तु चिट्ठश्यामा श्यामा खी सुग्रहयौवना।

श्यामा प्रियज्ञूराख्याता श्यामा स्याद् वृद्धदारिका॥”

क्षिप प्रेरणे। क्षि४। क्षेपण क्षिपा। “१२या॑उन्नव्यमिदादिभ्यस्त्वद्।” क्षिप्यने स्वपेन जनै, निर्गम्यते वा। तमी। तमा आदन्तोऽव्ययाऽनव्यय। तमिक्षा। तमस्विनी। विभावरी। नक्षमुखा। शर्वरी। श्रियाम। निशीथिनी। यामिनी। वसति। वासनेयी। रात्रि।

१. “लोपः पूर्वपदस्थ च अचूपत्यये तथैवेष्ट” इति कात्यायनवार्तिकम् ।५।३।८३। पा० सूत्रस्थ पूर्वपदोपविधायकमत्र प्रमाण बोध्यम्। २. “देशी” शब्द. आन्तभाषावाचकः। क्लीरस्वामि-कृताऽमरभाष्येऽपि बहुत्र उपलभ्यते। साधुन्वमस्य पचादेराकृतिगणनात् “देवी” इतिवद् बोध्यम्। वस्तुत-स्त्रयं शब्दो दैशिक एव। ३ अवति प्रगा रक्षतीति ऊ। “अव रक्षणे” किं॒र्। “ज्वरवरे” त्यूद॑। डयते इति इः। डयतेर्जुप्रत्यय। ऊश्रासौ इश्व्रेति कर्मधारय। नक्षत्राणा रक्षणार्हत्वादाकाशीत्यतनशीलत्वाच उडुत्वमुपपत्रम्। “इको हृत्वा.” इत्युकारस्य हृत्व इति टीकाशयः। ४ अम० कौ० १।३।२।१। ५ क्लीर० भा० १।३।२।१। ६ भिदादित्वाददृ। अडि परे गुणः। निपातनाद्दीर्घः। ७. ऋषति गच्छति “ऋषी गतौ” तुदादि। औणादिकः सप्तरम्यः किं। पत्वकत्वक्षत्वानि। ऋक्षमिति। ८. का० उ० सू० ३।५। ९. “यच्च शाश्वतः” इत्यारभ्य “स्थित तारकै” इत्यन्त पाठ १।२।२।१। क्लीरस्वामिभाष्यस्योऽन्त यहीतः। १०. का० सू० ४।५।८।८। ११. १६ इलौ० श्लोका०। १२. का० सू० ४।५।८।२।

करः ॥४८॥

(निशापर्यात्परं) करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । निशाकर । ज्ञानदाकर । रजनीकर । नक्षत्रकर । दीपाकर । श्यामाकर । ज्योतिकर ।

तरणिस्तपनो भानुर्बधनः पूषाऽर्थमा रविः ।

५ तिग्मः पतञ्जो युमणिर्मार्तिण्डोऽको ग्रहाधिपः ॥४९॥
इनः सूर्यस्तमोध्वान्ततिमिरारिविरोचनः ।

सप्तदश मृष्टे । तरन्त्यनेनेति तरणिः । “श्रृङ्खृष्ट्यश्विवृतिग्रहिम्योऽुनि ।” तपति त्रिलोको तपनः । भाति दीयते करैः भानुः । “दामारिवृत्यो तुः” तुः प्रत्ययः । “बन्ध बन्धने” बन्धाति जनुटाटीब्रैधनः । “बन्धेत्रैविश्व” । अत्मान्नक् प्रत्ययो भवति ब्रायादेशश्च । इकार उच्चारणार्थ । १० पूष पुष्टौ । पुष्णाति वर्धते तेजसा पूषा । पूषादय ४ — “पूषपर्यमनुकृत्वन्तलाहन्मातरिश्वन्कलेदन्स्नेहन्-मूर्धनयूपन्दोषन्” एने कन्यता निपात्यन्ते । इयत्तेति अर्यमा । “ऋ गता” । रूथते रूथते रविः । “इ “सर्वधातुभ्य”” । तीतिज्ञतीति तिग्मः । “युविश्वचित्तिजा धमक्” । पतति नहृत्रपथे पतञ्जः । “तृ-७पतिम्यामङ्ग” । आम्यामङ्ग, प्रत्ययो भवति । दिवो मणिरिव युमणिः । मृतण्डस्यापत्य मार्तरङ्गः । मृतण्डश्च । आकाशमिथर्ति अर्कः । उणादौ “अर्च पूजायाम” अर्चन्त अर्कः । “इण्मीकापाशल्य १५ चिंकुदावाधाराभ्यक्” एव्य. क प्रत्ययो भवति । ग्रहाणामधिप स्वामी अग्राधिपः । एतीति इनः । “इण्जिकृष्टिम्यो नक्” । सुवति (प्रेरयति कर्मणि) लोकान् सूर्यः । “सूर्यरूच्याव्यव्याहृत्यै वर्तते” । सूर्य इति यप्रत्ययान्तो निपात । तमश्च व्यात च तिमिरश्च तमोध्वान्ततिमिरा, तेपामरिः, — तमोऽरि, व्यान्तारिः तिमिरारिः । विरोचते इत्येवशीलो विरोचन । “रुचादेश व्यञ्जनाद” । रुचा-दर्गणाद् व्यञ्जनादेय भवति । आदित्य, सविता, सहस्रकिरण, प्रयोतन, भास्कर, तिग्माशुः, दिनमणि, २० भास्वान्, विव्वान्, हरि, विकर्तनः, भग., गोपतिः दिनकर, सरः रुद्रश, अशुमाली, मिहिरः, तिमिर-रिपुः, अशुमान, अशुः, हरिदश्व., सप्ताश्वः, प्रभाकर, भानुमान्, हस., खग, मित्र, चित्रभानुः, अर्हर्ति, कर्मसाक्षी, जगचक्षुः, द्रादशात्मा, त्रयीतनुः ।

दिनं दिवाऽहर्दिवसो वासरः-

पञ्च दिवसे । “दोऽुवखण्डने” व्रति खण्डयति अन्धकारमिति दिनम् । “दोनात् १२ इ (व्रतेणि) २५ च” व्रते नैप्रत्ययो भवत्याकारस्येच । रविर्दि [र्धान् दी] प्यतेऽत्र, आदन्तमव्ययम् दिवा । अदन्त क्लीवम् । दिव विद्न् । न जहाति काल (रवि) महः । ‘नन्ति १३ जहाते’ इति क्षिप् (कनि.) । दीव्यतीति दिवस १४। दिवसम् । “१४ वेतसवाहसदिवसकनसा” एतेऽस्त्रप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वासयत्यत्र वासरः १५ । वासोऽपि । उभयम् । “देवि १७ विजिठभिमिवासिम्योऽुर्” एम्योद्रु प्रत्ययो भवति । शु. । घस. ।

१०. का० उ० सू० २४३ । २. का० उ० सू० २७ । ३ का० उ० सू० २५२। दुर्गवृत्तिश्च । ४ का० उ० सू० २५ । ५ का० उ० सू० ३१४ । ६ का० उ० सू० १५७ । ७ का० उ० सू० १२२ । ८. का० उ० सू० २५७ । ९. का० उ० सू० २५१ । १०. का० सू० ४१३ । ११. का० सू० ४१४ । १२. का० उ० सू० ६३७ । १३. का० उ० सू० २४४ । १४ दीव्यन्ति कीडन्ति प्राणिनोऽुत्र दिवस इत्यपि । १५ का० उ० सू० ३११ । १६ “वास उपसेवायाम्” वासयति सूर्यलोक प्राणिन वा वासरः । विग्रहे “अत्र” इति पदमधिकम् । १७ नैतत्सत्रम् का०उणादौ लब्धम् । तत्र “कृवाभ्यः सरक्” ३।६।२। इति सूत्रम् । वातीति वासर, वाधातो, सरक् प्रत्यय इत्युक्तम् । तत्रैव चतुर्थपादे ३।३ तमपरमपि सूत्रम् “मद्यसिवशिवासिम्य सरः” इति वासिधातोः सप्रत्यय उक्त । वासयतीति वासर । कौमुदीस्थमुणादिसूत्रम् “अर्तिकमिच्चमिभ्र-मिदिविवासिम्यश्चित्” ३।१२।७। इति वासिधातोरप्रत्यय ।

तत्करश स ॥ ५० ॥

दिनकरः, दिवाकरः, अहस्करः, दिवसकरः, वासरकरः, इत्यादि सूर्यनामानि भवन्ति ।

चक्रवाकाब्जपर्यायबन्धुः:-

चक्रवाकश्च अञ्ज च चक्रवाकाब्जे, तयोर्थकवाकाब्जयोः (परत्र) बन्धु शब्दप्रयोगे सूर्य-
नामानि भवन्ति । चक्रवाकबन्धु । अब्जबन्धु । पद्मबन्धु । कमलबन्धु । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । ५

कुमुदविप्रियः ।

कुमुदानां(परत्र) विप्रियशब्दे प्रयुज्यमाने सूर्यनामानि भवन्ति । कुमुदविप्रियः । कैरवविप्रिय ।
कुमुदविवल्लभः । इत्यादि ।

यमुनायमकानीनजनकः सविता मतः ॥ ५१ ॥

यमुनाजनक । यमजनकः । ^१कानोनजनक । सविता । मतः कथित । १०

वाहोऽथस्तुरगो वाजो हयो धुर्यस्तुरङ्गमः ।

सप्तिरवीं हरी रथ्यः—

एकादशाश्वे । वाल्मीकी गम्यतेऽश्ववाहैर्वाह । तथा उनेकार्थ^२ (खनि) मञ्जर्याम्—

“वाहो युग्मं घनो वाहो वाहके वाह इत्यपि ।

वाहो मानविशेषश्च वाहो बाहुरिति स्मृतः ॥” १५

“अश् व्यामौ ॥ अश् । अश्नुते व्यानोति वेगनामीष्ट्यानमित्यश्व । अथवा “अश् भोजने”
आशाति भद्रयति सुदगदीनित्यश्वः । “^३श्रिशलटिविशिष्य क” । वमात्रः । “धोपवत्योश्च
कृति” लेण् । “उरो (रसा) गच्छतीति उरणः । “डोऽसज्जायामपि” । पूर्वमश्वाना वाजा अभूविनिति
श्रुतिः । वाजाः सन्त्यस्य वजतीत्येवशीलो वा वाजी । इदन्तोऽपि, वाजिः । तथा हैमनाममालायाम्^४—

“वाज वाजस्तु पच्छेनुपि मुनो निःखनवेगयोः ॥” २०

हिनोंति गच्छति वर्धते (वा) अनेन हयू । धुरि सङ्गमे ताधुर्धुयः^५ । “^६यदुगवादितः” । तुर
(रेण) गच्छति तु (तो) तार्ति त्वरते वा तुरङ्गमः^७ । ‘गमश्च^८’ नाम्न्युपदे गमेश्च सज्जाया खो भवति
“घातवादेः^९ ष स.” । सपत्यस्थान गच्छतीति सप्ति । “^{१०}सपेत्तिततितनः” सपेधूर्तिस्ति तति तन् एते
प्रत्यया भवन्ति । अर्वति गच्छति अनेन नात्त, ^{११}अर्वन् । हरयनेन हरिः । रथे साधू रथ्यः^{१२} । गन्धर्वः,
तार्द्य, यु, धोक्क, अर्दनि.^{१३}, वीति . पीति. २५

१ कानीन कर्णे । कन्याऽवस्थाया कुन्त्या कर्णादृत्पन्न इति पौराणिकी कथा उन्नत्येया ।

२. ११ श्लोऽश्लोकाऽ । ३ का०उ०सू० २१।४ का०सू० ४।४०।५ भ्रान्तोऽय पाठः । उचितस्तु तुरेण
वेगेन गच्छतीति तुरण । ६ का०सू० ४।३।४७।७ अनेन०सू० २।७।८ धुर वहतीति धुर्य । ‘धुरो यद्गको’
इत्यन्वत्र । ९ का०सू० २।६।११।१० तुरपूर्वकादगमे “गमश्च” इति से तुरङ्गमः । तोतोर्ति त्वरते वेति विग्रहे
तत्सिद्धिप्रारोद्यन्था कल्पनीयः । ११. का० सू० ४।३।४५। १२ का० सू० ३।४।२।४। १३ का० उ० सू०
५।३।८। १४, “अर्व गतौ” बाहुलकात्कनिन् । १५ “रथ वहतीति सुवच । “तद् वहति रथयुग्मासङ्गम्”
इति यत् । १६ अर्दनिशब्दस्याश्वार्थे प्रमाण मृग्यम् । कोशान्तरेऽर्दनिशब्दार्थश्चेत्यम्—“अर्दनी चार्दनि-
रपि ख्ययः स्यु प्रार्थनाऽर्थना” कल्प० को० १।३।२।१। अर्वतीशब्दोऽश्विनीपर्यायस्तु सर्वसम्मत । ‘वीति’
‘पीति’ शब्दपोरश्वार्थे प्रमाणमधस्तात् ‘वीति सप्तिर्द्विकावा वातस्कन्धार्थ इत्यपि’ कल्प० को० १।५।
१।३। “पीति पाने सपूर्वा तु सद्धपाने हये पुणान्” विश्व० ।

सप्ताद्यश्वो मयूखवान् ॥ ५२ ॥

आद्यशब्दस्य (ब्रात्) पूर्वं यदि सप्तादि (सशब्दः) तदा सूर्यनामानि भवन्ति ।
सप्तवाह । सप्तश्व । सप्ततुरग । सप्तवाजी । सप्तहय । सप्तधुर्य । सप्ततुरङ्गम् । सप्ततसि । सप्तार्वा ।
सप्तहरिः । सप्तरथः ।

५

ख विहायो वियद् व्योम गगनाकाशमस्त्रम् ।

द्यौर्नभोऽत्रोऽन्तरीक्षं च-

एकादश गणने । खनति शून्यत्वेन खन्यते वा ‘खम् । विजहाति सर्वं विहायः’ । अवाय विहायसा
पक्षिणा मार्गं विह यच्छ्रुतीति वियत् । (आथवा वीना पक्षिणा मार्गं यच्छ्रुति वियत्) । अमरेन्द्रमाये—
“वियच्छ्रुतिः विरमति वियत् ।” वायुना वीयते (व्यत्रित व्यव्यते वा) व्योमन् । “स्त्रियविष्मित्वरि-
१० त्वरामुपधाया ” एषामुपधाया वकारस्य चोद्य भवति । “सर्वधातुम्यो मन्” (इति विपूर्वकावेमन्) । गम्यते
सर्वमनेन शगनम् । क्लीवे वा । गच्छ्रुत्यनेन गगन वा । आकाशन्ते सूर्योदयाकाशम् । न काशते वा
छान्दसो दीर्घं । अम्बते शब्दायते अस्त्रम् । दीर्घन्ति पक्षिणोऽत्र द्यौः । द्यियाम् । नद्यति वन्धनाति
सर्वमात्मना सान्तम् नभः । न नभम् इत्यदन्तम् न नभम् च । न भ्राजतेऽन्धम् । अन्त श्वचाण्यत्र अन्तरीक्षम् ।
पृष्ठोदरादित्वम् । द्यावाभूम्योरन्तरीक्षते वा अन्तरिक्षम्, अन्तरीक्षं च । मरुद्वर्तमन् । तारापथ । पुष्करम् ।
१५ विष्णुपदम् । त्रिदिवम् । नाकम् । अनन्तम् । सुरवर्तम् । महायाम् (वि) लम् । देश्याम् ।

मेघवायुपथोऽप्यथ ॥ ५३ ॥

मेघशब्दाप्रे वायुशब्दाप्रे च पथशब्दे प्रयुज्यमाने आकाशनामानि भवन्ति । मेघपथः । मेघमार्ग ।
घनपथः । घनमार्गः । पर्जन्यपथ । पर्जन्यमार्ग । मिहिरमार्ग । नप्राट्पथ । नभ्राष्मार्ग ।
तडित्पतिपथ । तडित्पतिमार्ग । सांदामिनीपतिपथः । सांदामिनीपतिमार्ग । वायुपथ । वायुमार्गः ।
२० वातपथ । वातमार्ग । अनिलपथः । अनिलमार्ग । मरुपथ । मरुमार्गः । समीरणपथ । समीरण-
मार्ग । गन्धवाहपथ । गन्धवाहमार्ग । श्वसनपथ । श्वसनमार्गः । सदागतिपथ । सदागतिमार्ग ।

तच्चरः खेच्चरः—

तत्र आकाशे चरतीति तच्चरः । आकाशाप्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने विद्याधरनामानि भवन्ति ।
लच्चरः । विहायश्वर । वियच्चरः । व्योमच्चर । नमश्चर । गगनच्चरः । अस्त्रच्चर । आकाशच्चर । अन्तरिक्ष-
२५ च्चर । मेघपथच्चर । मेघमार्गच्चर । वायुपथच्चर । वायुमार्गच्चर । घनपथच्चर । घनमार्गच्चर । घनाघन-
पथच्चर । घनाघनमार्गच्चर । जीमूतपथच्चर । जीमूतमार्गच्चर । अप्ररथच्चर । अभ्रमार्गच्चर । बलाइक-
पथच्चर । बलाइकमार्गच्चर । पर्जन्यमार्गच्चर । इत्यादिनामानि विद्याधरस्य ज्ञेयानि ।

तदृगः,

तत्र गणने गच्छ्रुतीति तदृगः । गगनाप्रे “ग” शब्दे प्रयुज्यमाने शकुन्तनामानि भवन्ति ।
३० खग । विहायोग । वियदगः । व्योमग । नभोग । गगनग । द्योग । आकाशग । अन्तरिक्षग ।

१ ‘खनु अवदारणे’ डप्रत्ययः । ‘खर्व गतौ’ लर्वत्यस्मिन्निति वा किङ्गः । अत्रापि ड । २. उक्त-
विग्रहे “श्रोहाकृत्यागे” हाधातो “वहिहाधाव्यश्लज्जन्दसि” ४।२२। इत्यसुन् गिन्वच च । गिन्वाद्युक् ।
विशेषेण हाययति गमयति विमानादीन् इत्यपि बोध्यम् । “हय गतौ” ष्यन्तादसुन् । ३. क्षीर०भा० १।२।२।
४ का० रु० ४।१।७।५ का० उ० स० ४।२।८।६, “गमेर्गश्च” इति युच् गथान्तादेश । ७ महाविल-
शब्दस्याकाशवाचकत्वेऽमरकोषमधस्तात्पमाणम्—“तारापथोऽन्तरीक्षं च मेघाध्वा च महाविलम्”
१।१।२। द्वेषक ।

मेघपथग । मेघमार्गग । इत्यादिनि ज्ञातव्यानि ।

पशी पत्री पतञ्चयपि ।

शकुनिः शकुनिविश्च पतञ्जो विष्किरोऽन्यथा ॥५४॥

सम पतञ्जो । पत्राः सन्यस्य पशी । पत्राणि सन्यस्य पत्री । नान्त । पततीति पत्रिः । त्रिप्रत्यये इदन्त । पतत्राणि सन्यस्य पतञ्चय । नान्त । पततीति पते परतोऽत्रिप्रत्यये इदन्तो वा पतत्रि । हलायुध-^५ भाष्यकारेण डाळणिकेन—पत्रिशब्दं पत्रिन् नकारान्तं पत्रिरिकारान्तश्च व्याख्यात । अमरसिंह-^६ नाममालायाम् ।

“पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्रथाण्डजाः ।

नगौकोवाजिविकिरविष्करपतत्रयः ॥”

इकारान्तं पत्रिशब्दं पठितोऽस्ति । भाष्यकर्ता ज्ञीरस्वामिना पतत्रिरिकारान्तो निविद्ध । १०
‘पतेरत्रिरिति’ ग्रान्त्या पतत्रि ग्रन्थकृदिदन्तं सन्यते । एव कथितमस्ति श्रीमद्मरकीर्तिना द्वयोर्वचनं प्रमाणम् । शब्दाना वैचित्र्यं वर्तते । न भसा गन्तु शक्नोति शकुन्त । शकुनिः । एव शकुनि । एव शकुनी । शकुन्त । शकुन । द्वाँ अदन्तौ । वयतीति वि । “वैत्रो डि”^७ । पतेन वैगेन गच्छतीति पतञ्जो^८ । विकिरति पत्राणि विष्किरत ।

“ वर्णान्सो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्यय ।

घोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृष्ठोदरे ॥”

१५

सुटागम । विकिरश्च ।

जाङ्गलं पिशितं मांगं पलं पेशी च-

पञ्च मासे । गल्यते अग्रते जाङ्गलं जङ्गलं च । पिश्यते रुविरादिमि पूर्यते पिशितम्^९ । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेनेति मासम् । ‘वृत्तं विदिहिमिनिकस्यशिकपिण्य स” । एव स. प्रत्ययो^{२०} भवति । पलयते (पालयते) देहं पलम् । रुषिगदिमि पिश्यते (पिशिति) शरीरम् पेशी । आमिषम् । रुच्यम् । तरसम् ।

तत्प्रियः ।

तस्य मासस्य प्रिय । आमिषशब्दाग्रे प्रियशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । जाङ्गलं^{१५} प्रिय । पिशितप्रिय । मासप्रिय । पलप्रिय । पेशीप्रिय ।

यातुधानस्तथा रक्षो—

द्वाँ यातुधाने । यातुनि यातना धीयन्ते तुम्हिन् यातुधान । रक्षतीति रक्ष^{१०} । राक्षस । कोणार । कव्याद । नैक्षर्त । नैकसेय । नैकयेयव । विपुसेऽपि (कर्वर । अक्षर ।) । कीनाशो नानार्थ ।

रात्यादिचर इप्यते ॥ ५५ ॥

१ अम० को० २।५।३४। २ ज्ञीर० भा० २।५।३४। ३ का० उ० सू० ४।६। रामाश्रमस्तु वातीति विः । “वातेदिच्च” इत्याह । ४ पतेन वैगेन गच्छतीति विप्रहे तत्साधु व कल्पनीयम् । तादृशसूत्राऽ-तुपलभात् । पतत्युद्भयते इति पतञ्जो । “तृपतिम्यामङ्ग” का० उ० सू० ५।२।२। इत्यङ्गप्रययलु युक्तः । “तृपतिम्यामङ्ग” इत्यङ्गप्रयय । ५ “पृष्ठोदरादय” २।२।१७।२। शा० कारिका । ६ “पिश अवयवे” पिशिति पिश्यते स्म वा पिशितम् । “पिशे किच्च” उ०सू० ३।६।५। इतीतन् । अथवा क्त । इति रामाश्रम । ७. का० उ० सू० ४।५३ । ८ रक्षन्यमादिति रक्ष । “सर्वधातुम्योऽसुन्” । “भीमादयोऽपादाने” इत्यन्यत्र ।

रात्रिशब्दाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने रात्सनामानि भवन्ति । रात्रिचर । निशाचर । क्षणदा-
चरः । रजनीचर । नक्षत्रः । दीपाचरः । इत्यादीनि लातव्यानि ।

प्रारम्भते स्वर्गवर्गः

सुतोऽदितेस्—

५ अदितिशब्दाग्रे सुतशब्दे प्रयुज्यमाने दैत्य (देव) नामानि भवन्ति । अदितिसुतः । अदिति-
तनय । अदितिपोतः । अदितिदारकः । अदितिनन्दनः । अदित्यर्मकः । अदितिस्तनन्धयः ।
अदित्युत्तानशय ।

तदिद्धन्वा सेन्द्रो देवः सुरोऽमरः ।

२० पञ्च देवे । सह इन्द्रेण वर्तते इति सेन्द्र । “दिवु क्री०” ॥ दिव् । दीव्यन्ति क्रीडन्ति स्वर्ण०
प्सरोमि सह विलसन्ति देवाः । अचा सिद्धम् । अथवा दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे
देवः । सुष्टु ग्रजते सुर । तथा सुरन्ति सुरा । “सुर ऐश्वर्ये” सुरा एषामस्तीति वा । “आर्शसादि॒योऽच्” ।
यतोऽविजासुरा तै पीता । न प्रियते अमर । आदित्या । त्रिदशा । सुमनतः । स्वर्गांकिस । देवता ।
मीर्वाणाः । ऋभवः । मरुत । वृन्दारका । निर्जरा । अस्वाना । विबुधाः । त्रिविष्टपसद । लेखा ।
सुवर्णाणाः । अग्रुताशानाः । अनिमिषाः । दैवतम् ।

१५ स्वर्यौः स्वर्गोऽथ नाकथ,

चत्वार स्वर्णे । मुदितो जन स्वरति शब्द करोत्यत्र रात्तमव्ययम् । स्वर् । “दिवु क्रीडादिपु” ।
दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्त इति द्यौः । “दिवेऽर्डिविः” प्रत्ययो भवति । असौ सुष्टु अर्जयते स्वर्ग ।
“स्वृ॑ मृ॒भ्या गः” गप्रत्ययः । नास्यक टुःखमत्र नाकः । उभयम् ।

तद्वासस्त्रिदशो मतः ॥ ५६ ॥

२० तत्य स्वर्गस्य वास , तद॒॑वास -स्वर्गवास । वोवास , स्वर्गवास ; इत्यादीनि देवनामानि भवन्ति ।
तत्पतिः

तत्य देवस्य (स्वर्गस्य च) पति , तत्पति । देवपति , सेन्द्रपति , स्वर्गवासपति , स्वर्गपति ,
नाकपति , नाकेन्द्र , इत्यादिपर्यायनामानि इन्द्रस्य वेयानि ।

शक इन्द्रश्च शुनासीरः शतक्रतुः ।

२५ प्राचीनबहिः सुत्रामा वज्री चाखण्डलो हरिः ॥ ५७ ॥

शत्रुवृलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि ।

वृत्रहा च महस्त्राक्षो गीवार्णेशः पुरन्दरः ॥ ५८ ॥

विडौजाश्चाप्सरोनाथो वासवो हरिवाहनः ।

मरुतश्च मरुत्वृश्च वृषा चैरावणाधिपः ॥ ५९ ॥

३० शतमन्युस्तुरावाट् च पुरुहृतश्च कौशिकः ।

संक्रन्दनोऽथ मधवान् पुलोमार्मस्तसखः ॥ ६० ॥

त्रयस्त्रिशदिन्द्रे । पातु शकनोतीति शक । “स्फायित्विविशकिक्षिप्तिदिशदिचन्द्र-

१ “आर्श आदेर” जै० सू० ४११५०। २. का० उ० सू० ६५३। ३. का० उ० सू० ५६०।

४ तस्मिन् स्वर्णे वसतीति तद्वास । गप्रत्यय । स्वर्गपर्यायार्थात् परत्र वासशब्दे प्रयुज्यमाने त्रिदशनामानि
भवन्तीत्यर्थ । ५. का० उ० सू० २१४।

स्त्रीदिन्यो रक् । इन्दति परमैश्वर्ययुजो भवति इन्द्र । रक् । शुन आदित्य शीरो वायुस्तयोरपत्यमणो
लुक्यभेदाद्वा, दीर्घे शुनाशीरः । तालध्यदयम् । शोभनं नासीर कटकं वा यस्य स सुनासीरः । द्वौ दन्त्यौ ।
शु अव्यय तालव्यमपि । अत्र पक्षे प्रथमस्तालव्यो द्वितीयो दन्त्यो भवति । तथा च शोभना नासीरा
अग्रेसरा अस्य, शुनासीर । शु पूजायाम्, श्वशुरबत् । शुनासीरयोरपत्यमित्येके । शत क्रतबो यशा
यस्य शतकतु । प्राचीना प्राचीनमुखा बहिर्ही दर्भा यस्य स । सुष्टु त्रायते नान्तं सुत्रामा । वज्र विश्वते
यस्य स वज्री । आखण्डयति भिनत्यरीनाखण्डल । हियते शचीकाहैर्हरि ।

५

“शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेऽपि”-

बलशत्रुर्गोत्रशत्रु पाकशत्रुर्नमुचिशत्रु, इत्यादीनि इन्द्रनामानि भवन्ति । त्रुत्र दानव यज्ञ वा
हतवान् त्रुत्रहा । क्रिप् । (“क्रिप्)ब्रह्मभूणवृत्रेतु” विष्प सहस्रमहीण यस्य स सहस्राक्ष । गोवाणाना देवाना
मीश (गीर्वाणेशः) । विद्सु प्रजासु ओजो यस्य । पृष्ठादारदित्वाद् वृद्धि । विड भेदकमोजो
यत्य वा (विडौजा ३) । असरसा नाथोऽस्त्ररोताथ । वस्त्वपत्य वासव । हरिर्वाहन् यस्य हरिशाहन ।
पुण्यक्षये द्वियते च्यवते मरुत् । तान्तम् । मरुतो देवा । सत्यस्य मरुत्वान् । वर्षति, नान्तम्, वृषा । ऐराव-
णानामधिप (ऐरावणाधिप) । शत मन्यव, क्रतवोऽस्य शतमन्यु । “पह मर्यणे” । । पह । “धात्रादे, १०
ष स” । सहते कश्चित्तमपर प्रमुदुक्ते “धातोश्चत् हृतो” इन् । अस्यैप० दीर्घ । साहि जाते । तुरपूर्वक ।
तुर त्वरितं साहश्यत्यभिनवत्यरीनिति तुराषाट् । “सहशङ्कन्दसि” विष्णु । “कारितत्या०” कारितलोप ।
वेलांप १० । “नहि” वृत्तिवृषिव्यधिरुचिमहितनिषु क्षो” विक्वन्तेषु प्राद्यकाशणा दीर्घ । तुरा जातम् । तुरासाह-
निष्पन्न । सि । “दद्भुनान्ताच १०” मिलोप । “हशप०” दद्भुन्तेजादीना ड “हस्य डः । “सहे साडः ष १४”
सत्य पत्वम् । रपत्वात्परपदेऽपि सत्य पत्वम् । स्वमते अपिशब्दबलात् । अथवा तुर वेग सहते तुराषाट् ।
“सह०” शङ्कन्दसि विष्णु पूर्ववत् । पुरु प्रभूत हूत यज्ञे यजेष्वा (ज्ञे आ) ह्वान यत्य पुरुहृत । जातमात्रोऽ-
दित्या कुशैराच्छादित्वात् (कौशिक) । तथा पुराणम् १६ ।

१५

“जातमात्रोऽथ भगवान्दित्या स कुशैर्वृतः ।

तदा प्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥”

२०

कुशैर्दर्भैश्चरति वा । अरिस्ती सहक्रन्दयति सहक्रन्दन । मद्यते पूज्यते नान्तो मघवा ।
“मद्यै०” नंलुगवन्तश्च मद्ये कनि प्रत्ययो भवति नलुगवन्तश्च । पुलोमया (म्नोऽ) रि पुलोमारि ।
मरुता पवनाना सत्या मित्र, (त्र) मरुत्यम्ब । दुश्न्यवन् । त्रुत्रारि । बलशूदन । वृद्धश्रवा । जिरणु ।
वत्रपर । वास्तोष्पति । गोपति । पर्जन्य । इरिहय । पूर्वदिक्पति । रवराट् । गोत्रमिद् । अप्रधन्वा ।
हरिमान् । पाकशामन । दिवस्पति ।

२५

१. शु पूजायाम् अश्वने व्याप्नोति “श्वशुर्” इति व्युपत्या “श्वशुर्” शब्दो निष्पन्न । तदव-
च्छुनासीरशब्देऽपि शु शब्दः पूजार्थ इत्याशय । २. का० सू० ४।३।८३। ३. वैवेष्टि व्याप्नोति विट् ।
“विष्टु व्यासौ” क्रिप् । विड व्यापकमोजो यस्य स विडौजा । पृष्ठोदगदित्वादोकारस्योकार । इयप्य॒-
ह्यम् । ४ त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णमानि यस्य त । हरि स वर्णतोऽुडवस्तु पीतक्षेयसप्रभ । इति
शालिहोत्रोक्तप्रकारोऽुश्वो हरि । ५ मरुतो देवा । शास्त्वत्वेन सन्त्यस्येति यावत् । ६ का० सू० ३।८।२।४।
७ का० सू० ३।२।१।०। ८. का० सू० ४।३।६।०। ९. का० सू० ३।६।४।४। १० “वैरपृक्तस्य” पा० सू०
६।१।६।७। ११ पा०सू० ६।३।१।६। १२ का० सू० २।१।८।०। १३ का० सू० २।३।४।६। १४ पा० सू०
८।३।५।६। १५ का० सू० ४।३।६।०। १६. श्लोकोऽयम् अभिं चिं २।८।७। टीकायामप्येवमेवोपलम्यते ।
१७. का० उ० सू० ५।४।

काष्ठा कुवृ दिगाशा च दक्षकन्या तथा हरित् ।

षड् दिशायाम् । काशन्ते राजन्ते (नदत्रादयोऽत्र) काष्ठा^१ । क स्कुम्भाति विस्तारयति ककुपैः । भान्तम् । दिशत्यवकाश दिक् । “^२ऋत्विदधृक् स्वातिगुणिहश्च” इति साधु । आशुते आशा । दक्ष प्रजापति, तस्य कन्या, दक्षकन्या । हरित्यनया हरित्^३ ।

५ तत्पर्यायिपरं योज्यं प्राञ्छः पालगजाम्बरम् ॥ ६१ ॥

काष्ठादिनामतः परं योज्यं प्राञ्छै विद्वद्विभः पालगजाम्बरम् । काष्ठापालः । ककुपालः । दिक्पालः । आशापालः । दक्षकन्यापालः । इरित्पालः । पालप्रयोगे दिगगजनामानि भवन्ति । काण्ठागजः । ककुगजः । दिगगजः । आशागजः । दक्षकन्यागजः । हरिदगजः । अम्बरशब्दप्रयोगे दिगम्बरनामानि भवन्ति । काष्ठाम्बरः । ककुम्बरः । दिगम्बरः । आशाम्बरः । दक्षकन्याम्बरः । हरिम्बरः ।

१० तथा च—

“गिरिकन्द्रदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।

पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्तु परमा गतिम् ॥”

एवविधा मुनयो नव्याना शरणं नवन्तु जन्मनि जन्मनि ।

पवनः पवमानश्च वायुर्वातोऽनिलो मरुत् ।

१५ समीरणो गन्धवाहः श्वसनश्च सदागतिः ॥ ६२ ॥

नभस्वान् मातरिश्वा च चरण्युर्जवनस्तथा ।

प्रभञ्जनः—

पञ्चदश वायौ । पवते जगत् पवित्रीकरोति पवनः । युच् । “पूढ़ पवने ॥” पू । पवते पवमान । “^४पूढ़यो शान्दृ” आनमात्रः । अन्विंश्च अनिच्छ० नाम्यत्तुगुण । “ओऽश्व् ।” ‘आन्मोऽन्त० आने’ मीऽन्त । वातीति वायु । “^५कवापाजी”—ति उण् । वाति सर्वत्राऽस्त्वलित वा वायु । वाति ग्रस्त्वलित याति, वात । “^६मृगवाहस्यमिदमिल्लूपूयस्त्” । अनेन जगत् अनिति प्राणिति, न निलिति वा अनिल । “निल गहने” । क्षुद्रजन्तवो ग्रियन्ते स्पर्शेनस्य मरुत् । तान्तम् । “^७मृगोहति” उत्प्रत्यय । समन्तादीरयति समीरण । गन्धं वहति गन्धवह । गन्धवाह । गन्धवाही । श्वसन्त्यनेन श्वसन । सदा सर्वकालं गतिर्यस्य स सदागतिः । नम आकाशमस्यास्तीति नभस्वान् । मातरि रेत श्वयति वर्द्धते नान्तो मातरिश्वन् । मातरिश्वेव भवनि “^८मातरिश्वा” । चरणं च याति चरे-

१ “काशृ दीपौ” “हनिकुशि” इत्यादि २१२। पा०३० सूत्रेण कथन । २ क वात स्कुम्भाति विस्तारयति । क्रिप् । पृष्ठोदरादिवास्त्वलोप । केनादित्येन जलेन वा कुसितानि भानि नदत्राणि यस्याप्निति “ककुभा” इत्यावन्तोऽपीति केचित् । ३ का०सू०४१।३७३।४ हरिन्ति नयन्ति अनया हरित् दिग्जानेनैव कवित् कुतश्चित् कुतचिन्यति । “दसहिमियन्य इति” इतीति । ५ का०सू० ४।४१८।६ “अन्विकरण कर्त्तरि” इति पूर्णैः सूत्रम् । का० सू० ३।३।३२। इत्यान्विकरण । ७ “अनि च विकरणे” का० सू० ३।४।३।८ का० सू० १२।११।९ का० सू० ४।४।७। १० का० उ०सू० १।१।११ का०३० सू० ४।२।७। १२ का०३० सू० १।३।० १३ मातरि जनन्या रेतः प्रसिद्धं यथा वर्धते, तथाऽन्तरीक्षे वर्धमानो वायु ‘मातरिश्वा’ इत्याशय । क्षीरस्वामी तु—‘मातरि न्ये श्वयति’ इत्याह । रामाश्रमद्यु—‘मातरि जनन्या श्वयति वर्धते सप्तसप्तकल्पत्वात्’ इत्याह । आपन्नस्त्वाया दितेर्निद्रा उवस्थाया तत्कृष्णिप्रविष्टेनेन्द्रेण कुलिशद्वाग् तद्गर्भस्यैवोनपश्चाशन्छक्लीकरणस्य पुराणप्रसिद्धत्वात्सप्तसप्तकल्पनम् । “दु ओश्विगतिवद्यो” । दिवधातो “श्वन्तुकून्निं” ति कनिनन्तो निपातः समाया अतुरुक् च ।

"रण्युः । 'केवयुमुरण्यव्यव्यर्वाद्य' केवव्याद्यः शब्दा दुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । तथा च द्विसन्धानकाव्ये^२—

"असूययाऽगम्य निशाम्य यां पुरो

विलज्जयाऽम्भःपरिणामिनीदशाम् ।

गता इवाभान्ति कुलाद्विपेशला-

अरण्युलोलाः परिखाऽम्बुद्वीचयः ॥"

"जु" इति सौत्रो धारुगतो । मौत्रा धातवोऽपि न्यादौ पद्यन्ते । जवतीति जवन । ^३जुचट-कम्यदन्त्रम्यसृग्घिजवलगुचपतपदाम्" एयो युर्मति । सर्वा दिशा । प्रभनक्ति प्रभञ्जन । जगद्वाण । पृष्ठदशव । स्पर्शन । समीर । हरि । महाबल । आगुण ।

अस्य पर्यायपुत्रौ भीमाङ्गनात्मजौ ॥६३॥

अस्य पर्यायात् प्रभञ्जनादिशब्दात्परत्र पुत्रशब्दो दीयते तदा भीमहनुमतोर्नामानि भवन्ति । १०
पवनपुत्र । पवनतनय । पवमानतनय । वायुपुत्र । वायुतनय । वानपुत्र । वाततनय । अनिलपुत्र ।
अनिलतनय । समीरणपुत्र । समीरणतनय । गन्धवाहपुत्र । गन्धवाहतनय । श्वसनपुत्र । श्वसनतनय ।
मदागतिपुत्र । मदागतितनय । नमस्त्वपुत्र । नमस्त्वतनय । मातरिश्वपुत्र । मातरिश्वतनय ।
चरण्युपुत्र । चरण्युतनय । जवनपुत्र । जवनतनय । चलपुत्र । चलतनय । प्रभञ्जनपुत्र । प्रभञ्जन-
तनय । भीमन्थं हनुमतश्च नामानि जातव्यानि ।

तत्त्वाऽप्यिः,

तस्य वायो, सत्वा तत्सख । वायुशब्दाग्रे सम्बन्धदे प्रयुक्त्यमाने अभिननामानि भवन्ति ।
पवनसख । वायुसख । अनिलसख । वातसख । मरुसख । गन्धवाहसख । समीरणसख । श्वसनसख ।
सदागतिसख । नमस्त्वसख । मातरिश्वसख । चरण्युसख । जवनसख । चलसख । प्रभञ्जनसख । पवनेष्ट ।
पवमानेष्ट । इत्यादीनि अनेनामानि जातव्यानि ।

शिखी वह्निः पावकश्चाशुशुक्षणिः ।

हिरण्यरेता मस्त्वार्चिर्जातवेदास्तन्नपात् ॥ ६४ ॥

स्वाहापतिर्हुताशश्च ज्वलनो दहनोऽनलः ।

वैश्वानरः कृशानुश्च रोहिताश्वो विमावसुः ॥ ६५ ॥

वृपाकपि समीगर्भो हव्यवाहो हुताशनः ।

एकविशतिरग्नो । "अक अग कुटिलाया गतौ ।" अगति वायुवशादूध गच्छतीत्यग्निं ।
शिखाऽस्त्वय शिखो । उद्यते वह्नि^४ । "अगिशुश्रियुवहिन्यो नि" एयो धातुभ्यो नि प्रत्ययो
भवति । पुनाति पापकः । आशु शोपयति रसान् **"आशुशुक्षणिः"** । "अशौ शुषे सनिक्" । "गुप-

^१ चरण्युशब्दोऽयम्, न तु चरण्युः । द्विसन्धानेऽपि चरण्युशब्दस्यैव दर्शनात् । एतत्साधकमुण्डा-
दिमत्रम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् (३।४८३) उपलब्धते, नैवान्यत्र । वस्तुतस्तु वैदिकोऽपि प्रयोगः ।
"चरण् चरण् गतौ" कण्डवादौ चरण् धारुर्यक् प्रत्ययान्त । ततः "क्याच्छन्दसि" पा०८० ३।२।७० । इत्यु-
प्रत्ययः । सुम्नयु, तुरण्यु, भुरण्य, सपर्यु, अदिशब्दवद्यस्य सिद्धिः । विशेषस्तु "क्याच्छन्दसि" इत्यस्य
तत्त्वबोधिन्या दृष्ट्य । चरण्यतीति चरण्युः । २ स० १ श्लो० १९ । ३. का० स० ४।४।३२ । ४ वहति
हव्य वह्निरिति व्युपत्तिरन्यत्र । ५ का० उ० स० ३।५० । ६ आशोष्टुमिच्छतीति आद्यूर्वकाच्छुषेः
सन्नतात् "आडि शुषे सनश्छन्दसि" पा०उ०८० २।१०६ । अनि । आगु शीघ्रम्, आगु वीहि वा शु
सुषु ज्ञाणीतीति वा । "सर्वधातुभ्य इन्" इत्यन्यत्र । ७ का० उ० य० ५।१५ ।

शोपे ।” अन्तर्भूतकारितार्थोऽयम् । आशुपूर्वः । आशादुपदे शुषे सनिक् प्रत्ययो भवति । हित्यं रेतोऽस्य स हित्यरेता । यत् सृतिः “—“अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्” । सताचिंयो यस्य स सत्ता-चिंतिः । भवन्ति “हित्या, कतका, रक्ता, कृष्णा, प्रसुतभावाऽन्या । अतिरिक्ता बहुरूपेति सप्त सप्ताचिंयो जिह्वाः ।” जाते जाते विद्यते सान्तो जातवेदस् । जाता वेदा अस्माद् वा जातवेदाः ॥

५ तनु न पातयति तनूनूपात् । अपि तान्तो दान्तो वा । ‘स्वाहा’ इत्यस्य (स्याः) पतिः भर्ता स्वाहापति । हुत वषट्कारकृत वस्तु अस्नातीति हुताश । हुतम् आशो भोजन यस्य वा । ज्वलती-त्येवशीलो ज्वलन । दहतीत्येवशीलो दहनः । अनिति प्राणिन्यनेन अनलः । विश्वानरस्यापत्य वैश्वानरः । कृश्यति तनूकरोति कृशानुः । रोहिताऽस्यो मृगोऽस्यो वाहनस्य रोहिताऽस्य । विभा वसुर्धनं यस्य स विभावसु । वृषो धर्म, कपिर्वराह ऐष्टश्च तदूपतात् वृषाकपि । “पुराणम-

१० “कपिर्वराहः ऐष्टश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।

तस्माद् वृषाकपि प्राह् काशयपो मां प्रजापतिः ॥”

हमीनाममालायाम् ॥—

“वृषाकपिर्वासुदेवे शिवेऽग्नौ च ।”

शम्यागमो यस्य स शम्यिगम्भ । हत्य वहतीति हत्यताट । हुतमनातीति हुताशन । बहुल ।

१५ वमु । मिततरगति । अचिंष्मान् । धूम-वजः । बहिज्योतिः । उपर्वध । चित्रमानुः । शुचि । कृषीट-योनि । दमुना । कृष्णावर्णम् । अपापित्तम् । वीतहोत्रः । वृद्धभानु । आश्रयाश । धनञ्जयः । तमोऽन । दम्भा इत्येकं । दमेरुनमि ।

तदादिसूनुः,

अग्नेन्द्रियः । बहिपुत्र । वृपाकपिसूनुः । वृपाकपिषुत्र । इत्यादीनि स्कन्दनामानि भवन्ति ।

२० सेनानीः स्कन्दश्च शिखिवाहनः ॥ ६६ ॥

कार्तिकेयो विशाखश्च कुमारः पण्मुखो गुहः ।

शक्तिमान् क्रौञ्चभेदी च स्वामी शश्वणोङ्गवः ॥ ६७ ॥

द्वादश स्कन्दे । मेना नयतीति सेनानीः । “सत्सूऽदिपद्महुयुजविदभिदल्भिदजिनीराजामुप-सर्गेऽपि” एषामुपमर्गेऽस्यनुपर्गेऽपि नाम्यनाम्नुपदे किं भवति । स्कन्दत्यरीन् स्कन्दः । स्कन्दं
२५ शुष्क रेतोऽस्य वा । शिखी मूर्यो वाहनस्य शिखिवाहनः । कृत्तिकानामपत्य कार्तिकेयः । दानव-बलौ ऋस्तेजासि श्यति विशेषेण तनूकरोति विशाख ॥ विशाखामुतो वा । कुमारो ब्रह्मचारित्वात् ।

१. अम को० ज्ञार० भा० ११५५ । २ सर्वत्रोत्पन्नपदार्थे वर्तमानवाद् वेदोत्पत्तिकारणत्वेन चाग्नेरुनत्वाच्च । जात वेदो धनं (मुवर्णं) यस्मात् जात वेत्ति वेदयते वा इति त्युत्पत्तिर्गपि ।

३. तनु स्वस्वरूप न पातयति दहतीत्यर्थ । विषपि । “नश्राण्णनपात्” इति नलोपाभाव । तनु न पति रक्षति जाते जाते विनष्टत्वादिति वा । पाते शत्रुप्रत्यय । तन्वा ऊन पर्याति रक्षतीति तनूप वृत तदत्तीति । “आदोऽनक्षे” इति विषपि । इत्यप्यूद्यम् । ४ कृशोऽस्यनिति वर्वते कृशानुरिति वा ।

५ श्लाकोऽस्यम्, अभिं चिं २१२९ । टीकायामेवोपलभ्यते । ६ अनेका० स० ४२१८ ।
७ का० स० ४१३७४ । ८ स्कन्द रेतोऽस्येष्यर्थाभिप्रायेण । विग्रहस्तु स्कन्दति शुष्करेता भवतीति स्कन्द

इत्येवंरूप । ब्रह्मचारिणा शुष्करेतस्त्वमागमात्सिद्धम् । पचाश्च । ९. विष्पूर्वत् “शो तनूकरणे” इत्यस्माद् बाहुलकात्वप्रत्यय, विशाखानक्षत्रे जातो वा । विशाखयति विशेषेण व्याघ्नोति दानवबलमिति वा । “शावृ ड्यामौ ।” पचाश्च ।

कुत्सितो मारोऽस्येति कुमारः । पण्डुवानि यस्य स चरणसुखः । गृहति रक्षति देवसैन्यं गुह्यः । “नामयुपध
प्रीकृगृहा कः ।” शक्तिर्वित्तेऽस्य शक्तिमान् । कौञ्जं पर्वत मिनतीति कौञ्जभेदी । स्वप्रस्त्यस्य स्वामी^३ ।
शरणा वनम्, शरवणम्, तस्मिन्नद्व शरवणोऽद्वयः । गौरीपुत्र । शक्तिपाणि । तारकारि । अग्निभूः ।
बाहुस्तेयः । गाङ्गेय । ब्रह्मचारी । महासेनः । महातेजा । पार्वतीनन्दन ।

तत्पिता शङ्करः शम्भुः शिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।

५

त्यम्बको धूर्जटिः शर्वः पिनाकी प्रमथाधिषः॥ ६८ ॥

त्रिपुरारिविशालाक्षो गिरीशो नीललोहितः ।

रुद्रेन्दुमौलिर्यज्ञारिस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ॥ ६९ ॥

उग्रः शूली कपाली च शिपिविष्टो भवो हरः ।

उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वरूपः कपर्द्यपि ॥ ७० ॥

१०

एकोननिशादीश्वरे । तस्य स्कन्दस्य पिता । शं सुख करोतीति शङ्कर । शम्भवती (ल्यस्मादि)
ति शम्भुः । “सुवो डुर्बिशम्बेषु च ।” शेते प्रलयकाले जगदत्र शिवः । जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठनि
स्थाणु । महांवाशौ डैश्वरः महेश्वर । त्रीण्यम्बकानि अहीण्यस्य त्र्यम्बकः । त्रयाणा लोकानाम् आम्बक
पितेत्यागम । शून्यरम्भता जट्यो जटा यस्य, धूर्गङ्गा जटिषु यस्य वा धूर्जटिः । शुणाति दैत्यान् शर्वः ।
“शर्वजिह्वाग्रीवा” एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पिनाकमस्त्यस्य पिनाकी । प्रमथाया श्राधिषः, प्रम-
थाधिषः । त्रिपुरामुख्यारिस्त्रिपुरारि । विशाले विस्तीर्णे अक्षिणी यस्य विशालाक्ष । “सक्यत्तिशी
स्वाहूः ।” गिराणामीशो गिरीश । कालकूटमद्भानीलीं कृष्ण लोहित यस्य स नीललोहितः । “नीलः^{११}
कण्ठं लोहितश्च केशे इति नीललोहितः ।” इति पुराणम् । रोदयत्यरिखी रुद्रः । “स्कायितत्रिवत्रि-^{१२}
शक्तिक्षिप्तिक्षुदिरुदिमदिमन्दिचन्तुन्दीन्द्रियो रक् ।” इन्दुमौलिर्मुकुट यस्य (स) इन्दुमौलिः^{१३} ।
यज्ञाना पशुकारणलक्षणानाम् अरिः, यज्ञारिः । त्रीणि नेत्राण्यस्य त्रिनेत्रः । वृषभो बलीवर्दो ध्वजाया
यस्य स वृषभध्वजः । कोपमूर्जति उग्र^{१४} । शूलमस्त्यस्य शूली । कपाल मनुष्यकरोटिरस्त्यस्य कपालो ।
शिव, पिण्डो इता अस्थिरूपो (विष्टे) मूर्धनि यस्य स शिपिविष्टः^{१५} । भवतीति भव^{१६} । हरत्यप हरः ।
२०

१ “कुमार क्रीडायाम् ।” कुमारयतीति पचाश्च । को पृथिव्या मारयति दृष्टान्तिं वा
विग्रहो बोध्य । २ का० उ० सू० ६६८ । इतीनुप्रत्ययः । ३ स्वशब्ददामिन् प्रत्यय । ‘स्वामिन्दैश्वर्ये’
पा० सू० ५।२।१२६ । अथवा शोभनममति रक्षतीति स्वामी । “सावमेरन् दीर्घश्च” का० उ० सू० ६६८
इतीन् प्रत्ययः । ४ शम्भवति भावयतीत्यर्थो वा । अन्तभावितपृथ्येऽत्र भवतिः । ५ का० सू० ४।४।५४।
६ उक्तविष्टे शे वर्षादुलकाड्डविप्रत्ययः । शिव करोतीति शिवयति, ततः पचाश्च शिवो वा । शिव-
स्यास्त्यस्मिन्वेत्यपि विग्रहो बोध्यः । ७ का० उ० सू० २।२।८ प्रमथाया दुर्गायाः । परन्तु “प्रमथाः स्युः
पारिपदाः” इत्यमरादिषु प्रमथशब्दस्य शिवपर्यायत्वेन त्रिष्टंडः, दुर्गात्वेनाप्रसिद्धे प्रमथानामधिषः
इति सुवचम् । ९ “राजादीनामदन्तता” का० सू० २।६।४। वृत्तिः ५० । १० नील कण्ठे लोहित जटाया-
मङ्ग यस्येति विग्रहार्थ । तदुक्तम्—“नील येन ममाङ्गन्तु रसाक लोहित त्विषा । नीललोहित इत्येष
ततोऽह परेकीर्तिः ॥ इति स्कान्दे” इति मुकुटः । ११ अम०कौ०क्षीर०भा० १।१।३३ । १२ का० उ० सू०
२।१। १३ इन्दुमौलां यस्येति विग्रहः सरलः । १४ उच्यते कुधा समवैति उग्रः । “उच्च समवाये”
उच्च धातु । ततो रक् । गश्चान्तादेशः । ऋत्रेन्द्रादि उ० सू० । १५ शिवपिण्ठशब्दयोराद्योपादानेन
शिपिशब्दोऽ । १६. भव्याय भवति कल्पते इत्यर्थः ।

उमायाः पति उमापतिः । विरुपाण्यक्षीण्यस्य विरुपाक्षः । विश्वेषु रूप यन्य स विश्वरूपः । कपदोऽस्यस्य कपदी । कपदों जटाजटः । क शिरः पिपर्तीति कपर्दः । औषणादिको द । अपिशब्दात्-ईशान । शशिशेखर । पशुपति । शम्भु । गिरिश । श्रीकण्ठः । सर्वजः । त्रिपुरान्तक । भूतशः । परमेश्वरः । अन्वकरिपु । दक्षाध्वरध्वसक । सष्टा । वामदेव । कामधंसी । व्योमकेशः । वहिरेता । भीम । भर्ग ।

५ कृत्तिवासा । वृपाङ्क ।

भागीरथी त्रिपथगा जाह्नवी हिमवत्सुता । मन्दाकिनी—

पञ्च गङ्गाशाम । भगीरथेन राशाऽवताग्नितत्वात्तस्यापत्य वा भागीरथी । त्रिभिः पथिभिर्गच्छति श्रिपथगा ॥ १ । त्रिमार्गा च । जहुना पीता श्रीत्रेण त्यक्ता जाह्नवी । जहोरपत्य वा जाह्नवी । १० हिमवतो हिमाचलत्य सुता हिमवत्सुता । मन्दाका मन्दा गतिरस्त्यस्या मन्दाकिनी । सुरसरित् । विष्णुपदी । सरिद्वरा । त्रिदशदीर्घिका । त्रिक्षोता । भीष्मसू । सुरनिम्नगा ।

द्युपर्यायधुनी

आकाशशब्दतो (तः पत्र) नदीपर्ययेषु गङ्गानामानि भवन्ति । खस्त्रोतस्त्विनी । विहायो-धुनी । विष्टिन्धु । व्योमस्त्रवन्ती । नभोनदी । गगननिम्नगा । अम्बरापगा । व्योनदी । आकाशनदी । १५ अन्तरीक्षद्विरेफा । मेघपथसरित् । वायुपथतरङ्गिणी । इत्यादीनि जातव्यानि ।

गङ्गानदीश्वरः ॥ ७१ ॥

भागीरथादिशब्दत (पत्र) ईश्वरपर्ययेषु हरनामानि भवन्ति । भागीरथीराजः । त्रिपथ-गाधिप । जाह्नवीपति । हिमवत्सुतास्वामी । मन्दाकिनीनाथ । इत्यादीनि जातव्यानि ।

विधिवेधा विधाता च द्रुहिणोऽजश्चतुर्मुखः ।
पद्मपर्याययोनिश्च पितामहविरच्चिनौ ॥७२॥
हिरण्यगर्भः सष्टा च ग्रजापतिसहस्रपात् ।
त्रह्णात्मभूरनन्तात्मा कः

२०

सप्तदश व्रद्धिणि । विधिति३ सज्जति विधिः । विधते वा विधिः । “उपसगे द. किः० ।” विधति३ सज्जति वेधा । ““सर्वधानुभ्योऽसन् ।” “विध विधाने ।” विधधाति धारयति भूतानीति विधाता । २५ द्रुहत्यसुरेभ्यो द्रुहिण । न जायतेऽजः । चत्वारि मुखानि वक्त्राण्यस्य चतुर्मुख । “पद्मपर्याययोनिः”-पद्मपर्यायशब्दाप्ये योनिशब्दे प्रयुज्यमाने धारुनामानि भवन्ति । तामरसयोनिः । कमलयोनिः । नलिनयोनिः । पद्मयोनिः । सरोजयोनिः । सरसीषहयोनिः । खरण्डयोनिः । पुण्डरीकमव । महोत्पलजः । अरविन्दयोनिः । शतपत्रयोनिः । पुष्करयोनिः । इत्यादीनि जातव्यानि । दक्षमन्त्रादीना लोक-पितृणा पिता पितामह । आत्मनो भूतानि विरिदृक्ते पृथक् करोति विरिज्ञन । विरिज्ञ । विरिज्ञिश्च ।

१ त्रयाणा पथा समाहारस्त्रिपथ तेन गच्छतीति वा । इत्य च पूर्वे समाहारद्विगौ कृते तत्र समासान्तविधानेन त्रिपथशब्दस्याकारान्तत्वं सूपणाद्य भवति । गगायास्त्रिपथगामित्वे भारतोक्त वचनम्-“क्षितौ तारयते मत्यांत् नागोऽस्तारयतेऽप्यधः । दिवि तारयते देवोऽस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥” २ मन्द-मकितु गन्तु शीलमस्या इति वा । “अकुटिलाया गतो ।” णिन् । डीप् । ग्रन्थोक्तविप्रहै मन्दाकशब्द-न्य मन्दगत्यर्थे प्रमाणं गृग्यम् । ३ “विध विधाने” । तुदादिः । सर्व धारुन्य इन् किञ्च च । ४ का० स० दा०।७० । ५ का० उ० स० ८५६।

हिरण्य गर्भे यस्य, हिरण्य गर्भो वा यस्य हिरण्यगर्भः । ‘पुराणम्— ।

“हिरण्यगर्भमभवत्त्राण्डमुदके तथा ।
तत्र यज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूलोकविश्रुतः ॥”

सृजतीत्येवशील स्त्रष्टा । प्रजाना पति प्रजापति । “पद गतौ ।” पद । पश्चन्ते गम्यन्ते (गच्छन्ति) प्राणिन्, तान् पत्रमानन् जनन् चरणा एव प्रगुञ्जते । “धातोश्च हेतोऽ” इत् । अस्योप० दीर्घ । पादि जाओ । पाद्यन्तीति पाद । विष्वच । “कारितस्याऽ” कारितलोपः । वेलोप । पाद् । सहस्र पादो यस्य स सहस्रपाद् । ब्रह्मन्ति वर्णने चराचराण्यत्र ब्रह्म । उभयम् । इदं ब्रह्म । अयं ब्रह्मा । अथवा ब्रह्मन्ति ब्रतानि यस्मिन्निति ब्रह्म । वृहे ऐन् प्रत्ययो भवति, अन्ते हकारात् पूर्वम् । आत्मना भवति आत्मभूः । न अन्तो विश्रन्ते यन्य सोऽनन्तः, अनन्तो विनाशरहित आत्मा यस्य सः अनन्तात्मा । कायतीति “क । परमेष्ठी । सुरज्येष्ठः । शतानन्दः । स्वयम्भू । जगत्कर्ता । शतमृति । स्थविरः ।

तत्पुत्रोऽथ नारदः ॥७३॥

तस्य पुत्रस्तपुत्रः । ब्रह्मणः शब्दात् (परत्र) पुत्रशब्दे प्रयुज्यमाने नारदनामानि भवन्ति । विधिपुत्रः । वेशं पुत्र । विवातपुत्रः । विरिच्चिपुत्रः । दुष्मिणपुत्र । अञ्जपुत्रः । चतुर्मुखपुत्र । पदमयोनिपुत्र । वितामहपुत्र । हिरण्यगर्भपुत्र । प्रजापतिपुत्र । सहस्रगतपुत्र । ब्रह्मपुत्र । आत्मभूसुत । अनन्तात्मपुत्र । इयादीनि जातव्यानि ।

१५

कृष्णो दामोदरो विष्णुरुपेन्द्रः पुरुषोत्तमः ।

केशवश्च हृषीकेशं शार्ङ्गीं नारायणो हरिः ॥ ७४ ॥

केशी मधुर्वलिर्वाणो हिरण्यकशिपुर्मुरः ।

तदादिसूदनः शौरिः पदमनाभोऽप्यघोऽक्षजः ॥७५॥

गोविन्दो वासुदेवश्च—

२०

एकविश्वतिर्नागयगो । कर्षन्यरीन् कृष्णवर्णत्वाद्वा कृष्णः । “इण्जिक्षिप्यो नक् ।” दाम उदरे यस्य स दामोदर । यल्लक्ष्यम्^१-वालो हि चापलाददाम्ना बद्धोऽभूत् । वेवेष्टि व्याख्योति विष्णु । “सूचिपिन्या यश्वत् ॥” उपगतमिन्द्रसुपेन्द्र । इन्द्र उपगतोऽनुजन्वाद् वा उपेन्द्र । पुरुषेषु उत्तम पुरुषोत्तमः । केशा सन्त्यम्य केशवः । हृषीकेणामिन्द्रियाणामीशो वशित्वाद् हृषीकेश । शार्ङ्गी घनु-रत्यस्य शार्ङ्गी । नारा आपो अथन यस्य नारायणः^२ । यस्तमृति ।^३—

२५

“आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृत ॥”

१ “पुराणम्” इत्यार्थं “लोक विश्रुतः” इत्यन्तम् अभिधानचिन्तामणिदीकाशाम् २।१२७। उपलभ्यते । २. का० सू० ३।२।१०। ३. का० सू० ३।६।४४। ४ “सर्वधातुम्यो मन्” का० उ० सू० ४।२।८। ५ “कै शब्दे” वेदध्वनिकर्त्तव्येन ब्रह्मणि कायतीति क इति विग्रहः । “कच दीतौ” कचते वा । “अन्येन्योऽपि हश्यते” पा० सू० ३।२।१०। सूत्रवार्तिकेन ड । ६. का० उ० सू० २।५।१।७ बालकृष्णो दि यशोदया तत्त्वापत्त्वनिवारणाय कटिप्रदेशे बद्ध इति पौराणिकी कथा “लक्ष्यम्” इति पदेन स्मार्यते । ८ का० उ० सू० २।४। ९. नाराणा समूहो नारम्, तदयन यस्य, नराद् विराद् पुरुषाज्ञात तत्व नारम्; तदयते जानाति वा, आयथति प्रवर्तयति वा, “नारायण” इत्यपि अुत्पत्तिरत्र । १० मनुस्मृति १।१०। तृतीयचरणे “ता पदस्यायनम्पूर्वम्” इति पाठो लभ्यते ।

नरस्यापत्यं वा । नरानयते इति वाक्येन नरायणोऽपि । हरत्यव्र हरि । वेशाः सन्त्यस्य केशी ।
 'मन्यते जनै मधु ।'" मनिजनिनमा मघजतनाकाश्च" एषामुक्त्ययो भवति मघजतनाकाश्च यथासख्य-
 मादेशा भवन्ति । "बल बल्ल च ।" बलतीर्ति बलि । 'इ॑ सर्वधातु॒न् य ।'" बण्यते बाण । तदादि-
 सूदनः । तदादीना केश्यादीना सूदनो नाशकर्ताऽरि । केशी मधु, बलिः, बाणः हरिण्यकशिपुः, मुरु-
 ५ एव्यः शब्देन्यः परत्रारिशब्दे प्रयुज्यमाने नारायणनामानि भवन्ति । केशिवैरी । केश्यरातिः । केश्यमित्रः ।
 केशिद्विट् । केशिसप्तन् । मधुवैरी । मध्वराति । मध्वमित्र । मध्वरिः । मधुद्विट् । मधुमग्नत् । मधुरिपु ।
 बलिवैरी । बल्यराति । बल्यमित्र । बलिद्विट् । बलिसप्तन् । बलिरिपु । बाणवैरी । बाणाराति । बाणा-
 मित्र । बाणारि । बाणद्विट् । बाणसप्तनः । बाणरिपु । हिरण्यकशिपुद्विट् । हिरण्यकशिपुसप्तन् ।
 हिरण्यकशिपुरिपुः । मुरवैरी । मुरागिः । मुराराति । मुरद्विट् । मुरसप्तनः । मुररिपुः । मधुशत्रुः । बाण
 १० शत्रु । मधुशूदन । बलिशूदनः । बलिश्वन्थनः । बाणशूदन । हिरण्यकशिपुशूदनः । केशशूदन । इत्यादि
 पर्यायनामानि । शूरस्तस्यादिपुरुषस्तस्यापत्यम्, शौरि । सोरिवै । पद्म नामावस्य पद्मानाम् ।
 "४सज्ञाया नामिः ।" अधोन्नाणा जितेन्द्रियाणा जायते प्रत्यक्षीभवति, अधोक्षज । गा मुव विन्दिति
 गोविन्दः । बसुदेवस्यापत्य वासुदेवः । ५मञ्जुकेश । श्रीवत्साङ्कु । श्रीपति । पीतवासा । विष्वक्रसेन । विश्व-
 रूप । मुकुदः । धरणिधर । सुपर्णकेनु । वैकुण्ठ । जलशयन । रथाङ्गपाणि । दाशार्थः । कनुपूर्प ।
 १५ वृषाकपि । अन्युतः । इन्द्रावरज । ७ब्रह्म । विष्वश्रवा । वनमाली । सनातन । जिन । शम्भु ।
 इत्याद्यूहम् ।

लक्ष्मीः श्रीगांगिमिनीनिंद्रा ।

चन्वार श्रियाम् । लक्ष्मयति दर्शयति पुण्यकर्मणि जनमिति लक्ष्मी ।
 "लक्ष्मोऽन्तश्च" अस्मादीक्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च । "मञ्जु श्रित्र॑ (सेवायाम) ।" पुण्यकृत श्रयतीति
 २० श्री । " वचिपच्छिन्निद्विषुज्ञा विद्वदीर्घ्यत्वं" एव्यः क्षिप्त्ययो भवति दीर्घ्यं न्वरस्य चैपम् । गा मिनो-
 तीति गोमिनी । २५ इन्द्रात परमैश्वर्यविषुका भवति इन्द्रिद्विषुका । कमला । पद्मा । पद्मवासा । हरिप्रिया ।
 क्षीरोदत्तनया । माया । मा । ता । ई । आ । रमा । सीता । बला (चला) । मर्मी । अविज्ञाऽपि ।

तत्पति॑ शैलभूम्यादिवरस्त्रक्षक्षरस्तथा ॥ ७६ ॥

तथाः पतिस्तत्पति॑ । लक्ष्मीपति॑ । श्रीपति॑ । गोमिनीपति॑ । इन्द्रिपति॑ । इत्यादीनि हरि-
 २५ नामानि स्युः । शैलभूम्यादिधरः । पर्वतवर । शैलधर । दरीभूम्यधरः । अचत्तवर । गृहिधरः । सानुम-
 दधर । गिरिधर । नगधरः । शिलोच्चयवर । भूमिधर । भूधर । पूर्वाधर । गह्यरीधर । मेदिनोधर ।

१ मन्यते जनै 'खलत्वेन इति शेष । २ का० उ० सू० ११८ । ३ का० उ० सू० ३१४ ।
 ४ का० सू० २१६।११। वृत्तिः । ८ । ५ अथ कृतमक्षजमैन्द्रियक ज्ञान येन, अधो न क्षीयते जातु इति
 वा विग्रहोऽविकोऽन्यत्र । ६. "मञ्जुकेश" शब्दस्य "विष्णु" पर्यायत्वे कल्पद्रुरपि प्रमाणम्—'मञ्जुकेश'
 कोस्तुनोरा, सीमगमो धराधर ।" ३।२।७ । ७ वैश्वशब्दस्य नारायणार्थेऽमरोऽपि प्रमाणम् । "विषुले
 नकुले विष्णौ वैश्व । स्यात्पिष्ठुले त्रिषु ।" ३।३।१७० । ८ का० उ० सू० ३।३५ । ९ का० उ० सू०
 २।२३ । १० "गोमिनी" शब्दस्य लक्ष्मयें प्रमाण मृग्यम् । अत्रत्वविग्रहोऽपि चिन्त्य । मत्वयें गोशब्दा-
 मिनिप्रत्यये लीपि गोपालिकायें तस्य प्रतिद्वौ कोपान्तरसवादः । ११. ता, ई, आ, एषा लक्ष्मयें प्रमाणम्—
 "लक्ष्मी पद्मा रमा या मा ता धी कमलेन्द्रिदा" अभिं चिं २।१८० । "या" इत्पत्र ई आ इति॑
 छेद । "लक्ष्मयान्तु मर्मीरो विष्णुशक्ति क्षीराविमानुवी ।" इति॑ तट्टीकायाम् ।

महीधरः । धराधर । वसुन्धराधरः । धात्रीधरः । क्षमाधरः । वसुमतीधर । विद्वमराधरः । अवनीधरः ।
धरणीधरः । क्षमाधर । धरित्रीधरः । क्षितिधरः । कुधरः (त्रः) । कुम्भिनीधरः । इलाधरः । उर्वरीधर ।
उर्वीधरः । गोधरः । जगतीधरः । इत्यादीनि हरेनामानि शातव्यानि । तथा चक्रधरोऽपि ।

तत्पुत्रो मन्मथः कामः सूर्पकाराति (कारि) रनन्यजः ।

कायपर्यायरहितो मदनो मकरध्वजः ॥ ७७ ॥

५

पट् कामे । तत्पुत्र । कृष्णपुत्रः । दामोदरपुत्र । विष्णुपुत्र । उपेन्द्रतनयः । पुरुषोत्तमसूतुः ।
केशवपुत्र । हृषीकेशपुत्र । हृषीकेशतनय । शार्ङ्गिनन्दनः । नारायणोद्धृत । इरिसनु । गोविन्दत्रू ।
इमानि मदनन्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । मन्नाति चित्तं मन्मथः । कामयते जन (अनेन) कामः ।
२ सूर्पकाराति । मनसोऽन्यमाच जायते अनन्यज । कायपर्यायरहित । विद्वह । श्रकाय । अनङ्ग ।
अनपघन । अवनु । असहननः । अक्लेवरः । अमूर्तिः । इत्यादि (दीन्यपि तम्य) पर्यायनामानि । जन १०
मदयतीति मदन । मरुरो वजे यत्य स मकरध्वज । प्रश्नमन । मनसिज । सङ्कल्पजन्मा । अङ्गज ।
पञ्चेषुः । श्रीनन्दन । हृन्छय । मधुसख ।

शिलीमुखः शरो बाणो मार्गणो रोपणः कणः ।

इपुः काण्डं क्षुरप्र च नाराचं तोमरं खगः ॥ ७८ ॥

द्वादश ब्राह्म । शिलीव रुद्माग्र मुख यस्य १ शिलीमुखः । “शृ हिमायाम्” । श्रणन्यनेनेति १५
शर । २ “पुसि सजाया घ” धप्रयय । वणति “बाण । ६ “व्यञ्जनाच्च” घन् । मार्गयति अन्वेषयति
मार्गणः । गेष्यन्ते देहे निखन्यन्ते रोपण । कणति ७ कण । ७ इप गतौ । ८ इप्यते गम्यते शत्रुसमुखमिति
९ इपु । जनुमिष्यति हिनस्तीति वा इपु । १० इपिधृष्टिमिदिग्यविष्मृदिपृष्य कु । कामयते रिपुवधाय
११ कागडम् । उभयम् । खनति भिनति १२ क्षुरप्रम् । नार नरसमूहम् अश्रुतीति १३ नाराचम् । स्तोम्यते
श्लायते तोमरम् । यमाकाश गच्छतीति खगः । कङ्कपत्र । चित्रपुद्भव । विशिख । कलम्ब । २०
कदम्बोऽपि । सायक । प्रदह । पृष्ठक । रोप । गादर्घपक्षः । १४ खनः । भल्लिः । भल्ल ।

१ विग्रहे चित्तस्थाने मन शब्दपाठो योज्य । मनसैष्लोपार्थं पृष्ठोदरादिगणपाठायासो
२ पि तस्य कार्य । क्षीरस्वामिगमाश्रमौ तु मनन मत् चेतना । मध्नातीति मथ । पचायच् । मतस्तेति-
नाया मथ “मन्मथ” इत्याहतु । २ छन्दोभङ्गमयच्छ्रूपकारित्यति पाठो बोध्य । शूर्पको नाम कश्चिद्
दानवस्तम्य नाशकारित्वाकाम शूर्पकार । तदुक्तम्- अभिम० चिं० २।१४२ । ‘पुष्पाण्यस्येनुचापास्त्रा-
ण्यरी शम्वरमूर्पकौ’ । ३ शिली नाम गण्डपद । ‘केवुवा’ इति लोके ख्यात । ४ का० स० ४।५।९६ ।
५ बणति शब्दायते पुद्भ्रूपस्मिति पूर्णो विग्रह । ६ का० स० ४।५।९९ । ७ कणति शब्दायते
कण । पचायच् । ८ इपति गच्छतीति शत्रुसमुखमिति वा । ९ का० उ० स० १।१० । १० कनति
दायिते काण्ड इति रामाश्रम । ‘कनी दीतो’ । ‘क्वादिन्य कित्’ उ० १।१२ । इति डः । अनुनासिकर्येत्यु-
पधादीर्षश । अमरकोत्पूर्कविग्रहे “कमु कान्तो” कमधातोः स एव प्रत्ययः । कणत्यनेनाहतः काण्ड इति
हैमचन्द्र । “कण शब्दं” इत्यतो डः । ११ क्षुर तैद्येन प्राति गच्छतीति क्षुरप्रम् इत्यपि । क्षुराम लोह
प्राति गच्छतीति वा । १२ नारमाचामतीति रामाश्रम । नरमत्तीति नराची, नराच्यास्तुल्यो नाराच इति
हैमचन्द्रः । १३ “तु गतौ” सौत्रः । तौतीति तौं । विच् । वियतेनेनेति मरः । पुसि सज्जाया घ । तौश्रासौ
मरश्चेति तोमर इत्यन्यत्र । १४ खस्त्राणः । तदुक्त कल्पदुकोशे १।५।२६९ । ‘विकर्णं पत्रवाहश्च
चित्रपुद्भवः शर खरुः’ इति ।

कामुकं धन्वं चापं च धर्मं कोदण्डकं धनुः ।
शिलीमुखादेरसनम्-

षट् धनुषि । कर्मणे शत्रुवधलक्षणाय प्रभवतीति 'कामुकम् । दधन्ति मारयत्यनेन ३धन्वन् । अदन्तम् धन्वम् । चपस्य वेषोर्बिकारश्चावम् । उभयम् । धरति ३धर्मन् । धर्मं च । "कुट अनुतमापरो" । ५ कोदयत्यनेन ४कोदण्डम् । शत्रुवधार्थं धन्यते अर्थते धार्यते वा धनुः । उभयम् । उणादौ दधन्तीति धनुः (नः) । "५कृपिचमितनिधनिवधिसर्जित्वर्जित्य ऊ" । शिलीमुखादेरसनम् । शिलीमुखासन । शरासनः । मर्गणासन । रोपणासन । कणासनः । इप्वासन । काण्डासन । क्षुरप्रासन । नाराचासनः । तोप्रासन ।

तन्कोटिमठनीं विदुः ॥ ७६ ॥

१० तस्य धनुपः कोटिमप्रभागम् । कामुककाटि । धन्वकोटिः । चापकोटिः । काण्डकोटि । धनुष्कोटिः । शिलीमुखासनकोटिः । शरासन कोटिः । बाणासनकोटिः । रोपणासनकोटिः । मार्गणासनकोटिः । इत्यादिकमठनीति कथ्यते । अर्थति गच्छति भूमिमठनिः । द्याम् । अटनी । हो स्त्रियाम् ।

पुष्पं सुमनसः फुल्लं लतान्तं प्रमयोद्गमौ ।
प्रसूनं कुसुमं व्रेयम्-

१५ पद् (आट) पुष्पे । पुष्पति विकृति पुष्पम् । सुरु मन्यन्ते आगिः गुमनसः । छोत्वद्वृत्वे । "त्रिकला विशरणो" १ फल । फलति भ्यं कुड़ । कुल्ल वा । "२ग.शशुकर्मक- त. । ३'आदनुगन्धवद्" दति नेट् । "४अनुपसर्गात्कुड़क्षीकृशोल्लाशा" निष्ठाताराग्य लन्वन् । "५'चरकलोहस्म्य" तमागदावगुणे उत्त्वम् । सि । रेफ । लताया अन्त पतित लतान्तम् । प्रम् (य) ते प्रसवम् । उदगच्छति प्रादुर्भवति उद्गमः । श्रिय प्रसूते प्रसूनम् । तन मनक च । एता उभयम् । को शोभा मते १ कुसुमम् । २० सुम च । ज्ञेय ज्ञातव्यम् ।

तदाद्यस्त्रशरः स्मरः ॥ ८० ॥

पुष्पपर्यायतो (त. परत्रा) स्वपर्यायेनु तथा ब्रागपर्यायेवपि स्मरनामानि भवन्ति । पुष्पेषु । पुष्पशिलीमुख । पुष्पशर । पुष्पमार्गण । पुष्परोपणः । पुष्पकाण्ड । पुष्पकण । पुष्पक्षुरप्रः । पुष्पनाराच । पुष्पतोमर । सुमनःवृत्रप्र । सुमशिलीमुख । सुमनोनाराच । लतान्तेषु ।

१ 'कर्मण उक्त्र' पा० सू० ५।१।१०३ । इति प्रभवत्यर्थे उक्त्र् । टिलोप । २ 'धन धान्ये' जुहोन्यादिः । वनप्रत्ययः । धातुनामनेकार्यत्वान्मारयतीयर्थः । धात्वार्थनुरागे तु दधति वान्यमर्जयत्यनेन त्यथो शोधयः । वीराणा वनधान्यार्जनमाधनवाऽधनुपः । धन्वति गच्छति धन्वेति क्षीरवामिरामाश्रम-हमचन्द्राः । कनिन्प्रत्ययः । ३ धरती रक्षत्यापन्नसत्त्वानिर्यर्थ । मनिन्प्रत्ययः । अकागल्तधर्मशब्दस्य धनुर्वाचित्वे मेदिनो प्रमाणम् - 'धर्मोऽस्त्री पुष्प आचारे स्वभावोपमयोः क्रतो । अहिमोपनिपन्न्याये ना धनुर्यममोमपे ॥' मान्तव० १६ श्लो० ॥ ४ बाहुलकादण्डप्रत्ययः । रामाश्रमस्तु 'कुट अनुतमापरो' कोटीति विग्रहमाह । म एव प्रत्ययः । पृष्ठोदरादित्वादृत्य द । कदि सेत्रः । कद्यतेऽनेति हेमचन्द्र । 'कु शब्दे' कौतीति कौ । कौ, शब्दायमानो दण्डोऽस्येत्यायन्यत्र । ५ का० उ० सू० १।३। ६ सुपीत मन आभिरिति मुकुट । ७. का०सू० ४।६।४।८।८ का०सू० ४।५।९।१ ९. का०सू० ४।६।१।५। १० का० सू० ४।१।७।६। ११ कुस्ति कुसुमम् । 'कुस सश्लेषणे' दिवादि । 'कुसेहमोमेदेता' पा०उ० सू० ४।१।०।६। इत्युप्रत्यय । इति रामाश्रम ।

लतान्तकाण्ड । लतान्तक्षुरप्र । लतान्तनाराचः । लतान्तोमरः । प्रसवमार्गण । प्रसवोपण । प्रसवकण । प्रसवेषु । प्रसवकाण्ड । प्रसवक्षुरप्र । प्रसवनाराच । प्रसवतोमर । उद्गमशिलीमुखः । उद्गमशर । उद्गमबाण । उद्गममार्गणः । उद्गमपौपणः । उद्गमकणः । उद्गमेषु । उद्गमक्षुरप्र । उद्गमनाराच । उद्गमतोमरः । प्रसूनशिलीमुख । प्रसूनशर । प्रसूनबाण । प्रसूनरोपण । प्रसूनकण । प्रसूनकाण्ड । प्रसूनेषु । प्रसूनक्षुरप्र । प्रसूननाराच । प्रसूनतोमर । कुसुमशिलीमुख । कुसुमशर । कुसुमबाण । कुसुममार्गण । कुसुमकण । कुसुमेषु । कुसुमकाण्ड । कुसुमक्षुरप्र । कुसुमनाराच । कुसुमतोमर । पुष्पशब्दाग्रे धनुषि शब्दे प्रयुज्यमाने कन्दर्पनामानि भवन्ति । पुष्पकामुकः । पुष्पधन्वा । पुष्पचाप । पुष्पधर्मा । पुष्पकोदण्डः । पुष्पधनु (न्वा) । लतान्तकामुकः । लतान्तधनु (न्वा) । लतान्तचाप । लतान्तधर्म (मा) । लतान्तकोदण्ड । लतान्तधन्वा । प्रसवचाप । प्रसवकोदण्ड । प्रसवधनु (न्वा) । प्रसूनकामुकः । कुसुमधर्म (मा) । कुसुमकोदण्ड । कुसुमधनु (न्वा) । १० दत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

स्वान्तमास्वनितं चित्तं चेतोऽन्तःकरणं मनः ।

हृदयं विशिखाऽकृतम्—

नव चित्ते । ‘स्यम स्वन ध्वज शब्दे’^१ आद्यूर्वः । स्वनति स्म, आस्वनति स्म इति स्वान्तम्, आस्वान्तम् । ‘गत्यर्था०’^२ निष्ठा क्त । ‘वा ३हृष्मत्वरसधुषाऽस्वनाम’ एव त्वे विभाषयेद् १५ भवति । वेद् । ‘पञ्चमो०’^३ । ‘मनोरनुव्वारो० तुटि०’ । मनोऽये० ‘क्षुभिवाही०’ त्यादिना त्वे नेट् । कथितत्वकथयेनेऽपि परत्वात्पूर्वोक्तप्रयोक्तयो परोक्तविर्बिलवान् इति वचनात् । अनेन सूत्रेणायमेव विकल्पो भवति । मनोऽभिधानेऽपि परत्वादयमेव ४विघिर्मवति । चेतति चित्तम्^४ । चेतति जानाति अनेनात्मा चेतस् सान्तम् । अन्त, निश्रय, क्रियतेऽनेन, अन्त करणम्^५ । मन्यते वृथतेऽनेन सान्तम् मनस् । ब्रह्मधार्ये हति हृदयम् । “हनो०” दोऽनुत्तश्च । दान्त च हृद । विगत (ता नष्ट (ष्टा) शिख (खा) यस्य तत् विशिखम्^६ । आ समन्तात् कूर्यते आकूर्यते (आकृतम्) । तथा चाष्टसाहस्र्याम^७—“ज्ञाताकृतेनाकारेणोति मानसम्” ।

मारस्तत्रोद्भवो मतः ॥ ८१ ॥

तत्र चित्ते उद्भवो मारो मत कथित । स्वान्तमभवः । स्वान्तज । आस्वनितज । चित्तमभव । चित्तज । चेतसमभव । चेतोजः । अन्त करणमभव । हृदयसमभवः । हृदयजः । विशिखसमभव । २५ विशिखज । आकूनसमभव । इत्यादीनि कन्दर्पनामानि ज्ञातव्यानि ।

मौर्वी जीवा गुणो गव्या ज्या—

पद्मगुणे । मूर्वति हिनस्यनया मूर्वा । तदाख्यस्य तृणस्य विकारो मौर्वी । धनुरनया जीवतीति

^१ का० स० ४।६।४३। ^२ का० स० ४।६।१७। ^३ का० स० ४।६।१५। ‘पञ्चमोपधाया तुटि चागुणे’ इति पूर्णे सूत्रम् । ^४ का० स० २।६।४४। ^५ का० स० ४।६।१३। ^६ आस्वनितमित्यत्र मनोऽवैद्यपि परत्वात् “वा स्प्यमत्वरे” ति वेद् । आद्यूर्वकत्वाभावे तु स्वान्तमित्यत्र “क्षुभिवाही०” त्यादिनेट्-प्रतिषेध । तेन स्वान्तमित्येकमेव रूपम् । आद्यूर्वकस्ये तु आस्वनितमास्वान्तमित्यमित्याशय । ^७ ‘ज्यनुव्वस्यमतिवृद्धिपूजार्थेभ्यः क्त’ इति का० १।६।६६। सूत्रेण ज्ञानार्थत्वादवर्तमाने क्त । ^८ अन्त शब्दस्यात्राबिकरणशक्तिप्रधानरेफान्ताव्ययत्वेनान्तो निश्रय इति व्युत्पत्तिर्न युक्ता । अन्तर्गत करणम्, करणानामन्तर्गत वेति व्युत्पत्तिर्नव्या । ^९ का० उ० स० २।२६। ^{१०} विशिखशब्दस्य हृदयार्थे न किम-प्यन्त्र प्रमाणमुपलब्धम् । अथोमुखपुण्डरीकाकारत्वादृधृदयस्य शिखारहितत्वं कथञ्चिन्नेयम् ।

जीवा । गुणते अन्यस्यतेऽनेन गुण । पुसि । गोन्यो हिता गव्या ॥ जीयतेऽनया ज्याऽ ॥ बाणासनम् । दृणा ।

अलिर्भूङ्गः शिलीमुखः ।

ब्रमरः पट्पदो ज्ञेयो द्विरेफश्च मधुव्रतः ॥ ८२ ॥

सम भृगे । अलति मण्डयति पुष्पजाती । अलिः । मधुना विभर्यात्मान भृगः । ४३-
५ भृगाङ्गनि एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शिलीसदश शिलीसदश वा सुखमस्य शिलीमुख । भ्रमर्-
रातीति निश्चत्या भ्रमर । ‘शकन्धवादय’ ॥ शकन्धुप्रभृतीनाम अकारस्य लोपो भवति । आदिशब्दान्-
नकारस्य लोपः । उणादौ ‘भ्रुमु चलने’ । भ्रमतीति भ्रमरः । ‘देविवृष्टिजठिभ्रमिवासिन्योऽुर’ ।
पट्पदानि वरणा अस्य पट्पद । हौ रेकौ यस्य द्विरेफः ॥ मधु व्रतयति सुहृके मधुव्रत । मधुकर ।
पुष्पलिहृ । इन्दिनिर । पट्चरणः । पट्चिप्र । चञ्चरीक । भसल । रोलम्ब । देश्याम् ।

१० **मौर्वादिप्रान्तमल्यादिकन्दर्पस्यैक्षवं धनुः ।**

इक्षाविकारं गंक्षवम् । अलिमौर्वा (कम) । भृगमौर्वा (कम) । शिलीमुखमौर्वा (कम) ।
भ्रमरमौर्वा (कम) । पट्पदमौर्वा (कम) । द्विरेफमौर्वा (कम) । मधुव्रतमौर्वा (कम) । अलिजीवा (वम) ।
भृगजीवा (वम) । शिलीमुखजीवा (वम) । भ्रमरजीवा (वम) । बट्पदजीवा (वम) । द्विरेफजीवा (वम) ।
मधुव्रतजीवा (वम) । अलिगुण (णम) । भृगगुण (णम) । शिलीमुखगुण (णम) । भ्रमगुण (णम) ।
१५ पट्पदगुण (णम) । द्विरेफगुण (णम) । मधुव्रतगुण (णम) । अलिज्या (ज्यम) । भृगज्या (ज्यम) ।
द्विरेफज्या (ज्यम) । मधुव्रतज्या (ज्यम) । इत्यादीनि कन्दर्पशिलीमुख (धनु) नामानि जेवानि ।

हेतिरखाऽयुधं शस्त्रम्—

तत्वार शस्त्रे । द्विनेति अनया हेतिः । छियाम् । ११ सातिरेनिज्जितिथृथ । एते
क्षिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अस्यते त्रियतेऽनेनति अख्यम् । आयुतेऽनेन आयुधम् । उमयम् ।
२० शस्त्रेऽनेन शस्त्रम् । १२ नीदापशसुगुयुजस्तुतुरसिसिन्मिहपतशनहा करणे श्वर् । त्रमात्र । ‘द्युद्वनम्’
इति सपरगमनम् । ननु अन्येऽप्रतिपदाभावात् पृनि प्रत्यये इडागम कथं भवति । आगमशास्त्रमनियमित
वचनात् शस्त्रातोः पृनि प्रत्यये उद्द न भवति । ‘युग्म’ १३ पत्रे उति जापकादेव (द्रा) ।

पुष्पाद्यस्त्रः स्मरो मतः ॥ ८३ ॥

पुष्पाद्यायत अख्यपर्यायं पु शरपर्यायेतु तथा चापर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति । पुष्प-

१ गोन्यो बाणेन्यो हितेत्यर्थ । २ जिनाति जीयतेऽनया । ‘ज्या वयोहानौ’ । ‘अन्येष्वपि
दृश्यते’ उति ड । ३ अल भूषणादौ । सर्वधातु+य श्वर् । ४ का० उ० ११४८ । ५ का० स० वृ. ।
६ कातन्त्रोणादौ नोपलव्वम् । ७. भ्रमरपदे रेकदयसत्वाद् द्विरेक । ८ कन्दर्पस्य धनुरैक्षवम् । इक्षुदण्ड-
निर्मितम् । अत एव काम इक्षुघ्नेत्यन्यते । मौर्वादिप्रान्तमल्यादिरिति पाठो युक्त । तत्र पदार्थयोजनाऽपि सातु मगच्छ्रुते ।
अत्यादि कन्दर्पस्य मौर्वादि धनुश्च ऐक्षवम् उन्नयते । तदन्तम्—‘मौर्वा रोलम्बमाला वनुरय विशिद्वा
कौसुमा पुष्पकेतो’ इति साहित्यदर्शणे । टीकैवा तु यथाश्रुतपाठानुगामिनी । ९ ‘हि गतो वृद्धौ च ।
इय व्युत्पत्तिरग्निशिलायथं बोध्या । शस्त्राये ‘हन् हिसायाम्’ हन्यतेऽनयेति सुवच्चम् । १० का० स० ४४४७३ । ११. का० स० ४४८६१ व्यञ्जनमस्वर परवर्णे नयेत् । १२ का० स० १११२१ । इति सकारस्य
परगमनम् । १३ का० स० ८० ८०३३३ ।

हेति । पुष्पाङ्ग । पुष्पायुध । पुष्पशङ्क । सुप्नोहेति । सुप्नोऽङ्ग । सुपनश्च । सुपनश्च ।
लतान्तरेति । लतान्ताङ्ग । लतान्तायुध । लतान्तशङ्क । प्रसवाङ्ग । प्रसवायुध । प्रसवशङ्क । उद्ग-
महेति । उद्गमायुध । उद्गमशङ्क । प्रसनहेति । प्रसनास्त्रः । प्रसनायुध । प्रसवशङ्क । कुसुमहेति ।
कुसुमाङ्ग । कुसुमायुध । कुसुमशङ्क । इत्यादिकानि नामानि ज्ञातव्यानि ।

ध्वजं पताका केहुरच चिह्नं तद्वैजयन्त्यपि ॥ ५

पत्र पताकायाम । ध्वजते (ति) भूयते ध्वजः । तथाऽमरसिहे—“ध्वजमस्त्रियाम्”
वर्जिश्च । पताकादांडे ध्वज दृत्यन्यः । पत्यते द्विष्टत वातेन पताका । वलाकादय ॥—“बलाकपिनाक-
पताकाश्यामाकश्लाका” एते अकप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पताका च । छियाम । कीयते मैन्यमनेन केतुः ।
“केत्यादय—“केन्तुत्रत्वास्तुपीत्वेष्ठतुवहतुजीवात्” एते तुनप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । चह परिक्लकने ।
चहयति (अनेन) चिह्नम् । विजयतेऽनया वैजयन्ती” । जयन्ती च । छीघ्रो । वैजयन्तः । जयन्त । १०

तत्तदन्तो झपायादिः शम्भोर्विघ्नकरः समरः ॥ ८४ ॥

भपन्ध्वज । भपपताक । भपकेतु । भपचिह्न । भपवैजयन्ति । पड़क्षीणध्वजः । पड़क्षीण-
पताक । पड़क्षीणकेतु । पड़क्षीणचिह्न । पड़क्षीणवजयन्ति । सफरव्वज । सफरपताक । सफरकेतु ।
सत्ररचिह्न । सफरवेजयन्ति । अनिमिप वज । अनिमिपपताक । अनिमिपकेतु । अनिमिपचिह्न ।
त्रनिमिपवैजयन्ति । त्रनिमिप वज । त्रनिमिपताक । त्रनिमिपकेतु । त्रनिमिपचिह्न । मीन-वज । मीन- ११
पताकः (मीनकेतु) । मीनचिह्नः । मीनवैजयन्ति । पाठीनव्वज । पाठीनपताक । पाठीनरेतु । पाठीनचिह्न ।
पाठीनवैजयन्ति । शम्भोर्विघ्नकर । हरविनकर । इत्यादिन श्मरनामानि ज्ञातव्यानि ।

कौक्षेयकासिनिस्त्रिशकृपाणाः करवालक ।

तग्वारिमण्डलाग्रं सहङ्गनामावलि विदुः ॥ ८५ ॥

अष्टं व्यंग । कुक्षो भव कौक्षेयकः । कौक्षेय । अन्यते द्वियतेऽस्मि । निकान्तस्त्रिशतोऽ २०
द्वृलिंयो निर्विशः । तालव्यात । शबून् हनु कल्पते याचते कृपाणः । ‘कृपे काणः’ । करे वलते
करवालः । करपाल । तरति (तग) ल्लवमान वारि यत्रेति निश्चत्य तर्खारिः । मण्डल वर्तलमग्र
यस्य तन्मरणडलाग्रम । खण्डित परमर्मायनेन खङ्ग । ‘खण्डिगक्’ । स्त्रीज्रा । कृष्टि । चन्द्रहास ।

अक्षौहिणी वलानीकं वाहिनी साधनं चमूः ।

ध्वजिनी पृतना सेना मैन्यं दण्डो वस्थिनी ॥ ८६ ॥ २५

द्वादश सेनायाम । अद्वाणा रथानामूहिनी अक्षौहिणी । ‘अव्रम्यौत्वमूहिण्याम्’^{१-२} आत्वम ।
अथवा धात्वर्थेन साध्यने भाष्यकर्ता श्रीमद्भरकीर्तिना । अश्रुव्यासौ । अश्नुने व्यानोतीति अक्ष । “^३वृत्-

२ “वज गतौ” । पचात्रच् । २. अम० को० २।०।१।३ का० ३।०।३।४।०। ४ का० ३।०।
४।२।०। ५ विजयते विजयन्त, विजयशाली पुरुष । आंशादिको भक्तप्रत्यय । भस्यान्तादेश ।
विजयन्तस्येय पताका वैजयन्तीति । ६ ते ते वजपर्याया अन्ते यस्य भपादिमीनपर्यायादां यस्य
इद्वास्तथा शम्भुविनकरश्च स्मर कामः । तेऽपि स्मरपर्याया । तत्रथा भप वजेत्यादि । ७ कुलकुन्ति-
ग्रीवान्य ब्राह्म्यलङ्घारेपु” पा०सू० ४।२।६। इति खङ्गार्थे दक्षज् । ८ कृपा तुदति कृपाण इत्यपि ।
९. का०उ०सू० ५।१।७। १० “वल वेष्टने” ज्वलादित्वाण्णः । वलन वालो वेष्टनम । करे वालो यस्य, करेण
वलयने बोभ्यमप्यन्यत्र । ११ का० ३।० ३।०।४।०। १२. का०सू० ३।०।१।२।७। १३. का०उ०सू० ४।५।३।

वदिहनिमनिकम्यशिकपिभ्य स.” स प्रत्ययः । “छशोश्च”प् । “पढो क रसे” अक्.प । “३कपसयोगे ज्ञ.” । अक् इति जातः । ऊहन ऊह । ऊहो विद्यते रस्या सा ऊहिनी । अभाणामूहिनी अद्वौहिणी । “समासान्तसमीपयोरसुवादे:” अस्यार्थः समासस्य अन्ते समासस्य समीपे च नकारस्य पूर्वपदस्थान् निमित्तात् (परस्य) गो भवति वा । इदानीम् अद्वौहिणोप्रमाण क्रियते । यद्वारतम्—

५

“एको रथो गजश्चैको नरा. पञ्च पदातयः ।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥
पत्त्यगंगैङ्गिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ।
अनीकिनी”

१०

पत्तेस्तिगुणं सेनामुखम् । गजा ३, रथा ३, अश्वा ९, पदातय १५ इति सेनामुखम् । गजा ९, रथा: ६, अश्वा २७, पदातय ४५ इति गुल्मम् । गजा २७, रथा २७, अश्वा ८१, पदातय १३५, इति गण । गजा: ८१, रथा: ८१, अश्वा: २४३, पदातय ४०५ इति वाहिनी । गजा: २४३, रथा २४३, अश्वा ७२६, पदातय: १२१५, इति पृतना । गजा ७२६, रथा: ७२६, अश्वा २१८७, पदातय ३६४५ इति चमूः । गजा: २१८७, रथा: २१८७, अश्वा: ६५६१, पदातय १०९३५ इत्यनीकिनी । दशानी”-१५ किन्योऽक्षौहिणी । गजा २१८७०, रथा २१८७०, अश्वा: ६५६१०, पदातय: १०९३५० । बलने मवृणोति परभूषि बलम् । उभयम् । अनिति प्राणिति तृष्णस्वनै न नीयते परामय वा अनीकम् । वाहा अश्वा. सन्त्यस्या वाहिनी । साध्यते (अनेन) साधनम् । परान् शत्रू चमति ग्रसते चमूः । “कृषि-चमितनिधनिवधिसर्जित्यज्ञ ऊः ।” चमुश्च । ज्वजाः सन्त्यस्या वजिनी । नायक पिपर्ति पृतना । अङ्गैः सिनोति बन्नाति सेना । “मिनोतेर्ते०” । सेनाया स्वार्थं यथि सैन्यम् । दाम्यति दण्डः । वरुथो रथ-२० गुप्तिरस्यस्या वरुथिनी । पताकिनी । चक्रम् । अनीकिनी । “गृहः । तन्त्रम् ।

कदनं समरं युद्धं संयुगं कलहं रणम् ।

संग्रामं सम्परायाजी संयदाहुर्महाहवम् ॥ ८७ ॥

एकादश युद्धे । कद्यते कदनम् । समियूति प्रतिविकला भवन्त्यत्र नरा समरम् । युव्यतेऽन्ना (त्रा) गिर्मिर्युद्धम् । भटा सयुज्यते मिलन्त्यत्र संयुगम् । कल मुग्र वाक्य हत्यत्र कलहः । रणनिति दुन्दुभयोऽत्र रणम् । सप्रथन्ते सत्वान्यनेनेति सग्रामः । पुसि । सपरैति मृत्युत्र सम्परायः । भटा अज्यन्ते त्रियतेऽत्र आजिः । स्त्रीत्रोः । सयतन्तेऽत्र तान्त संयत । महोश्चासो आहव । “महाहव । तम् आहुः

१ का० सू० ३।६।६० । २ का० सू० ३।८।४।३ ‘कषयोगे ज्ञ’ । का० र० ४० २५६ स० । ४. प्रथम्. श्लोको महाभारत उपलब्धते । तस्योपलब्धिस्तु द्वितीयत्वाये पञ्चदशश्लोकत्वेन । इतरस्तत्र नोपलब्धते । तत्र “एको रथः” इति श्लोकानन्तरम् – “पत्तिन्तु त्रिगुणामेतामाहु सेनामुख उधा । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते । त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणाङ्गय । स्मृतास्तिक्षस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ।” चमूस्तु पृतनस्तिक्षस्तिक्षस्त्रम्भस्त्रवनीकिनी । अनीकिनीं दशगुणा प्राहु सेनामुख उधा । इति । श्लो० १६, १७,१८ । ५ अभिं चिं २।४।६ । ६. का० उ० सू० १।३।१ । ७ का० उ० सू० ६।३६ । ८. गृहशब्दस्य सेनार्थेऽन्यत्र प्रमाण मृग्यम् । ९. “कद वक्ष्लव्ये” । कद्यते विक्लूयतेऽनेनाश्मिन्वा । करणेऽधिकरणे वा लुट् । १० सद् ग्राम युद्धे” । सद् ग्रामयन्तेऽत्रेति । हेमचन्द्र । सद् ग्रामण सद् ग्राम इति ग्रामाश्रम । ११ आदूयन्ते योद्धारोऽत्रेत्याहव ।

ब्रुवन्ति । आयोधनम् । जन्यम् । प्रधनम् । प्रविदारणम् । मृद्यम् । आस्कन्दनम् । सख्यम् । समीकम् । अनीकम् । विग्रहः । समुदाय । अभ्यागम । सस्कोटिः (ट.) । समितिः । समित् । दन्वम् । सगर्दः । सगरः ।

गजो मतझजो हस्ती वारणोऽनेकपः करी ।

दन्ती स्तम्बेरमः कुम्भी द्विरदेभमितझमाः ॥ ८८ ॥

शुण्डालः सामजो नागो मातङ्गः पुष्करी द्विपः ।

करेणुः सिन्धुरः—

५

विशतिर्गजे । गजति मावृति गजः^१ । अच् । मतझाद्येजांतो मतङ्गज । “सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेऽ^३ । हस्ती विद्यतेऽस्य हस्ती । “जातो तु दन्तहस्ताभ्या कराच्चैव इनेव हि” । वारयति परान् शत्रून् वारण । न एकेन पित्त्यनेऽपः । करोऽस्त्यस्य करिन् । इदन्तोऽपि करि । दन्तो विद्यतेऽस्य १० दन्ती । स्तम्बे तृणे रमते स्तम्बेरमः । “स्तम्बकर्णयो रमित्रयो” लच् । कुम्भो विद्यतेऽस्य कुम्भी । द्वौ रदौ यस्य द्विरद । एति गच्छति शत्रुसमुखमितीभ । “इणा” यथत् भग्रत्ययो भवति स च यथत् । मित गच्छतीति मितझमाः । “गमेरच्^४” खप्रत्य । “हस्ता रूपोमोन्त^५” शुण्डा लाति गजातीति, शुण्डालास^६ । साम्न^७ सामवेदाज्जात सामज । नगे पर्वते भवो नागः । मन्यते जनेन मातङ्गः । पुष्कर विद्यतेऽस्य पुष्करी । दाया पित्रि द्विपः । करोति कार्यं करेणु । “दृक्षत्र्यामेणु”^८ । १५ आयामेणुः प्रत्ययो भवति । स्यन्दते सवति मः स्मिन्धुर^९ । दन्तावत् । पद्मी^{१०} । पीलु । कालिङ्ग ।

तेषु यन्ता याता निषाद्यपि ॥ ८९ ॥

त्रयो हस्तिपके । यच्छतीति यन्ता । यातीति याता । निषीदति इत्येवशीलो निषादी । गजयन्ता । गजयाता । हस्तियन्ता । हस्तियाता । इत्यादीनि जातव्यानि । अपिशब्दात्—आधोरण । हस्तिप । इत्यारोहः^{११} । गजाजीव । महामात्र ।

२०

नागाद्यरिः कण्ठी^{१२} (णिः) रवो मृगेन्द्रः केसरी हरिः ।

चत्वारः सिहे । नागारि । गजरिपु । मतझावैरी । हस्तिद्विट् । वारणवैरी । अनेकपसप्तन । करिपितु । दन्तिवैरी । स्तम्बेरमपितुः । कवचदृशते ईटं पाठः । कुम्भवैरी । इमवैरी । मतङ्गशत्रुः । शुण्डालरिपु । सामजद्वेषी । नागारि । पुष्करिपितुः । द्विपवैरी । करेणुरिपु । सिन्धुरवैरी । इत्यादीनि २५ पर्यायनामानि सिहस्र ज्ञातव्यानि । कण्ठे रद्वी ध्वनिर्यस्य करण्ठीरव ।

२५

^१ गजति मावृति गर्जति वा गजः । २. का० स० ५।३।११। ३ का० स० २।६।१५। इत्तिः । ४ का० स० ४।३।१६। ५. का० उ० स० २।२। ६ का० स० ६।३। ४५। ७ का० स० ४।१।२। ८ शुण्डालस्त्यस्त्येत्यपि । ‘प्राणिस्थादातो लजन्तरस्याम्’ पा०स० ५।२।१६। इति मत्वर्थीयो लच्चप्रत्यय । ९ सामवेदो हि गीतपरः । तद्वरेण समाकृष्टा हस्तिनो बद्धा अभवन । बद्धाश्राकृष्ट जनपदे समानीता । गीतमूढा यतो बद्धसमानीता । अत एव सामजा इत्युच्यन्ते । इति सङ्गति । प्रमाणान्तरमपि मृद्यम । सामवेदमुच्चारयन् विधिग्रन्थान् सर्वज । वाम्ना सह जातत्वात्सामजा इति । १० का० उ० स० २।६। ११ स्यन्दधातोरकर्मकत्वात्सवति मदमित्यर्थश्चिन्तनीय । १२ अत कल्पदुकोष १५।१४। प्रमाणम्—“करी मतङ्गजः पद्मी सूर्यकर्णो लतारस” । इति । १३ लक्ष्मी भद्रभियाज्ञत्र कणिठरव इति पाठ प्रतिभाति । वर्णागमो गवेन्द्रादावित्येकारस्य इकार ईकारश्च विधेय ।

“‘वर्णागमो गवेन्द्रादौ सि हे वर्णविपर्ययः ।
बोहशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृष्ठोदरे ॥’”

इत्येन एकारस्य ईकार । मृगाणा चतुष्पदाना मध्ये इन्द्र. मृगेन्द्र । केसरा. स्कन्धकेशा-
सन्त्यस्य केसरी । क्रमप्राप्ते हरति ३हरि । पञ्चानन । हर्यक्ष । नखरामुष । मृगरिपु । सिंह ।

५ व्याघ्रश्चमृः शार्दूलः-

त्रयो व्याघ्रे । व्याजिग्रति प्राणान् उगादते व्याघ्र । चमति अति पश्चत् चमूर । परान्
शृणाति हिनमिति शार्दूल । दीपी । पुण्डरीकः । तरक्षु । चित्रकाय । मृगरिः ।

गरभोऽष्टापदोऽष्टपात् ॥ ६० ॥

त्रयोऽष्टापदे । शृणाति हिनस्ति शरभ । “४कृशुग्लिगर्दिरासवलिवहित्याभ” । अष्टौ
१० पदान्यस्य अष्टापदः । अष्टौ पादा यस्यामौ अष्टपात ।

क्रोडो वराहो दंस्ती च धृष्टिः पोत्री च शृकरः ।

श्रष्टा (पट) शृकरे । पत्वल सक्रमति क्रोड ॥ १ वराहान्ति वराह २ । दशा सन्त्यस्य दप्त्री ।
वर्षतीति धृष्टिः । शृष्टिव । पूढ़ पवने । पू । भा० । पूर्ण पवने वा । कै० । उभयवदी । पूर्वोन्नेति पोत्रम्
“५हलशूरकरया पुवः” पूर्न । त्रमात्र । नाभ्यन्तुगुण । मि० नप० । पौत्रमस्त्यस्य पोत्रो । सते प्रचुगा-
१५ पत्वानि, श्वयति वर्षते वा गीनत्वेन सूकर ६ । शृकरश्च । दन्त्यतालव्य । कोल । किं । किरिच्च ।

उष्टो मयः शृंखलिकः कलभः शीघ्रगामुकः ॥ ६१ ॥

पञ्चोष्टे । उष्टये दक्षते मरी उष्टु । “६सर्वधातुन्य पूर्व” । मयते गच्छति मयः ७ । मर्यते
इत्येके । शृङ्खल वन्नवन्मस्य शृङ्खलिक ८ । क शिरो रसते उन्नमयतीति कलभ । करभश । शीघ्र
गच्छतीति शीघ्रगामुक । दासेक । दीर्घजद्व । ग्रीवी । रवण । धू प्राको (धूपक) ।

२० कौलेयकः सारमेयो मण्डलः श्वा पुरोगतिः ।

जिह्वापो ग्रामशार्दूलः कुकुरो गत्रिजागाः ॥ ०२ ॥

नव सारमेय । कुले यह मव कौलेय १० (यक) । सरमाया अपत्य सारमेग । मण्ड लाति
मरण्डल । चारादीन श्वयति गच्छति इवा । श्वानोऽदन्तोऽपि । पुरो गच्छति पुरोगति । ११ जिह्वा शरीर

२. ‘पृष्ठोदरादय’ इति शा० न० २१२।१७२। कारिका । २ प्राणान् इरतीत्येता-
वानेवान्यत्र । ३. यद्वा शारयतीति शार । किं । दूयते इति दूल । अन्तर्भावितिणिजयो दूदू । शार-
वासौ दूलश्चेति विग्रह । ४. का०उ०त०००० ३।१२।५ “कुड घनत्वे” । क्रोडन घनत्व सौऽस्यात्तीति क्रोड ।
“अर्श आश्च” इति रामाश्रम । ६ वरमाहन्तीति वर आहारो यस्येति वा पृष्ठोदरादित्वात् । ७ का०स००
४।२।८। ८ सुव प्रसव करोतीति । शकोऽस्त्यस्य शूकर वरसोमत्वात् । शूक राति वा । शृङ्खलिकनि
करोति वा । ९. वष्टि इन्द्रिति कार्यकिवृद्धादन मरुभिं वा इति उष्टु । “सर्वधातुन्य पूर्व” इति का० उ०
४।२।९। स्वे दुर्गसिंह—“वश कान्तौ” । वशति उष्टुः करभः । अस्य दृन्नन्तस्य सम्प्रसारण निपातना-
न्यन्वच्च । दत्याह । १० का०उ०म० १।३। ११ मीनायहीन् मय । ‘मीज् हिसायाम’ । पचाश्च ।
दति वा । १२ शृङ्खलमस्य बन्धन करमे” पा० स० ५।६।७। १३ दति कन् । तेन शृङ्खलक हात साधु ।
“न तु शृङ्खलक काष्ठमयै स्थापादचन्धनै” । इति अभिः च० । १४ “कुलकुक्षिग्रीवान्य श्वादस्यलङ्घारेपु”
पा० स० ४।२।९। १५ जिह्वा रसनया विबतीति विग्रहः सुवच्च । जिह्वा शरीर
पातीत्यपि सम्भवति ।

पति रक्षति जिहाप । ग्रामणा शादूलो व्याप्र आमशार्दूल । कुक् शब्द करोतीति कुक्कुर १ । कुर् शब्दे । कुकुरथ । रात्रौ जाग्रति रात्रिजागर । लेड्वह । उक्कण । भषण । मृगदश । शालावृक ।

हेम चाषापदं स्वर्णं कंनकार्जुनकाञ्चनम् ।
सुवर्णं हिरण्यं भर्मं जातरूपं च हाटकम् ॥ ६३ ॥
तपनीयं कलाधौतं कार्तस्वराशिलोङ्घवम् ।

पञ्चदश स्वर्णे । हिनोति वर्धतेऽनेन हेमन् । नान्तम् । अदन्त हेम च । अष्टसु लोहेमुपद प्रतिष्ठास्य आषापदम् । “अथनः॒ सज्जायाम्” इति दीर्घ । शोभनो वणाऽस्य स्वर्णम् । उकारलोपैः । अथवा समासे वर्णस्य वा वलोपमादुः । यथा पञ्चाणा मन्त्रा । कनति दीर्घते कनकम् । ‘कनिचनिभ्यामक २’ । कनी दीपिकानितिगतिपु । श्रीर्ज सर्ज अर्जने । अर्जतीत्यर्जुनम् ३ । ‘ऋक्तृवृत्यमि’- दीर्घजिन्य उनः । कात्रति शोभा बनाति काञ्चनम् । शोभनो वणा यस्य सुवर्णम् । उभयम् । पुण्य जिहीते ४ हिरण्यम् । अथवा ओहास्त्वये । हीयते हिरण्यम् । ‘हो॑ हिरश्च’ अस्मादन्य प्रत्ययो भवति हिरादेशश्च । भ्रयते धार्यते नान्तम् भर्मन् । अदन्त च भर्मम् । जात रूप यस्य जातरूपम् ५ । लीबे । नवा च ‘यशस्तिलके—“अमङ्गल्यहोऽपि जातरूपस्थृतः” । हटति हाटकम् । हट दीपा । अग्निना नायते तपनीयम् । कला धावति गच्छति कलाधौतम् ६ । कृतस्वराकरे भव कार्तस्वरम् । शिलाया नामाणाङ्घवा यस्य शिलोङ्घवम् । शातकुम्भम् । गाङ्गेयम् । कबरम् । चामीकरम् । महारजनम् । रक्षम् । रुमम् । जम्बुनदम् । कल्याणम् । गिरिक । चन्द्रवसु च ।

स्पृणं रजत गुलिका-

त्रयो रूपे । रूपयते जना मुक्ततेऽनेन रूप्यम् ७ । जन रजति रजतम् । रजयते हेमा रजत वा । गुडि रक्षति आपद समाशाद् गुलिका । गुडिका च । कलाधौतम् । तारम् । सितम् । दुर्वर्णम् । खर्जरम् । शवनम् ।

शुक्रिज माँकिं तथा ॥ ६४ ॥

द्रौ मोक्षिके । शुक्र्या जलादियानोपकरणश्चविशेषाद्वातम् शुक्रिजम् । मुक्ताना समृहो मौक्तिकम् । समृह॑ये इकण् ।

वित्तं वस्तु वसु द्रव्यं स्वार्थं ग द्रविणं धनम्-

कस्वरं

दश धने । विन्दति पुण्यकृत वित्तम् । धावयेन व्युपत्तिः क्रियतेऽमरकीर्तिना । ‘विवृत् लाभे । विद् । वित्ते भ्य सुन्यते (भ्य) वित्तम् । निष्ठानः । ‘भित्तर्णवित्ता १० शकलाधर्मण्मोगेषु” वित्तमिति

१. कुक् इति शब्द कुरति उच्चारयतीति विग्रह । इगुपथवात्कप्रत्यय । यदा कोक्ते उच्चारिकमादत्ते कुक् । ‘कुक् आदाने’ । गिप् । कुरति शज्जायते कुर । कुक् चामौ कुरश्रेति विग्रहः । २ पा० स० ६।३।१२५ । ३ का० उ० स० ३।४६ । ४ अर्जयते पुण्यर्जुनम् । ५ का० उ० स० २।६० । ६ का० उ० स० ३।३ । ७ अकृतकरूपमित्यर्थ । अथवा प्रशस्त जात जातस्मम् । प्रशमाया रूपप्रत्यय । ८ मुदत्तमुनवर्णने आ० । ९ हाटकाकरप्रभवत्वाद् वा हाटकम् । १० कला सुवर्णकलिका धौता गता धावति गच्छति वा यस्मादिति कलाधौतम् । ११. रूप स्पृक्रियायाम । प्यन्त । अच्च यत् । १२ का० स० ४।६।१।१४।

निपातः । निपातस्येऽन मवति । “दादस्यै च” तो नो न मवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “कमि॒-
मनिजनिवसिहृष्टश्च” एव्यस्तुन् प्रत्ययो भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “पय॑सिवसिइनिमनि-
श्चरीन्दिकनिदिवप्तिवृणिग्यश्च” एव्य एकादशृ॒ष्ट उ प्रत्ययो भवति । द्रूयते गम्यते द्रव्यम् । पर स्यति
अनं नयति अथवा पुण्य स्वनति स्वः॒४ स्वम् । उमयम् । पुण्यकृतमिर्ति अर्थम् । गुणान् राति रैः ।
५ “राते डैः॑” छीत्रा । द्रूयते गम्यते द्रव्यिणम् । दधाति धारयति सारत्व घनम् । कश गतौ । कशतोत्येव
शील कस्त्वरम् । “कृसिपिसियासीशस्थाप्रमदा च” वरप्रत्ययः । वुन । सारम् । स्वापतेयम् । शृ-
कथम् । रिकथम् । हिरण्यम् । विभव ।

तत्पति प्राहुः कुवेरं चेकपिङ्गलम् ॥ ६५ ॥

वैश्ववणं राजराजमुच्चराशापतिं तथा ।

१० अलकानिलयं श्रीदं घनपर्यायदायकम् ॥ ६६ ॥

कुवेरे । तस्य पतिः तत्पति त कुवेरं प्राहुब्र॑वन्ति । वित्तपति । वसुपति । वस्तुपति ।
द्रव्यपति । स्वपति । ग्रथपति । रा(रं)पति । द्रविरापति । घनपति । कस्त्वरपति । इत्यादिपर्यायनामानि
कुवेरस्य जातव्यानि । कुत्सितो वेरो देह कुञ्जत्वाद्यस्य स कुवेर । पिङ्गलेकनेत्रवादेकपिङ्गलः । विअ-
वसोऽप्यमणि शिवादित्वात् । लादेशो वैश्ववणः । राजा यद्याणा राजा राजराज । उत्तराशाया पति
१५ उत्तराशापतिः । अलका निलयो यह यस्य अलकानिलय । श्रीय दयते श्रीद । घनपर्यायदायक ।
घनदायक । धनद । वित्तदायकः । वित्तद । वसुदायक । वसुदः । द्रव्यदायक । द्रव्यद । स्वदायक ।
स्वद । गंदायक । गंदः । द्रविणायक । द्रविणादः । कस्त्वरायक । कस्त्वरठ ।

राष्ट्रं जनपदो निर्गो जनानतो विषयः स्मृतः ॥

पञ्च जनपदे । राजते राष्ट्रम् । तथा च सोमनीतौ—“पशुधान्यहिरण्यसपदा राजते
२० शोभते इति राष्ट्रम्” । जनी प्रादुर्भवे । जन् । जायते कथितमन्ये प्रयुक्तजते “ध्रातोश्चहैतौ” इन् प्रत्ययः ।
अस्योप० दीर्घ । जानिरिति जातम् । “जनिब॑योश्च” हस्वः । जनि जातम । जनयन्ति प्रजा धनमिति
जना । “अच् ॒ पचादि॒यं” अच् प्रत्यय । “कारितम्याना०११” कारितलोप । पद गतौ । पद । जनैर्वर्णाश्रम-
लक्षणै पद्यते गम्यते प्रायते आश्रीयत इति जनपद । “अच् पचादे॑१२” अच् प्रत्यय । जनपद इति जात ।
२५ तथा च सोमनीतौ—“१३ जनस्य वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेभ्यो स्थानांमनि जनपदः ।” निर्गम्यते
यस्मिन्निति निर्ग । “निर्गो॑४ देशोऽधिकरणे” इति डप्रत्यय । देशादन्यत्र निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गमनो
गिरि । जनानामन्तो निकटं जतान्त । विशु बन्धने । “ध्रात्वादे॑५” प सः॒६ सिंविषू० । विपिण्वन्ति
अस्मिन्निति विषय । “पुष्टि सज्जाया॑७ घः ‘नाम्य०१९’ गुणः । “ए॑८ अय्” तथा । च सोमनीतौ—
२९ “१० विविधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सद्गुणं गजान् नृवाजिनश्च सिनोति बध्नातीति विषयः ।”

पूः पुरी नगरं चेव पद्मनं पुटभेदनम् ॥ ६७ ॥

६ का० सू० ४१६१०२ । २ का० उ० सू० १२७ । ३. का० उ० सू० १६ । ४ ‘पोडन्त-
कर्मणि’ । वप्रत्यय । ‘स्वन शब्दे॑’ डप्रत्ययो वा । ५ का० उ० सू० १२७ । ६ का० सू० ४१४५७
७ जन० सम० १८ । का० सू० ३१२१० । ८ का० सू० ३४१७ । १० का० सू० ४१२५१ । ११ का०
सू० ३६१४४ । १२ वप्रत्ययो कविधानम्, पुसि सज्जाया घः इति कर्मणि कप्रत्ययो वप्रत्ययो वा वक्तव्य ।
न तु पचाद्यच्, तस्य कर्त्तरि कविधानात् । १३ जन० सम० ५। १४ है०श० ५। १११३३। १५. का० सू० ३१०२४
१६ का० सू० ४१५१६ । १७. का० सू० ४१५११ । १८ का० सू० १२११२ । १९. जन० सम० ३ ।

षट् (पञ्च) नगरे । पूर्ण पालनपूरणयोः । पूर्णै० । पूर्णातीयेवशीला पूर्णः । ‘किञ्चाजिपृथुर्विभासाम्’ किंपु । “उरोष्योपवस्थ्य च” उर् । पुर् जातम् । “नामिनोर्वोर०” पूर् । वेलोप० । सि । ‘ब्यज्जनाच्च’” सिलोप । “रेषोर्विसर्जनीयः” रस्य विसर्गः । पूर्णै० अदन्तं । पुर् पुरी च । हदन्तोऽपि पुरि । नगाः सन्त्यत्र, ग्राम्यत्वं नन्यत्यत्र वा नगरम्० । छीवे । नगरी च । नानादिर्दशागताना विशिष्टा भाष्टानि पतन्त्यत्र पत्तनम् । पट्टन च । अत्र स्मृतिमेद —

“पट्टन शकटर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव वा ।
नौभिरेव तु यद्गम्य पत्तन तत्प्रचक्षते ॥”

पुटा वासा भिन्ननेत्रं पुटमेशनम् । क्लीवे । अधिष्ठानम् । निगमः । दण्ड० । स्थानीयम् ।

वक्त्रं लपनमास्यं च वदनं मुखमाननम् ।

पणमग्ने । वच परिभाषणे । उच्यतेऽनेन वक्त्रम् । ‘सर्वधातुभ्यः’१५८०’ पूर्ण०’ । रप् लप् जलप् व्यत्ताया १० वाच्च । लायतेऽनेन लपनम् । युट् । अःयतेऽमिन्नास्यम्’१५९०’ कृत्यल्युटो बहुल’मिति प्यच् । वद व्यत्ताया वाच्च । उद्यतेऽनेन वदनम् । महति मुहूर्ति भूतेण वा मुखम्’१६००’ । खन्यते वा मुखम् । उणादो । मुख २ ख तक्तिक्याम् । चौरादिक्वादिन् । मुख्यति अन्नादिवादनेनेति मुखम् । ‘मुखेः’१६१०’ को मुखिश्च’ । मुखे क प्रत्ययो भवति धातोर्मुखिश्च । इकार उच्चारणार्थः । आ अनिति श्वसिन्यनेन आननन् । तुण्डम् ।

श्रवणं श्रोत्रं श्रवश्चापि कर्णं चैव श्रुतिं विदुः ॥ ६८ ॥

पञ्च कर्णे । श्रूयतेऽनेन श्रवणम् । श्रूयतेऽनेन श्रोत्रम् । क्लीप । श्रूणोत्यनेन सान्तम् श्रवः । क्लीवे । करोति शब्दावधानं कर्णः’१६२०’ । कर्णयनि वा कर्णै । लिङ्गं कर्णमेदे । श्रूयतेऽनेन श्रुतिः । निश्चाम । विदुः कथयन्ति ।

दग्धाक्षिं चक्षुर्नयनं दृष्टिनेत्रं विलोचनम् ।

सप्त नेत्रे । दृश्यतेऽनेन दृक् । तालव्यानतः । अश्रव्यानां । अश्वनेते व्यानोन्यनेनात्मा घटादीन-२० र्थानिति अक्षिः । ‘अशिक्षुपिण्या सिक्’ । चण्ठ हृदयाकूत् सान्तम् चक्षु । “‘ऋपवपिचक्षिजीव-तनिधनिभ्य उम्’ । नीयते चित्त विपर्ययु अनेन नयनम् । दृश्यते प्रकटायोऽन्या दृष्टिः । नीयतेऽनेन दृश्य नेत्रम् । उभयम् । विशेषेण लोक्यते अवलोक्यतेऽनेन विलोचनम् । अक्षम् । ताङ्का । ज्योति ।

कटाक्षं केकरापाङ्गं विभ्रमस्तस्य वैकृतम् ॥ ६९ ॥

तस्य नंवस्य वक्तुते पट् (पञ्च) । कटयतीति १६३०’ कटाक्षम् । उभयम् । के (शिरमि) २५

१ का० सू० ४।८।६५। २ का० सू० ३।५।४३। ३ का० सू० ३।१।१। ४ इनि दीर्घ । ४ का० सू० ४।१।३। ५ का० सू० २।१।४। ६ का० सू० २।३।६। ७ ‘नगामुपाण्डुम्यथेति’ पा० सू० ५।२।१०। वार्तिकेन मत्वर्थ्ययोः । अथवा नश् धातोर्णादिकोऽप्रत्ययः शस्य गत्वे च । ८ का० उ० सू० ८।३। ९ आस्यन्दतेऽप्लादिना प्रस्वव्यत्रेति । १० ‘कृत्यल्युटोऽन्यत्रापि’ इति का० सूक्ष्म । ११५।१२। टीकोक्तयथाश्रुतमृत्युन्तु पाणिनीयम् ३।३।१९। ११ लन्यतेऽवदायते फलादिकमनेनेत्यपि । ‘दिन्द्यनेमुट् चौदातः’ उ० अचूलं च डित् मुडागमश्वेत्यन्यत्र । ‘मुदितानि खानोन्द्रियाण्यनेत्येकं’ इति द्वीर० स्वा० । १२ का० उ० सू० ६।६५। १३ टीकोक्तविग्रहं करोतेरोणादिको णग्न्ययः । कीर्त्यते शब्दग्रहणाय त्रिप्यते, कीर्त्यते शब्दोऽस्मिन्निति वा, किरति शरीरे सुखमिति वा । १४ का० उ० सू० ६।५७। १५ का० उ० सू० २।४६। १६ कटेऽप्तिशयितेऽक्षिणी यत्र, कट गण्डमक्षिति व्यानाति वेति रामाश्रम । कटे आक्षिपतीति द्वीरत्वा० ।

किरति विक्षेप क्षिपतीति (कर्षतीति) के कर । न पाति कामिनमपाङ्ग १ । उभयम् । विभ्रमण विभ्रम । विकृतम्य भावो वैकृतम् ।

दन्तवासोऽधरोऽप्योष्टे वर्णितो दशनच्छदः ।

चत्वारश्चतुर्थे श्रोष्टे । दन्ताना वासो दन्तवासः । अवति शोभामधरः । 'अधो' भवोऽधरो ५ वा । ओष्ठान्था सहितावधरौ वा । अधरोऽप्योष्मात्रे वर्तते ॥ १ । उपति दहति सप्तनीहृदयमोष्टः । उप्यते तीक्ष्णाहारेण्यौष्टो वा । वर्णित कथित । दशनस्य छुटो दशनच्छद ।

शिरोधरो गलो ग्रीवा कण्ठश्च धमनी धमः ॥ १०० ॥

पट्टगले । शिरो धरति शिरोधर । शिरोधरा च । गलति भोजन गल । गृणाति गिरति वा १० ग्रीवा । उणादा गृणादै गृणातीति ग्रीवा । 'शर्वजिह्वाग्रीवा' ॥ एते क्रपत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठ । कण्ठः । 'कण्ठः' ॥ अस्माद्प्रत्ययो भवति । धम् । सौत्रो धातु । धम्यतेऽनया धमनिः । इदन्त । विण्यामी । धमनी । धमति धमः । मन्या । कन्धरा ।

दोदोषा च भुजो बाहुः-

चन्वारो बाहाँ । दम्यते विनीयते परोऽनेन दोः । सान्तम । "दमेडोस्" । दूपयति दुष्ट या इति २५ दोषा । आदन्त । अव्ययः । न व्ययते । मुज्यतेऽनेन भुज । निपातनात् च ज्ञोः कगत्व न भवति । नामिन इति गुणव्य न भवति । भुजन्युवर्जी १ पाणिरोगयो ॥ इत्यमिन्नर्थे निपातनात् । सुजा च । बहत्यनेनेति बाहुः । "बहिस्वदि" (नहि) तलि पश्चिम्य उण् ॥ प्रकोष्ठ ।

पाणिर्हस्तः करस्तथा ।

त्रयो इस्ते । पणायते व्यवहरत्यनेन पाणिः । "अजिजन्यतिरशिपणिम्य एव्य इति २० भवति । हृष्टे हृस्तः । "हसेत्त । कीर्यते क्षियतेऽनेन करः । शयः । शम् ॥ इत्यन्यः । पञ्चशाख ।

प्राहुर्बाहुशिरोऽमश्च-

बाहुशिरसो अस इति सज्जा प्राहुः कथयन्ति । अस्यते भारेणामः ॥ १ । स्कन्धव्य ।

हस्तशासा कराङ्गुलिः ॥ १०१ ॥

द्वै अड्गुल्याम् । हस्तस्य शाखा इव हस्तशासा । आकुञ्जनादिकर्माणि अङ्गुति गन्ध्रिति अङ्गुलम् । छीकलीबे । अङ्गुली । करस्याङ्गुलिः ॥ १३ कराङ्गुलिः । एवमद्गुरम् । अड्गुरी ।

नासा ग्राणम्-

१ अपाङ्गतीयपाङ्ग । 'अग्नि गतौ' । अच् । २ 'अर्धो भव' इल्यार्ण्य 'वर्तने' इत्यन्त द्वीर्म्वामिभाष्यमत्रोदात्म । तद्राये 'ओष्ठाधरो तु' इत्यमरोक्तमूलपदस्य व्याख्याल्पम् ॥ 'ओष्ठान्था सहितावधरो' इति वाक्यमनधानुसरणात्रोद्वृतमपस्तुतमिति विवेक । ३ दन्ताश्छायन्तेऽनेति तदाशय । पु सि सज्जाया थः । ४ का० उ० स० २।२।५ का० उ० स० १।४।२।६ का० उ० स० १।४।२।७ का० उ० स० ४।६।६।४।८ का० उ० स० १।३ । ८ का० उ० स० १।६।१० का० उ० म० १।२।७ ॥ 'मृगवा-हस्यमिदमिल्पूभ्यस्तः' इति पूर्ण सूत्रम् । ११ अत्र प्रमाणम्—'पाणिं शयः शमो हस्त' इत्यमरमाला । 'पञ्चशाखः शय शमः' इति अभिम० चिं । १२ अस्यते समाहन्यते इत्यर्थः । 'अस समाजाते' । अस धातुश्रुरादि । यदा 'अम गतौ' अमति अस्यते वा अस । औणादिक सन्प्रत्यय । १३ अड्गुल इत्यत्र 'अङ्गुरेल' का० उ० स० ६।४।८ इत्यङ्गुधातोरुलप्रत्यय । अङ्गुलिशब्दं तु 'अङ्गुतिम्यामुलीयि' का० उ० ३।३।० इत्युलिप्रत्ययः । विण्यामी । अङ्गुली इत्यपि ।

द्वौ नासिकायाम् । नासते शब्दायते नास्यतेऽनया वा नासा^१ । नेस्ना^२ च^३ जिघ्रत्यनेन घाणम् । हीने । सिङ्गनी । नासिका । घोणा ।

उगे वक्षः

द्वौ मुजमव्ये । अर्थते गम्यते उर^४ । ४ “अर्तेंहश्च” अस्मादसुनप्रत्ययो भवति अस्य उरादेशो भवति । श्च गतौ । अस्य धातों प्रयोग । वक्ति वार्णी वक्षः । ५ “वचेः” सोऽन्तश्च अस्मादसन प्रत्ययो भवति सोऽन्तः । अकार उच्चारणार्थः । ६ “चर्वग्यस्य किः । “निमित्तादि” त्वादिना पत्व च ।

कुक्षिः स्याज्ञठरोदरम् ।

त्रयो बठरे । कुपति (कुष्णाति) निर्जर्गत्याहार कुक्षिः^८ । पुमि । कुच्छम् । हीने । जपति जठरम् । अथवा जठ सौत्रोऽय धातु । उणादौ निपातोऽस्ति । उनत्ति क्लेदयत्याहारमुदरम् । एते उभयम् । पिचण्डम् । तुन्दम् ।

१०

स्तनः पयोधरकुचौ वक्षोज इति वर्णितः ॥ १०२ ।

चत्वार कृक्षायाम् । स्तन्यते वालैः ७ स्तनः । पयो धरतीति पयोधर^{१०} । कोचते छी मृद्यमानेऽत्र कुच्यते मर्दनेन आकुलीकियते वा कुचः । कूचश्च । वक्षमि जातो वक्षोज । उरसिजः । वक्षोऽह ।

१५

कटिनितम्बं श्रोणी च जघनं-

चत्वार कट्याम् । कटयते वस्त्रैराच्छायते कटि । कटी । कट । कटम् । नितरामतिशयेन तम्यने काड्यते^{११} नितम्बः । श्राशीयते कामिभिः श्रोण । नदादिवादीः श्रोणी । उदन्तोऽपि श्राणिः^{१२} । छियामी । श्रोणी । इन्ति चिन्मिति जघनम् । १३ “हनेर्जघश्च” । चकारात् काङ्गीपदम् । कलत्रम् । कडत्रम् । जघनम् । ककुञ्जाती । आरोहः । कटीरम् । त्रिकस्थानकम् । स्थानपदाभावोऽपि त्रिकम् । फलक च ।

जानु जहु च ।

२०

द्वौ जानो । गन्तु जायते जानुः^४ । १४ “कृवापाजिमिस्वदिसायशूद्दसनिजनिचरिचटिन्य उण्” । जहाति^५ जहुः । श्रीवान् । जह्वा^६ ।

चलनं चरणं पाढं क्रमोऽहिश्च पद विदुः ॥ १०३ ॥

१ “णाम् शब्दे” । नाम् धातु । अच्च धनु वा । २ नेदमतोऽन्त्यत्र समुपलब्धम् । ३ अर्थते गम्यते वलेनेति शोष । अथवा उरम् वलार्यं कण्डवादि । उरस्यति वलमाधते उर । विष् । ४ का० उ० स० ४१६७। ५ का०उ०स० ८६२। ६ का०स० ३१८। ७ का०स० ३१८। ८ स्तन गदी शब्दे” स्तनति कथयति यौवनोदयम् । भृत्यन्ते वर्णते कामुकैर्वै स्तन इत्यन्यत्र । १० धरतीति धर । पचायन् । पयसो धरः पयोधर । इति पूर्ण यत्रम् । टीकोन्कियद्वै तु कर्मण्यस्ति पयोधार इति स्यात् । ११ तम्ब गतौ” नितम्बति गच्छतीति, निमृत तयते कामुकैः निमृत ताम्यति सुरतसमर्दाद्वा नितम्ब इति रामाश्रम । १२ श्रूयते किङ्गिरिखनिरत्र “श्रु श्रवणे” श्रोणादिको णि । १३ हेमचन्द्र । “श्रोण मङ्ग्याते” श्रोणति विविधशरीरावयवै सङ्ग्रातो भवतीति श्रोणिः । “सर्वधातुम्य इन्” इति रामाश्रम । १४ का० उ० स० २३७। १५ जायते नेनाकुञ्जनादि जानुरिति हेमचन्द्रः । १६ का०उ०स० ११। १७ नात्र कोपान्तरप्रमाणमुपलब्धम् । १८ यद्यपि जह्वासामीप्याद् भेदाविवद्या जानुर्यो जह्वेत्युक्तम् । तत्र भेदस्तु न वित्सर्वम् ।

यद् चरणे । चाल्यते चलनम्^१ । चरत्यनेन चरणम् । पद्यतेऽनेन पादः । घञ् । दान्तोऽपि गद् । 'कमु पदविक्षेपे' । क्राम्यत्यनेनेति क्रमः । 'अहि गतौ^२' । इदनुब्रह्मत्वात्मागमः अहत्यनेनेत्यहिंः । 'अंहेहिः' अहेधातोरिप्रत्ययो भवति । अद्विश्व । पद्यते पदम् । क्लीवे ।

शिरो मूर्धोत्तमाङ्गं कम्-

५ चत्वारो मस्तके । शु हिसायाम् । शीर्षंते हिस्यते शिर । "उपिरजिशृङ्ख्यो यज्वन्"
ए+योऽस्त् प्रत्ययो भवति स च यज्वन् । तेनागुण । अनुष्ठङ्गलोप । 'मूर्छा मोहसमन्द्वया' । मूर्छन्त्य-
त्राहता, प्राणिनो मूर्धा । ए॒पृष्ठादय—'पूषन् अर्थमन् प्रजन्तुक्ष्वाहन् मातरिश्वन् क्षेदन् स्नेहन्-
मूर्धन्युष्टन्' एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । उत्तम च तद् अङ्गम् उत्तमाङ्गम् । कै गै शब्दे । कायतीति कम् ।
शीर्षम् । मस्तक । 'कन्याङ्गं च नानार्थे ।

प्रारम्भं प्रेरितेरितम् ।

त्रयः प्रेरणे । प्रारम्भते प्रारम्भम् । "शक्तिशिप्वर्वग्न्ताच्च" यः प्रारम्भ । ईर गतो
कम्पने च । प्रेर्यते प्रेरितम् । ईरितम् । "नपु सके भावे च" ।

साम्राज्ञ सरस्वतीनामानि प्रारम्भन्ते आचार्यश्रीमद्भरकीर्तिना-

वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः मरस्वती ॥ १०४ ॥

१५ सम वाण्याम् । उच्यते वाक् । 'वचिप्रच्छिद्रशुप्रज्वा विवृदीर्षश्च' ए+य. शिप्प्रत्ययो
भवति दीर्घश्वरम्यैपाम् । वन्नि वच^३ । "सर्वधातु-योऽस्त्" । उच्यते वचनम् । वाण्यने
वाणि^४ । लियामीः । वाणी । विर्भित जगद् धारयति, भरतो व्राणा तस्येय भारती । तथा च—
"आत्मनि मोक्षे व्याने वृत्तो ताते च भरतराजस्य ।
ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"

२० गीर्यते उच्चार्यं रान्त गीः । सर प्रसरणमस्त्या सरस्वतीः । व्राणी । तयाहि—
"गीर्गीः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गी वं प्रयोक्तुः संबं शसनि ॥

सिहद्विपघने गर्जः—

सिहे कण्ठीरवे, द्विपे गजे, घने में च गर्ज^५ शब्द कथ्यते । गर्जन गज ।

हेषाऽश्वे

अश्वाना शब्दे हेषा । हेषणम् । हेषा हेषा च ।

वृंहितं गजे ।

गजशब्दे वृंहितम् । वर्हणम् ।

स्फीत्कृतं धेनुकलभे—

१ चलत्यनेनेति चलनमिति सुवचः । २ अत्राभिधानचिन्तामणि, प्रमाणम्—'चरण नमणः
पाद, पदोऽहित्वलन क्रमः' । इति । ३।२८।३ का० उ० सू० ४।५।४ का०उ० सू० २।५ । ५ अत्र
प्रमाणान्तरामाद् । वराङ्गु कमनीयाङ्गुमिति वा स्यात् । ६ का०सू० ६।२।१। ७ का०उ० सू० २।२।३
८. उच्यते वच 'इति कर्मणि विग्रहो युक्त । ९ का० उ० सू० ४।५। १० "वण शब्दे" चुरादि ।
११. सिहगजमेषध्वनौ गर्जशब्द प्रयुज्यते । एव वद्यमाणतद्व्यन्ना सर्वत्र योज्यम् ।

धेनुकलमे शिशुवत्से स्फीत्कृत^१ स्फीत्शब्द कथ्यते ।

स्तमितं जलदे तथा ॥ १०५ ॥

जलदे मेरे मेवाना शब्दे स्तनित कथ्यते । स्तन्यते स्तनितम् ।

स्यन्दने चीत्कृतं मन्त्रे भटे च हुङ्कृतं तथा ।

स्यन्दने रथशब्दे चीत्कृतं कथ्यते । मन्त्रे भटे च हुङ्कृतः कथ्यते । हु मन्त्रे, हु परिप्रयने ५
हु सत्य सुषुप्ते भयादो रादसोऽयम् । कुत्सने हु निर्लिङ्गा । अनिच्छायाम हु हु मञ्च ।

मीत्कृत मणितं कामे-

कामे कन्दर्पभोगा-तावशब्दे स्फीत्कृत मणितम् । स्फीत्ययते सी-कृतम् । मण्यते मणितम् ।

खनकृतं शृङ्खलायुधे ॥ १०६ ॥

शृङ्खलायुधे खनकृतम् । सुगमम् ।

१०

मीत्तीरकं तुलाकोटिर्णं पुर-

त्रयं छीणा चरणामरणे । मञ्जि गै त्र । मन्त्र्याकर्पति चित् मञ्जीरम् । त्रयवा मञ्जु मञ्जु-
नीरयति मञ्जीरम् । तुराकृतेजङ्घाया कोटिरब तुलाकोटिः^२ । श्लोगति नौतीनि नूपुरम्^३ । शिरङ्गाना ।
रादकृकः । हसकम् । पदाङ्गुदन । कलापो नानाय ।

तत्र मंसूतम् ।

१५

तत्र तम्भिन् मञ्जीरके तच्छब्दे ससूत कथ्यत ।

आङ्कृतं चाथ मरुति-

मरुति वाया तच्छब्दे आङ्कृतं कथ्यते ।

क्रेङ्कृतं क्रौश्चहंसयोः ॥ १०७ ॥

क्रौश्चव हसथ्र क्रौश्चहसो तयो क्रौश्चहंसयो क्रेङ्कृतशब्दो मरतः कथित । तथा^४ चामरमिह— २०
'निपाद॑पभगान्वारषड्जमध्यमधैवता ।

पञ्चमसूचेत्यमासम् तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥

तया च भरतनाटके—

^५“पड्ज मयुग्र ब्रुवते गावस्त्वृपभभाविण ।

आजाविक तु गान्धार क्रौञ्चः क्रणति मध्यमम् ॥

२५

पुष्पसाधारणे काले विकः कृजनि पञ्चमम् ।

धैवत हेषते बाजी निपाद वृ हते गजः ॥

नासाकण्ठमुरस्तालुजङ्घादन्ताश्च सप्तशन् ।

पञ्चम्य सजायते यस्मान्तस्मात्पद्गत इति स्मृत ॥”

१ नवप्रसूता गो धेनु त्रिशद्बो हस्तिशावक कलमस्तयो शट्, स्फीत्कृतमूच्यते इति
शब्दार्थः । टीकास्वारम्यनु गोवत्सशब्द स्फीत्कृतमित्येव प्रतिभाविति । अत्र कोशान्तरप्रमाणाभावात्त्रवि-
प्रयोगादर्थान्तरं मूलशब्दार्थाऽनुसरणमेव शरणम् । २ तुला तुलया वा कोट्यर्थिति । कुट प्रतापने चुरादि ।
अच इ । यदा तुलाकार कोटिरघ्रमस्येति रामाश्रमः । ३ तुवन तूयते वा न् । एतत्वने । किन् ।
तुवि पुरति नूपुरम् । पुर अग्नगमने । इगुपवेति क । ४ शब्दमेदप्रसङ्गाद् ग्रन्थान्तरोक्तमन्यशब्दसंबद्ध
स्वरमेद च ह । ५ अम० को० १।७।१ । ६ ‘पड्ज’ इत्यार्थ्य “इति सृत” “हन्तन्त तथा च
भरतनाटके” इत्येव टीकायामुपन्यस्तः पाठः “निपाद॑पभगान्वार”—इति द्विग्रस्वामिभाष्येऽमरेऽविकल
उपलभ्यते ।

प्रतीतं संस्तुतं लब्धं दृष्टं परिचितं स्मृतम् ।

५८ स्मृते । प्रतीयते प्रतीतम् । षुड् स्तुतौ । षुड् । “धात्वादेषः सः ॥” स्तु सम्पूर्वं । सम्यक्-
प्रकारेण स्तूयते स्म स्तुतम् । लभ्यते स्म लब्धम् । परिचिते स्म परिचितम् । स्मर्यते स्म स्मृतम् ।

संस्थितं दशमीस्थं च परासुं च मृतं विदुः ॥ १०८ ॥

५ चत्वारो मृते । सतिष्ठते स्म संस्थितः । सम्पूर्वकस्तिष्ठति । दशमीं तिष्ठतीति दश-
मोस्थ । तथा च—

“प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनि श्वासश्वातुर्ये भजते उवरम् ॥
पञ्चमे दद्यते गात्रं षष्ठे भुक्तं न रोचते ।
सप्तमे स्यान्महामूर्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे ॥
नवमे प्राणसन्देहो दशमे मुच्यते उसुभिः ।
एतेवर्गं समाक्रान्तो जीवस्तत्त्वं न पश्यति ॥”

दशाना पूरणी दशमी तत्र तिष्ठतीति वा दशमीस्थः । परागता असबोऽस्य परासु । प्रियते रम
मृतं विदु कथयन्ति ।

१५ खेदो द्वेषोऽप्यमर्षस्च रुट्कोपकोधमन्यव ।

१५ सप्त क्रोधे । खिद परिवाते । तुदादौ खिन्दति । दैव्ये रुधादिपाठात् खिन्ते (तत खेदन)
खेदः । भावे घन् प्रतय । दिपु अग्रीतौ अदादौ । द्रेपण द्वेषः । मृप तितिक्षायाम । चुरादौ । शक
मृप ज्ञायाम । दिवादौ विभासित । मृतु सहने वार्षा परस्मैपदी । अमर्षसम् अमर्षः । कुप कुप रुप रोप ।
गोपण रुट् । सम्पदादित्वाद्युते विष्प । कोणन कोप । कोधन कोध । मन जाने । मन्यते^३ मन्युः ।
“^३ जनिमनिदसिम्यो यु ” । एव्यो युग्रन्ययो भवति । उगादित्वाद्योरनादेशो न भवति ।

२० २० हर्षः प्रमोदः प्रमदो मुक्तोपानन्दमुत्सवः ॥ १०६ ॥

२० सप्त हर्षः । हर्षण हर्ष । प्रहर्षश्च । प्रमोदन प्रमोद । मदी हर्षे । प्रमदन प्रमदः । “मदे:
प्रसमोहर्षें” प्रसमोहर्षपदयोर्मदिरल् भवति हर्षार्थ । मोदन मुद् दान्त ज्ञियाम । तुर तुर्णै । तोषण
तोष । आनन्दम् आनन्दः । पु मि । तुनदि समुद्धा । उत्सवम् उत्सव । प्रीति । उत्कर्ष । उद्दव ।

२५ कृपाऽनुकम्पानुकोशोऽहन्तोक्तिः करुणा दया ।

२५ पठ दयायान् । क्रप कृपायाम । क्रपण कृपा । “पानुबन्धमिदादिम्योऽद्” इत्यद् । “क्रपे
सम्प्रसारणम्” इति परमूत्रेणाद् सम्प्रसारण च । स्वमन्ते^४ क्रप कृपायाम् इति जापकात् सम्प्रसारणम् ।
“स्त्रियामादा ॥” अनुकम्पनमनुकम्पा । अनुकोशन्त्यनेन अनुकोश । पुसि । न हन्तोक्ति । अहन्तोक्ति ।
करोति विपाद चित्तं किरति वा करुणा । उणादौ डुक्न् करणं । क्रियते करुणा । “अङ्गृहत्वृद्धमिदार्य-

^१ द्वेषपर्याये खेदपाठात्रितनीय । खेदपर्यायस्तु “शोक शुक् शोचन खेद.” इति
अभिं चिं । क्रोधपर्यायस्तु—“कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिघा रुट्कुबौ स्त्रियौ” इत्यमर. । २ मन्यते त्या-
ज्यत्वेनेति शेष । ३ का० ३० सू० ४।१। ४ का० सू० ४।५।४। ५ उद्दवशब्दस्योत्सवार्थे प्रमाणम्—
‘उद्दवो यादवमिद महे च क्रतुपावके’ । इति मेदिं को० वा० व० ३२ श्लो० । ६ का० सू०
४।५।८। ७ “क्रपेः सम्प्रसारण च” पा०गण सू० ३।३।१०।४। ८ कातन्त्रमतमत्र स्वमतम् । पाणिन्यादि-
मूत्र परमतम् । ९ का० ३० सू० २।६।०।

जिन्ध उनः” एव्य उनः प्रत्ययो भवति । दयन दया । दय दानगतिहसादानेषु । भिदाद्यृ ।

शेषुषी धिष्ठीणा प्रज्ञा मनीषा धीस्तथाऽशयः ॥ ११० ॥

पृ॒ बुद्धौ । शे इत्यव्ययम् । मोह । न मुण्णानि शमयति इति शेषुषो । धृष्णोत्यनया
धिष्ठीणा॑ । प्रज्ञान प्रज्ञा॑ । मनुते जानात्यन्या मनीषा । मनम ईपा मनीपा वा । “हल॑ लाङूलयो-
रीपे मनसश्च” इत्यनेन अन्त्यवादेलोप । अत्र मलोपश्च । चकाराधिकारालोकोपचारादा सलोप । ५
स्मृ॒ धै चिन्तायाम् । ध्यान धी॑ । सम्पदादित्वाद्वावं क्रिप्॑ । ‘यायो सम्प्रसारणम्’ अनेनैव सम्प्रसारण
दीघेत्वं च । १० सि । “रेकमोर्धिसर्जनीय” । याशेने तिष्ठति सर्वमत्राशयः । तथा-प्रेक्षा । प्रतिभा ।
युद्धः । मति । मेघा । सख्या । सवित्तिः । उग्लञ्चित् ।

प्राज्ञमेधाविनौ विद्वानभिरूपो विचक्षणः ।

पण्डितः सूरिगच्छार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृत ॥ १११ ॥

१०

दश खिटुपि । प्रजानात्ति प्रज्ञ । प्रजादित्वादण॑ प्राज्ञ । मेधात्यस्य मेधावी । माया-
मेधावत्रो विन॑ वाविकागत्यर्थे एवते विभाष्या विभाषिता । शेषेष्यो मनुष्यिते । मतिमान् । बुद्धिमान् ।
विद जाने । विद । वेत्ति जानानीति विद्वान् । वर्तमाने शा॑ । शत्रु॑ । ‘‘अनिव॑’ अदादि॑’ । ‘‘नेते
३ शतुर्वसु॑’’ । शत्रु॑ स्थाने वसु । नदादेशात्तदद्वचन्ति इति वचनात् वसो शत्रु॑वद्वावेन सर्वधातु-
त्वात् ‘‘आत्माण॑’ वशेसैकस्वरातामिद्वस्मै अनेनैकस्वरत्वात्याम् इद॑ न भवति । विद्वन् सज्जातम् । १५
“सि । “सान्तमहतोनोपधाया” दीर्घ॑ । विदुपोऽपि । अभिगत रूप येनाभिरूपः । रूप विद्या ।

‘‘कोकिलाना स्वरो रूप नारीरूप पतिव्रता ।

विद्या रूप कुरुपाणां क्षमा रूप तपस्विनाम् ।”

चक्र धातुर्बिंपूर्वः । विविध चण्टे विचक्षणः । नन्दादेशु॑ । योग्यन । १२२० गत्वम् ।
विचक्षणो विद्वान् इत्यनेन विचक्षण इति निपात । निपातस्य फल ख्यादशो न भवति । पण्डा बुद्धि । २०
पण्डा सज्जाताऽस्येति परिणित । ‘‘तारकितादिर्शनात्सजातेऽर्थे इतच्च॑’’ “द्वर्णाविर्ण॑” आकार-
लोपः । सि । रेक । पृ॒ प्राणिणर्मविमोचने । सत्ते बुद्धि सूरि॑ । “‘भूत्वदिष्य कि॑’ एव्य क्रिप्रय-
यो भवति । को यण्वदर्थ॑ । ३ आचर्यते आचार्य॑ । “चरेरादि चागुरै॑” । तथा चोक्स॑— इन्द्र-
नन्दिनीतिशास्त्रे-

“पञ्चाचाररतो नित्य मूलाचारविद्वर्णाः ।

चतुर्वर्णस्य सङ्घस्य य स आचार्य इष्यते॑” ॥

२५

१ शेते इति शेषोऽह॑ । विच्॑ । नमुण्णातीति, मूलिभुजादित्वात्क । गारादिदाय॑ ।
शमे क्षमा॑ एत्वाऽयासलोपे उगित्रश्चेति डीपि शशामेति शेषुषीति क्षी॑ स्था॑ । २ ‘धिष्य शब्दे॑’ ।
देवेशीति । क्षी॑ स्था॑ । ३ प्रज्ञायनेऽनयेत्यन्यत्र । ४ का॑ रू॑ पूर्वो॑ २८ स० । ५ न्यायतेऽनया
धीरित्यन्यत्र । ६ “सम्पदादिष्य क्रिप्॑” का॑ रू॑ उ० ८०५ स० । का॑ रू॑ मा॑ ६५८ स० ।
८ का॑ रू॑ २१३१६३ । ८ का॑ स० गदा॑१५४ अत्र तुर्गवृनि॑ । १० ‘वर्तमाने शनृदानशाव-
प्रथमैकाधिकरणामन्वितयो॑’ । का॑ स० ४१४२ । ११ “अनिविकरण, कर्तरि॑” का॑ स० ३२१-
३२ । १२ “अदादेलु॑ग्विकरणस्य” का॑ स० ३४१२ । १३ ‘शतुर्वसु॑’ । का॑ स० ४१४४ ।
१४ का॑ स० ४१६७६ । १५ का॑ स० २१२७८ । १६ का॑ स० २१८४८ । १७ का॑ रू॑ पू॑
५०८ । १८ का॑ स० २१६४४ । १९ का॑ उ० ३५३ । २० का॑ स० ४१२१४ । २१ नीतिसा॑
१५ रू॑० ।

प्रशत्ता वागस्त्वम् वाग्मी । न्याये विचारे नियुक्तो नैयायिकः । धीर । लब्धवर्ण । विपश्चित् । ब्रुद्ध । आमरूपः । सन् । मनीषी । ज्ञ । दीपत्र । कोणिद । प्रब्रुद्ध । सुधीः । कृती । इष्टि^१ । कवि । व्यक्तः । विशारदः । सख्यावान् । मतिमान् ।

पारिपद्यो बुध सम्यः सदः संसत्सभोचितः ।

५ पट् समापुरुषे । परिपदि सभाया भव पारिपद्य । यण् । बुध अवगमने । बोधतीति बुधः । सभाया सातु सम्य । कुशलो योग्यो हितश्च सातुरुच्यते । सदसि उचितो योग्य सदउचित । ससदुचितः । सभोचितः । समापद् । समाप्तार । सामाजिक ।

परिपत्सभाऽस्थानपती—

त्रय सभायाम् । परिपीदन्त्वस्या परिपद् । सह भान्त्यस्या सभा । आसमन्तात्स्थीयते^२
१० मिन् आस्थानपती ।

(अधिपति राजा) पति —आस्थान सभा इत्यादिपर्यायनामतोऽधिपति पतिरित्यादिपर्याय शब्देषु सत्यं गजो नामानि भवन्ति । परिषदधिपति । परिपत्पति । सभाधिपति । सभापति । आस्था-नाधिपति । आस्थानपति ।

राजमूर्यो नृपक्रतुः ॥ ११२ ॥

१५ मण्डलेश्वरप्रजाया (प्रयाजे) ढाँ । पुन् अभिप्रवे । पु । “धात्वा०” स । राजन्पूर्व राजा सोतव्यो राजा सूत्ये वा यस्मिन्निति राजमूर्य । “४राजमूर्यच्च” । व्यण्ग्ययान्तो निपात । वृपाणा गजा कतु नृपक्रतु । तथा च ‘स्मृतो—

“गोसवे मुरभि हन्याद्राजमूर्ये तु भूमुजम् ।
अश्वमेवे हय हन्यात् पौण्डरीके च दन्तिनम् ॥”

विष्ट्रं मल्लिकार्णीष्ठामासन्दीमासन विन्दु ।

२० पडासने । न्तून् आच्छादने । विपूर्व । विस्तरण विष्ट्र, । ‘त्वर॒ बृद्धग्मिश्वामल् ।’ अल् । नाम्यन्तगुण । ‘वाऽनुसानः’ । सज्जाया सम्य पृथम । “७त्वर्गस्य पृथ्वर्गाद्वर्ग ।” मल्ल्यते धार्यते मल्लिका । पेटीति षीठम् । ‘पृष्ठोदरादिन्वाहीर्व । आ समन्नात्सीदति तिष्ठत्यस्यामासन्दी’ । आस्थते

१ ऋत्र प्रमाणम् अभिं चिं ३५० । ‘विट्वान् सुची’ कविविचक्षणलब्धवर्ण जः प्रामरूप-कृतिकृष्यभिरुपधीग । मेधाविकोविदविशारदसूरिदोपज्ञा प्राजन्णितमनीष्विव्रवुद्धा ॥ व्यनो विपश्चित्सदूर्यावान् सन्” इति । २ “अधिपति राजा” इति प्रतीकमाश्रित्य व्याख्यादर्शनादय मूल-पत्राश इति । न भ्रमितव्यम् । पूर्वापर्यादयोर्मत्ये तसमावेशामःमवात् पदक्षरवेन स्वतन्त्रपादत्वा भावात् अत्र राजवर्णनस्याप्रसगत्वाच्च । एव च समाप्रसन्नैन तदधिपते राजव्यपदेशार्थ-टीकाकर्तुविशेषवच्चनमित्यत्र दुक्त नाति । ३ का० स० ३१०२८८ ॥ ४ का० स० ४२०४१ ॥ ५ ‘स्मृतो’ इत्युक्तम् । ग्रमविकल श्लोको यशस्तिलक आ० ७ का० ३० श्लो० ३ उपलम्यते । ६ का० स० ४५४४१ । ७ सा० स० ३८०४४४ । ८ शा० स० २२०१७२० । ९ ‘आस उपवेशने’ । अब्दायः पा० उ० स० ४१६८८ । इति ३३८८। अभिं चिं ।

उपविश्यते उस्मिन्नासनम् । “^१कृत्ययुटोऽन्यत्रापि च” युट । विदुः कथयन्ति ।

विष्टपं भुवनं लोको जगत्-

चन्वारो जगति । ^२विष्टपत्यत्र विष्टपम् । भूतानि भवत्यस्माद्गुब्बनम् । लोक्यने लोक । गच्छतीत्येवशील जगत् । “^३युतिगमोर्द्वै च” क्षिप् । गमो द्विर्वचनम् । अन्यासमकारलोप । ‘ कवर्गस्य चवर्गः’ गस्य ज । ज गम् जातम् । ^४पञ्चमो । दीर्घ । ‘^५यममनतनगमा वौ’ पञ्चमलोप । ५ आन् अत् । “^६धातांस्तोऽन्तं पानुवन्वे” तोऽन्तं । वेलाप । सि । नपु मकम् ।

तस्य पतिर्जिनः ॥ ११३ ॥

तस्य भुवनस्य पतिर्जिन कथंते । अनेकभवगद्वयसनप्रापणहृत्न् कर्मारातीन् जयतीति जिन । “^७इण्णुनशजित्तुषिष्यो नक्” । विष्टपति । लोकपतिः । जगतपति । इन्यादीनि जिनस्य पर्याय-नामानिशातव्यानि ।

१८

वर्षीयान् वृषभो ज्यायान् पुरुषाद्य प्रजापतिः ।

ऐश्वारुः (कः) काश्यपो ब्रह्मा गौतमो नाभिजोऽग्रजः ॥ ११४ ॥

द्वाटश वृपमे । अतिशयेन उद्दो वर्षीयान् । ^१प्रियमिथरम्भिरोहबद्गुरुवृद्धत्प्रदीर्घ-वृद्धारकाराणा प्रस्तुकवर्वहिगर्वित्रिवृद्धुषिवृद्धा ।” । वृपण श्रीहासलदणोपत्थमेण भातीति ^२वृषभ । “^३कृषिवृपिम्या यष्वत्” । आन्यासमः प्रत्ययो भवति स च यष्वत् । अयमेषा मध्ये प्रकृष्टो ^{१५} वृद्धः प्रशार्यो वा ज्यायान् । “वृद्धम्य ^४ च ज्य,” वृद्धशब्दम्य ज्यादेशो भवति । पूर्व पालनपूरणयो । पृष्णाति पालयनोति पुरु । “^५इपिवृषिभितिगवित्तुदिवृप्य कुः” एवः कुपत्ययो भवति । अस्मिन्नहनि श्रद्धा^६ । इदमोऽद्वावो यश्च परविधि “सत्योऽद्या^७ निपात्यन्तं इति वचनात् । (आदो भव आद्य) प्रजानाम् दद्वररेण्ड्रचक्रवर्त्यर्दीना पति स्वामी प्रजापति । इपु इन्द्रायाम् । वाङ्ग्यते लोकै ऐश्वराकः^८ । तथा चापि महापुराणे—

२०

“अङ्गुनाश तदेक्ष्यूर्णा रससंग्रहणे नृणाम् ।

इद्वाकुरित्यभूद्वयो जगतामभिसम्मतः ॥”

काश्य ज्ञियतेजः पातीति काश्यपः । तथा च महापुराणे—

“काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनान् ।”

त्रुहीतीति ब्रह्मा ।

२५

१ का० सू० ४।५।१३। २ “ष्टप स्तप प्रतिवाने” अम० को० क्षी० स्वा० भाष्य एवोपलभ्यते न तु पाणिनिधानुपाडे । ३ विशन्त्यत्रेति रामाश्रमः । विशन्त्यस्मिन् जीवाजीवा इति हेमचन्द्र । ४ का० सू० ४।४।४८। ५ का० सू० ३।३।१३। ६ का० सू० ४।१।५५। ७ का० मू० ४।१।६९।८ का० सू० ४।१।२०। ८ का० सू० ४।१।३४। वेलोगोऽपुकस्य इति पूर्णं सत्रम् । ९० का० उ० सू० २।५।१। ११ पा० सू० ६।४।१५। १२ वृपेण भातीति विग्रहे आनोऽनुपर्गो क । भा दासौ । वर्षति धर्ममृतमिति विग्रहे “अङ्गिवृषिम्या यष्वत्” इत्यभ । “वृत्तु सेचने” । १३ का० उ० सू० ३।१३। १४ हेऽश० ७।४।५।३ १५ का० उ० सू० १।१०। १६ अत्र श्रावशब्द न त्वयशब्द । तेनादो भव आद्य इति युक्तः प्रतिभाति । १७ का० सू० २।६।३। १८ इक्षुणाम् आ (रमापर्वणम्) अङ्गीति इद्वाकु । तत्र प्रमाणमाह—‘अङ्गुनाच्चेति’ सदृशत ।

अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

“आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तों ताते च भरतराजस्य ।

ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विश्वते ब्रह्मा ॥”

अत परो ब्रह्मा नान्ति । गातमो गातोऽवतारद् गौतमः । आवं महापुराणे—

“गौः स्वगः स प्रकृष्टात्मा गोतमोऽभिमतः सताम् ।

स तस्मादागतो देवो गौतमश्रुतिमन्वभूत् ॥”

नाभेन्नातो नाभिज्ञः । अवै जातोऽग्रजः । अदृष्टव्यात् ।

मन्मनिर्महात्मवारो महावीरोऽन्त्यकाश्यपः ।

नाथान्वयो वर्धमानो यतीर्थमिह साम्प्रतम् ॥ ११५ ॥

सती समीचीना मतिर्थ्य स सन्मति । महापुराणे—

१० “तत्सन्देहे गते ताभ्या चरणाभ्या च भक्तिः ।

अस्ताविं सन्मनिर्वचो भावीति समुदाहृत ॥”

(मध्यने पूज्यने इति महति) । महती पूजा यस्य स महति । विशिष्टम् इन्द्रान्यमन्माविनीम् इम् अन्तरद्वा समवसरणानन्तचतुष्यलक्षणा लक्ष्मी राखादते इति वीर । वीर इति नाम कर्माडजानम् ? जन्माभिषेके चालवृशरीरदर्शनादाशङ्कितवृत्तेरिन्द्रस्य सामर्यख्यापनायै पादाङ्गुणेन मेरुसचालनांदन्ते रण वीरनाम कृतम् । महावीरासौ वीर महावीरः । तथा च बृहत्प्रतिक्रमणभाष्ये—

१५ “कुमारकाले आमलकीकीद्वाया कीड़तः सङ्कटमदेवेन विमानस्थलनाङ्गवत्पो (ज्ञो) दनार्थ महाफटाटोपोपेत भयानक सर्परूप विकृत्य वृक्षो वेष्टिनः । भगवौन्तस्मान्मस्तकादिपादन्यास कृत्वा वृक्षादुर्क्षीण । ततस्तेन महावीर इति नाम कृतम् ।” अन्त्य काश्य नेत्र पातीति अन्त्यकाश्यप । तत परस्तीर्थकरा नास्ति । नायोऽन्वयो यस्य स नाथान्वय । तथा च —

२० “चत्वारः पुरुषंशजा जिनवृपा धर्मादयस्ते पुन-

नेपिश्रीमुनिसुवतां हरिकुले वीरोऽुथ नाथान्वये ॥

शेषाः सप्रदशाधिका जिनवरा इक्ष्वाकुवशोद्धवा

प्रोद्यन्मोहविनाशनैरुतिपुणाः सङ्घस्य सन्तु श्रिये ॥”

अव समन्ताद् पृष्ठ वर्मातिशयप्राप्न मान केवलजान यन्यासौ वर्धमानः ।

२५ वर्षिष्ठागुरिलोपमवाग्योरुपसर्गयोः ।

आप चेंव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥’

इत्यवश्वदस्याकारलोप । तथा ऋषित्र प्रयक्षवेदी —भगवतो हि गर्भवितारादो विनेन्द्रादिविनिर्मिता विशिष्टा पूजा रत्नवृष्टि स्वयं च अद्विद्वद्यादिक दृष्ट्या वर्वमान इति नाम कृतम् । इह अस्मिन् पञ्चमकाले यस्य तीर्थं यनीर्थम् साम्प्रतम् अधुना वर्तते ।

३० सर्वज्ञो वीतरागोऽहन् केवली धर्मचक्रभृत ।

तीर्थङ्करस्तीर्थकरस्तीर्थकृदिव्यवाक्पतिः ॥ ११६ ॥

नव जिनेन्द्रे । ज्ञा अववोधने । जा । सर्वज्ञः । सर्व जानाति वेतोति सर्वज्ञ । “आतोऽनुपसर्गात्क” अप्रत्यय । “के॒ यण्वद्योक्तवर्जम्” इति यण्वद्यमावात् आलोपः । विशिष्टा ई तर्ता प्रति इतः प्रातोः । अरिहननाऽग्रजोहनन (स्या) मावाच परिप्राप्नानन्तचतुष्यस्वरूप सन् इन्द्रनिर्मिता-

मतिशयवर्तीं पूजामर्हतोति आर्हन् । षष्ठियजमनन्तजानादिचतुष्य विभूत्यात् यस्यंति वाऽर्हन् । त्रिकाल
केवलज्ञानमस्त्यस्य केवली । जिनभर्मचक्र महारायुक्त तीर्थकृदग्ने निराधारतया विद्वान्काले गगने गच्छत्
सर्वजीवदयागूचक रन्नमयमायुधविशेष विभर्ति तद्वाऽनुभवतोति धर्मचक्रभृत् । तीथ द्वादशानुशास्त्र करोतीता
तीर्थङ्करः । तीर्थ करोतीति तीर्थकृत । दिव्यवाचार्यतः दिव्यवाक्यपूर्ति । तथा चोकम् —

‘यत्सर्वात्महित न वणसप्तित न स्पन्दितापृद्य

५

ना बाढ्याकलित न दोपमल्लिन न वासरुद्धकमम् ।

शान्तामर्षविष सम पशुगणेः सकर्णित कर्णिभि-

स्त्रद्व सर्वविदि प्रनष्टविपदः पायादपूर्व वच ॥”

चेलं निवसनं वामश्रीरमम्बरमंशुकम् ।

वड् वम्ब्र । चिल्यते वस्यनेन चेलं चैल च । निवसत्यनेन निपस्न, विवसन, वन्न च । १०
वस्यते उनेनाहू वास्य । सान्तम । चिनोति उपार्जयति सारता चीरम्, चीवर च । अम्बने गच्छति शोभा-
मनेन अम्बरम् । उम्बम् । अग्न्तुकार्यति अशुकम् । क्लोवे । कर्त्तम् । आच्छादनम् । वस्त्रम् । मिचयः ।
प८, पटन, पटी । पोत । प्रावर । प्रावार । सव्यान च ।

वस्त्राद्यन्तः दिगायादिसञ्जितो वृष्मेश्वरः ।

वस्त्राद्य वस्त्रायाया अन्ते दिगादयो दिक्यर्थाया आदौ यस्य तत्सङ्गितो वृष्मेश्वर । वस्त्रादिक् १५
नाम अन्ते दिगादिक नाम आदौ यथा — दिक्चेल । दिगासा । दिगम्बर । दिगशुकः ।
दिगवस्त्र । काष्ठचेल । काष्ठनिवसन । काष्ठावासा । काष्ठाचीर । काष्ठाम्बर । काष्ठाशुक ।
ककुचेल । ककुचिवसन । ककुचासा । ककुचीर । ककुवम्बर । ककुशुकः । ककुवस्त्र । आशाचेल ।
आशानिवसन । आशावासा । आशाचीर । आशाम्बर । आशाशुक । आशावस्त्र । दक्षकन्याचेल ।
दक्षकन्यावासा । दक्षकन्याचीर । दक्षकन्याम्बर । दक्षकन्याशुकः । दक्षकन्यावस्त्र । हरिज्ञि- २०
वसन । हर्दिसा । हरिचोर । हरिम्बर । हरिशुक । हरिद्रव । इत्यादीनि वृष्मेश्वरनामानि
शातव्यानि ।

कुङ्कुमं रुधिर रक्तम्—

तथः कुङ्कुमे । काष्ठने जनै कुङ्कुमम्^१ । रुधिर आवरणो । मण्डिरुधिरम् । “तिमिरुधि-
मन्दिरुचिशुषिष्य किर” । रज्यतेऽनेन रक्तम्^२ । २५

कस्तूरी मृगनामिजम् ॥ ११७ ॥

द्वौ मृगमंड । के स्त्रयते कस्तूरी^३ । मृगनामेज्जातम् मृगनामिजम् । मृगनामीज च ।

कर्पूरं घनमारं च हिमं सेवेत पुण्यवान् ।

कृपू सामर्थ्य । कल्पते कर्पूर । “कृपेष्टरप्रत्ययः ।” “नाम्यन्तगुणः ।” “कृपे” गोल । कवन,
१ कुवयते आदीयते कुड्कुमम् । कुक्र यादाने । “कुद्वुकोर्नुम च” भो० उ० दृति उमक
प्रत्ययो नुमागमश्च । इति गमाश्रम । कुक्र कातीति क्षीरस्वामी । २ का० उ० श०२३। २ तथा चोकम-
मेदिन्याम् ता० व० श्लो० ४६ । “रन्तोऽनुरक्ते नील्यादि रज्जिते लोहिते त्रिपु । कलीबन्तु कुड्कुमे ताम्रे
प्राचोनामलकेऽसूजि” । इति । ४ के शिरसि स्त्रयते प्रशस्तधायंत्वेन मन्यते इन्यर्थ । विकसति सोगन्यम्
स्या इति त्री० स्वा० । “कम गतौ” कसति गच्छति गधोऽन्या इति गमाश्रम । “अवर्जिपिङ्गादिभ्य उरो-
लचौ” । पा० उ० ४१०। इत्यमर । पृष्ठोदरादित्वातुट्, गोरादित्वान्दीप् च । ५ “वर्जिप्रिमिपिङ्गा-
दिभ्य उरोलौ” इति का० उ० ३६०। ६ नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोर्गुण” का० स० ३५१।
७ का० स० ३६१।

सन्यम् । उणादयो हि बहुलम् तेन-

“१ क्चित्प्रवृत्तिं क्चित्प्रवृत्तिं क्चिद्द्विभाषा क्चिदन्यदेव ।

विद्विर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विध बाहुलक वदन्ति ॥”

वनस्येव सारोऽस्य घनसारः । हि गता । हिनोतीति हिमप् । “३ इन्द्रियुषित्याधूहिम्यो

५ मक् । चन्द्रसज्ज । सिताभ्रः । हिमवालुक ।

समालम्भोऽङ्गरागश्च प्रसाधनविलेपनम् ॥ ११८ ॥

चत्वारे रागे । सम्यक् प्रबारेणालयते ४ समालम्भ । अङ्गस्य रागोऽङ्गरागः । प्रकर्षणा
रा यते मण्डने प्रसाधनम् । विलियने विलेपनम् ।

भूषणाभग्णं रुच्यम्-

१० त्रय आभरणे । तसि नृप अलङ्कारे । नृपते मण्डनेन भूषणम् । आ समत्वाद् भ्रयते शोभा
धार्यते उनेन आभरणम् । रोचते रुच्यम् । अलङ्कार । परिकार । मण्डनन ।

माल्य मालागुणघञ्जः ।

चत्वार उपमालायान । मालैव माल्यम् । चातुर्वर्णदिव्यात्ययण् । माल्यते नार्यते माला ।
अथवा मा लान्ति पुष्पाण्यत्र माला । क्लियान । गुणतीति गुणः । “नाम्युपत्रीकृगृजा” क । सज्जते
१५ स्त्रक् । ‘ऋत्विग्-दृश्यक्षमिति’ साधु ।

मेखला रमना काञ्ची ।

त्रय काञ्च्याम । मेहनय एव तन्य मा लान्ति निर्णिः । मिर्णोति प्रक्षिपति कामिचित्तमिति
वा मेखला^{१०} । रसते शब्द कोतीति रसना^{११} । रस कान्तो (शब्दे) सात्रो तुय वानु । श्रोणी शोभा
कचति (काञ्चते)^{१२} बन्नातोति कविः । क्लियामी । काञ्चो । तनको । कलाप । कटिग्रन्तम् । मारसनम् ।
२० शिज्जिनी^{१३} च ।

हेमपर्यायसूत्रकम् ॥ ११९ ॥

हेमशब्दात्सूत्रशब्दे प्रयुज्यमाने मेखलापर्यायनामानि भवन्ति । हेमसूत्रम् । अष्टपदसूत्रम् ।
स्वरूपसूत्रम् । कनसूत्रम् । अञ्जनसूत्रम् । काञ्जनसूत्रम् । हिरण्यसूत्रम् । जातरूपसूत्रम् । शातकुम्भसूत्रम् ।
हाटकसूत्रम् । कलधोतसूत्रम् । तपनीयसूत्रम् । कार्तव्यरसूत्रम् । इत्यादीनि जातव्यानि ।

श्रोणीविम्बं कटीसूत्रं मानसूत्रमिवाहितम् ।

त्रय पट्टुसूत्रे । श्रोणा कट्या विम्ब प्रच्छादक श्रोणोविम्बम् । कटी सूत्रयति वेष्यतीति

१ शा०४० १।३।१४१। अन कारिकारूपेण पठित । २ हिनोति गन्धुतीत्यर्थ । कार्पूरस्याशूल्प-
तनस्वभावात् । हन्ति श्रोणाट्यमिति रामाश्रम । ३ का० उ० १५५। ४ आलन्यते विलियने इत्यर्थ ।
५ का०४० ४।२।५१। ६ का०४० ४।३।७३। ७ मन्त्र गति लातीति पृष्ठोदादित्वानमेखलेति रामाश्रमः ।
मुहु स्वलतीति नैषचन्द । मीयते प्रक्षिप्तयने इति नी०म्बा० । ‘मित्र न्वल-चैच्च’ २।३।१७। सर० क० ।
८ अशुते कटिम् अशनाति कामिचित्त वेति गमाश्रमहमचन्द्रौ । ‘ग्रोरश्च’ इति यूशादेशश्च । ९, ‘काचि
दीसिवन्वनयो’ । ‘नर्वधातुप्य इन’ । १० शिज्जिनी नूपुरम् । मेखलापर्यायं तत्पाठोऽयुक्तः । तदुक्तम्—
‘नपुरन्तु तुलाकोटि’ पादत कटकाङ्गदे । मङ्गीर हसक शिज्जिनी—अभिं चि० ३।३३०।

कटीसूत्रम् । मान प्रमाणीभूत सूत्रयतीति मानसूत्रम् । केचिद् रागसूत्र पठन्ति पट्टसूत्र च ।

मदिगं मद्यमेरेयं शीघ्रु कादम्बरीमिगम् ॥ १२० ॥

प्रमन्ना वारुणी हालां मधुवारां सुरां विदुः ।

एकादश मध्ये । मात्रयनया मदिरा । मधिष्ठा च । मयतेनेन मद्यम् । ‘यमिकदिगदा त्वनुपसर्गे’ । इगाया ग्रामसीमायाम सामु पेरेयम् । शेरतेनेन शीघ्रुः । ‘३ शीटो तुक्’ । शीटो(जो)गित्येकं ५ पठितत्वात् शीघ्रपत्रेने^३ क इति व्याख्यत । अथवा पीतेऽत्र जनः शेते शीघ्रुः । उभयम् । तालव्यः । कुत्सित नीलमध्यर यस्य स कदम्बरो बलदेवं । तस्येय प्रिया कादम्बरी । कुत्सितमध्यते यात्यनया वा कादम्बरी । एति परिग्राम्यत्यनया इता । आत्मा प्रसोदयनया प्रसन्ना । आनन्द । वर्मणाभ्यापत्य वारुणी । जहाति लज्जामनया हाला । स्त्रियाम् । ममु वारयतीति मधुवारां । मुवति एते भव सुरा । तथा द्विसन्धानभाष्ये—“अतिप्रलापभावेन समुद्रमथनान्निष्कासिता सुर सुरा ।” १०

“लक्ष्मीकोस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्वन्द्रमा

गाव्र कामदुष्टाः सुरेश्वरगजो रम्भादिईवाङ्नना ॥

अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनु शङ्खो विष चाम्बुवे:

रत्नानीनि चतुर्दश प्रतिदिन कुर्वन्तु ते मङ्गरम् ॥

विदु वर्थयन्ति । ममु । आम्बव । परिगुता । स्वादुगमा । गुण्डा । गन्धोत्पामा । माधवक । १५ माधव । कल्य कल्या । कल्य, कल्या । परिश्रुत । तान्त्र नित्रयाम । तालव्यदन्त्य । ऐहारहृण । कापि-शायनम् । नुदीकन । मात्वीकन ।

शुण्डामवः—

मयविशेषा द्वा । मुन्व(न)न्ति तृपि गच्छन्त्यनया शुभ्य (न्य) ने पातुमनिगम्यते वा शुण्डा” । व्यौद्धो । शुण्ड । आमते जनयति मदम् आमव । पुनिः । २०

तदिधायी शौण्डो गद्येत मद्यपः ॥ १२१ ॥

द्वा कल्यपालके । शुण्डाया मध्ये भव शौण्ड । मय पित्रि पाययतीति वा मद्यपः ।

सक्तोऽशद्यृतपनेषु विचित्रा शब्दपद्धतिः ।

त्रयो मवासने । अक्षेषु वृत्तेषु सक्त अक्षसन्त । व्रतसन्त । पानेषु सक्त पानसन्त । विचित्रा नाना प्रकारा शब्दाना पद्धति अणिः शब्दपञ्चतिर्वर्तते । अक्षशोण्ड । अक्षधूर्तं । अदक्षितव । “४सप्तमा २५ शोण्डै । व्याल, अधि, पटु, पण्डित कुशल, चपल, निपुण, स्वेत्यादि शाण्डादिराकृतिगण ।

मर्पिहेयङ्गवीनाज्यं—

रियः सर्पिषि । सत धातव सर्पन्त्यनेन सान्त सपः । कलीवे । ‘‘अर्चिणुचिरचिह्नसुपि-ल्लादिल्लिंद्य इसि’’ । सूलू गतो । हो गोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनम् । दद हैयङ्गवीन व्यतनदिन-गोदोहे मज्जातम् । उक्त च—

“ तत्तु हैयङ्गवीन यद्दु होगोदोहोद्व घृतम् ।” ३०

१ का० स० ८।२।१।३।२ का० उ० स० ८।३।३।३ सीयुरिति दन्त्योऽुयन्यत्र पाठः ।
४ “शुण्डा हाला हारहूर प्रसन्ना वारुणी सुरा ।” अभिं चिं ३।५।६।७।५ शुण्डाशब्दो मर्दिरात्राची पानमदस्थानमपि । तदुक्तम—“शुण्डा हाला हारहूरम्” अभिं चिं ३।५।६।७। “शुण्डा पानमदस्थानम्” अभिं चिं ३।५।७।० ६ शुण्डाया मदिरापानागारे भव इति रामाश्रम । “शुण्डा मदिरा उस्त्यस्येति ज्यो त्वनादित्वादण्” इति हैमचन्द्र । ७ पा०स० ८।१।४।० ८ का०उ०स० ८।१।४।० ९ अम० को० ८।१।५।२।

तथा चाशाभरमहामिषके—

“आयु पीयूषकुण्डे रस्तिमणिखनिभि शेषुशीबलिलकन्दे-
मेधासस्याम्बुद्धाहैर्वरफलतरुभिर्नेत्ररत्नाधिदेवैः ।

निष्टुतैर्घागपेयप्रचुरमधुरिमस्नेहधूमोऽपि येषा

५

कुर्मे हैयज्ञवीनैः स्नपनमपनय ध्वानतभानोर्जिनश्य ॥”

कीयते क्षिप्यते पित्तमनेनाज्यम् । तथा कीरस्वामिनि—“आ अञ्जनीयमाज्यम्” ।
‘‘आड्यूर्वादञ्जे सज्जायाम्” वयप् । धूतम् । आधार । स्पृश्यम् । याज्यम् । हविः ।

दुर्घं क्षीराऽमृतं पयः ॥२२॥

चत्वारो दुग्धे । दुह प्रपूरणे । दुद्यते दुग्धम् । धूत्य अदने । सौत्रोऽयम् । धस्यते क्षीरम् ।
१० ‘धसे^३ किंच’ ईरमात्र । ‘गमहनजनेत्रयुपधालोप । ‘अश्वोदेव्यशिग प्रथम’ क । “शास्त्रिसि-
वसाना च” पत्वम् । कैपूर्वयोगे च । “ध्यञ्जनमस्व^४” । उणादौ क्षिणु क्षणु हिसायाम् । क्षणीति ति-
क्षीरम् । ‘‘क्षीरोशीग्गमोरगम्भीरा’ एते ईरप्रत्ययान्ता निपायन्ते । न ध्रियनेन अमृतम् ।
अत्रग्रभरकारित्वात् । पीयते वा सरमत्वात् पयः । यमुन् । उधरस्यम् । स्तन्यम् । पायूष, पूर्व च ।

उदधिन्मथितं तक्रं कालशेयं पिवेद् गुरुः ।

१५ चत्वारस्तके । उदकेन शवयति वर्तते उदधिन् । तान्तस्तालङ्घयमध्य । मध्यते (स्म) मथितं धोल च । तत्रति द्रव गन्छति तक्रम् । उभयम् । “तक्र विभागभिन्न तु केवल मथित स्मृतम्” इति धन्वन्तरिं । कलशर्या गर्यर्या भव कालशेय पिवेत् गुरु । तत्कालान गरिष्ठम् । अरिष्ठम् । दण्डाहतम् ।

प्रायो वयो दशानेहा पूर्णे यौवनकं विदुः ॥ १२३ ॥

२० तारुण्यं यौवनं च

“अष्टौ तास्थे । प्रकर्षण पग्लोकमेत्यनेन प्राय^५ पुसि । मात्तोर्पि प्रायम् । वयते चयः ॥” । दशनि चुम्बनि स्त्रीमुख दशा । न उद्देहते^६ नेष्टत अनेहा । अनेहोऽसरमोऽङ्गुरस^७ एते सन प्रत्ययान्ता निपायन्ते । ईह नेष्टायाम् । पूरी अत्यायने दिवादौ आत्मनेपदो । अदन्ताना प्राक् तृ(ऋ)तीयः परम्परैषदी । पूर्यने कश्चित्, पूर्यति कश्चित् । इन्द्र चुग्यते पूर्ण्या वा । “‘कारित० कारितलोप । उभयथा २५ पूरि जातम् । पूर्यते स्म पूर्णः । निश्चात् । ‘‘दान्तगान्तपर्णदृतस्पट्छन्नशास्त्रेनन्ता’’ इत्यनेन पूर्णंति निपातः । युना भावो यौवनम् । स्वार्थं क । यौवनकम् । ‘‘युवादित्वाद्विषण् । वृद्धौ । तस्याम्य

१ पा० स० ३।१।०९ । वार्तिकम् । २ पा० उ० स० ३।३२ । ३ का० स० ३।६।४३ । ४ का० स० ३।८।० । ५ का० स० ३।८।२७ । ६ का० स० पू० स० २५६ । ७ “ध्यञ्जनमस्वर पर धण नयत” का० स० १।१।०।१ । ८ का० उ० स० ३।६६ । ९ अत्र प्रायादयोऽनेहोऽन्ताश्चत्वारो वयोवाचका । पूर्णपूर्वका एते चत्वारो यौवनकतास्यायोवनानीनि व्रय । एव च सन तारुण्ये इति वक्तु युक्तम् । १० प्रकर्षण शरीरस्य क्रमेणायते गच्छति इति है० च० । ११ शरीरस्य क्रमेण विवन्ति वय, बान्धादीनि दश्यन्ते दशा इति है० । १२ नाहन्ति नागन्छति नाहन्यते नागम्यते वैति रामाश्रम । ‘नग्याहन पह च’ इति सायु । १३ का० उ० स० ४।१।८ । १४ का० स० ३।६।४४ । १५ का० स० ४।६।१०।० । १६ है० श० ७।१।६।७। युवादेरण् इति सूत्रम् ।

भावस्तारुण्यम् । भावार्थे यण् । यूनो भावो यौवनम् ।

अन्यो वादीनः स्थविरो मतः ।

त्रयो वृद्धे । अन्ते भवोऽन्त्यः । वृद्धे नियुक्तो वादीनः^१ । तिष्ठतीति स्थविर^२ । गति-
भङ्गान्मतः कथित् । प्रवया । यातयामः । दशमीत्थः । जरन । जरठ । जीर्णः । वृद्धः ।

वशोऽन्योऽन्ववायः स्यादाम्नायः संततिः कुलम् ॥ १२४ ॥ ^५

पट् वशे । उश्यते काम्यते जनेन चंश^३ । पुसि । अन्वयते सन्ततिरत्रान्वयः^४ । अन्ववैत्य-
पत्यमत्रान्ववाय । आम्नायते आम्नाय^५ । सम् सम्यक् प्रकारेण तनोति विस्तारतीति सन्तति^६ ।
सन्तनन वा सन्तति । कु (को)लति सर्वं भवन्यत्र कुलम् । उभयम् । गोत्रम् । अभिजन ।

ओधो वर्गश्च सन्तानः

त्रय समूहे (वशम्यावान्तर्गवर्गभेदे) । ओद्यते ओधः^७ । वृश्यते विजातीयेन पृथक् कियते १०
वर्गे । सन्तन्यते सन्तानः । विकर । निकाय । निवह । विमर । वज्र । पुड्ड । सन्चय^८ ।
समदय । सुदायाः । सार्थ । यूथ । निकुरम्ब । कटम्बम् । पूर्ण । राशि । चय । समवाय । मण्डसम् ।
चक्रवालम् । जालम् । स्तोम । व्युह ।

काव्यमेव कविस्थितिः ।

द्वां काव्ये । कवेभाव काव्यम् । तथा च यशस्तिलके—

“दुर्जनानां” विनोदाय बुधाना मतिजन्मने ।

मध्यस्थानां न मांनाय भन्ये काव्यमिदम्भवेन् ॥”

कवीना स्थिति कविस्थिति ।

पद्मिवर्ग प्रारम्भते श्रीमद्भास्करीसिंहा—

हमो मगलथक्राङ्गः

२५

त्रयो हसे । विम हन्ति खण्डयति, चासुगत्य हन्ति गच्छति वा हसः । हन्ते^९ स । मरं
मलं व मलम्^{१०} इतनडागमिर्यि गच्छन्तीति मरालः । चक्रमन्ति चक्राण्यङ्गानि वा यस्य चक्राङ् ।
मानसांका । श्वेतच्छ्रुद ।

हंसवाहः सनातनः ॥ १२४ ॥

हंसशब्दाद् वाहशब्दे प्रयुज्यमाने ब्रह्मणो नामानि भवन्ति । हंसवाहः । मरालवाहः । चक्राङ् ॥ २५
वाह । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

मयूरो वर्हिणः केकी शिखी प्रावृषिकस्तथा ॥

नीलकण्ठः कलापी च शिखण्डी—

अत्रो मयूरे । महा रौति मयूर । मीनातिवाऽहीन् मयूर । उणादौ । मीन् हिसायाम । मध्यते

१ अत्रान्यत्यमाण नोपलव्यम् । २ यौवनमतिक्रम्य तिष्ठतीति ह० च० । “अजिरशिशिरेत्यादि
पा०उ० १५३ इति किरप्रययो उगागमो द्वस्वन्व च । ३ “वश कान्तौ” वृत्र । तुम् । वन्यते कन्यन्तेऽनेनेति
स्वामी । ४ अन्ववेति अन्वीयते । अन्वय । “इण् गतो” । अच् । इन्यन्यत्र^५ अत्र प्रमाणम्—‘आम्नायः
कुल आगमे उपदेशे’ इति हैम । ३।४।१। ६ सन्तन्यते सम्यग्विस्तारयतीति रामाश्रम । ७ आ ऊहते ।
ऊह वितके । न्यद्वक्षादित्वाद् हस्य घ । ८ आ० १ श्लो० २५।९ का० ३० सू० १५। ‘वृत्तविद्व-
निमतिकस्यशिक्षेभ्य स.’ । इति ।

इति मयूर । “मथते रुग्मो खौ” । ग्रहमस्यास्ति वर्ही । “फलं वर्हा-न्यामिनच्” । केका वाणी अस्यस्य केकी । शिखाऽस्त्यस्य शिखो । प्रादृषि वर्धकाले प्रुन् प्रावृषिकः । नील काणे यस्य म नीलकण्ठ । कलापोऽस्यस्य कलापी । शिखण्डोऽस्यस्य शिखण्डो । प्रचलाकी । सर्पाशन । शिखावल । श्याम-कण्ठ । चन्द्रकी । शुक्रापादः ।

५

तत्पतिर्गुहः ॥ १२६ ॥

तस्य पतिस्तत्पतिर्गुह कातिकेय । मयूरशब्दात् पतिशब्दे प्रयुज्यमाने कार्तिकेयपर्यावनामानि भवन्ति । मयूरपत्ति । बृंणपति । केकिपति । शिखिपति । प्रावृषिकपति । नीलकण्ठपति । कलापिपति । शिखण्डिपति । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

वरटा वारली हंसी-

१० त्रयो रसभार्यायाम । वर विशिष्टमर्ति गच्छति वरटा । वरलस्य भार्या वारली । स्वार्थेऽणि । वरला च । हन्तीति हसी ।

कोक ईहामृगो वृकः ।

अजातिक कोकते आदत्ते कोकः । ईहा मुरोऽस्य ईहामृगः । ईहा मृगयते वा ॐ ईहामृगः । कुक वृक आदाने । वर्कते वृकः । अग्णयवा ।

१५

हरिणो मृगश्च पृष्ठतः-

त्रयो मंग । गोतेन द्वियते हरिण । व्यामैर्मृग्यते मृगः । पर्वति मिच्चति मृगेण पृष्ठत । तान्तोऽपि पृष्ठत् । एग । कुरुङ् । कुरुङ्म । सारङ् । कृश्य । रिश्य । कृष्यश्च । रुरु । न्यहु । वात-प्रसी । शम्बर । शब्ल । कृष्णमारु । कलमारोऽपि ।

तदङ्गः शर्वरीकरः ॥ १२७ ॥

२० इरिणपर्यायादङ्गपर्याये प्रयुज्यमाने चन्द्रस्य नामानि भवन्ति । हरिणाङ् । मृगाङ् । पुष्पनाङ् । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

पन्नगोऽहिर्विपधरो लेलिहानो भुजङ्गम ॥
नागोगगौ फणी मर्पः-

नव सर्वे । पद्मान न गच्छतीति पञ्चग । न अग्नाणनादित्यस्योपलक्ष्यत्वात् । अहन्य (नेऽ) २५ हि । “अहि’कम्योर्नलोपन्” नलोपन् । विप धरति विपधर । निलेहेति लेलिहान । भुजान्या गच्छति भुजङ्गम । न गच्छतीति ० नाग । उरसा गच्छतोत्युरग । “० उरो विहायसो रुग्विहो च” । उरो विहायसोरुपदयोर्गमन् सजाया यो भवति तयोश्च उरविहो यथासग्य भवत । फणाऽस्यस्य फणो ।

१ का० उ० सू० ६।४० । २ पा० ४।३।२२ वार्तिकम्—“फलवर्हान्यामिनच्” । ३ ईह्या महताऽयासेन मृग्यते आर्येतीक्रियते द्वयन्यत्र । ४ वर्कतेऽजादिकमादते, वृणेनि वा वृकः । ५ रामाश्रमस्तु—‘पृष्ठता विन्दवो विन्दुसदशलवणान्यस्य पृष्ठत । अर्श आद्यन् इत्याह । पृष्ठतो विन्दुचित्र इति द्वा० स्वा० । ६ पन्न पतित यथा स्य तथा गच्छतीति रामाश्रम । सर्वपन्नयोरिति वार्तिकन इ । ७ का० उ० सू० ६।४। किम्ययो नलोपन् । अहि गतो । अहिति वेगेन गच्छति । ८ मुश लेदीत्येवशीलो लेलिहान । लिहेयद्भुगत्तान्—“तान्त्रीच्यवयोवचनशक्तिपु चानश्” पा० स० ३।२।१२६। इति चानश् । ९ सुजेन कौठिल्येन गच्छति, सुज इव गच्छति वेत्यन्यत्र । “गमश्र” का० सू० ४।३।४५। इति । “विहङ्गतुरङ् भुजङ्गाश्र” का० सू० ४।३।४८। इति खल्चि, डे च, सुजङ्गम, सुजङ्ग इति । १० नगे पर्वते भवो नाग । अथवा न गच्छतीत्यग, न अग, नाग इत्यन्यत्र । ११ का० सू० ४।३।४६।

सर्पति गच्छति सर्पः । पृदाकुः । भुजग । आशीविष । चक्री । व्याल । सरीसूप । कुण्डली । गूढपात् । द्विरसन । चक्षुःश्वा । काकोदर । दर्वाकर । दीर्घपृष्ठ । दन्दशूक । विलेशय । भोगी । जिङ्गग । पवनाशन । गोकर्णः । कुम्मीनम । कञ्जुकी । राजसर्प । भुजद्वासुक् । दक्षुति ।

तद्वैरी विनतात्मजः ॥ १२७ ॥

तस्य पञ्चगस्य वैरी शत्रु विनतात्मज गरुड । पञ्चगवैरी । अहिरिपुः । विपवराराति । ५
लेलिहानरिपु । भुजद्वाशत्रु । नागद्विट । भुजद्वासप्तन । कणिद्विट् । सर्पहृत । सर्पदेवी । हत्यादीनि
गरुडनामानि स्यु ।

सुपणो गरुडस्ताक्ष्यो गरुत्मान् शकुनीश्वरः ।

इन्द्रजिन्मन्त्रपूतात्मा वैनतेयो विपाशयः ॥ १२८ ॥

नव गरुडः । शोभन म्वर्णमय पर्याप्त्य सुपर्णा । तथा च—“सुपणो” हेमफच्छत्वात् ॥ डी. १०
विद्यायसा गतो । गरुत्पूर्व । गरुद्विः पद्मैर्देवते गरुडः ।

‘वणिगमो गवेन्द्रादौ मिहै वर्णविपर्यय ।

पोष्टग्रादौ विकागस्तु वर्णनाशः पूपोदरे ॥’

ट्यनेन श्लोकेन गरुत्सब्दस्य तकारस्य लोप । लत्वे गहल । गहटत्र । तुनस्यापय ताक्ष्यः । १५
गरुत पक्षा सन्त्यन्य गरुत्मान् । शकुनीना विहृतानामीवरं स्वामी शकुनीश्वरः । इन्द्र जितवान्
इन्द्रजित् । मन्त्रेण पृत पवित्र आत्मा यम्य स मन्त्रपूतात्मा । विनताया अपय धैनतेय । विप
क्षयनीति विषद्वय । काष्ययनन्दन । विषयुरथः । पञ्चगशन । नागान्तक ।

खमिन्द्रियं हृषीकं च थो (सो) तोऽक्षं करणं विदुः ।

पाडिन्द्रिये । स्वर्गमोक्षो व्वनति विदाग्यतीति खम्^३ । इन्द्रस्यात्मनो लिङ्मिन्द्रियम्^४ ।
हृष्ट्यति हृष्ट्ये प्रानोति विपयेतु शब्दपर्शरूपरसगन्वेतु हृषीकम् । शुणोत्यनेन सान्तम् शोत् । २०
तालव्यादिः । अक्षोति विपय व्यानोति अक्षम् । कियते मनोऽनेन विषयेतु करणम् । शेष
[विपयि] । कग्रलम्^५ ।

पुण्यं भाग्यं च सुकृतं मागधेयं च सन्कृतम् ॥ १२९ ॥

पञ्च पुण्ये । पुण शोमे । पुणति शोभने पवते वा ‘पुण्यम् । ‘पर्जन्यपुण्य’ । भगस्यैश्वर्या
देविः [कागणम्] भागम । भागमेव भाग्यम् । “भागाग्न्य” । सुदृक्षियते सुकृतम् । २५

“ ऐश्वर्यस्य समग्रम्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यम्याद्य मोशस्य पण्णा भग इति स्मृतिः ॥”

१ द्वी० स्वा० मा० १११२९ । २ शा० सू० राग१७२ । अत्र कारिकारूपेण पठित ।
३ व्यन्यत, तत्त्विन्द्रियाविष्टानस्य खानसदशत्वदशनात्, खम् । ‘खनु अवदारणे’ । डप्रत्यय इत्यन्यत्र ।
४ इन्द्रियमिन्द्रियलिङ्मित्यादिना घन् । घन्येय । ५ तालव्यशोतशशब्द कर्णेन्द्रियवाचकः । दन्त्यमोतशशब्द
इन्द्रियवाची, सोऽत्र पठितव्य । तदुक्तम्—‘हृषीकमद्व करण सोत् व्य विषयेन्द्रियम्’ अ० च०
‘सोत् इन्द्रिये निम्मगारणे’ । इत्यमर ३।३।२३। ६ नात्रान्यत्प्रमाणमुपलब्धम । क्लिष्टसमाधान-
प्रकाग्मन्तु—कमिति सुखार्थकमव्ययम्, तस्य चल साधनमिन्द्रियमिति । ७ पुणतोनि पुण । ‘पुण शुभे
कर्मणि । इगुपवेति कः । पुणमहंति पुण्यम् । ‘तदर्हति’ । पा० सू० ४।१६३ । इति यत् । पुणति
पवते वेत्यन्यत्र । ८ काल उ० सू० ३।४ । ९, श्लोक॑य विष्णुपुराणस्थत्वेनोहिलिखित अम० को०
द्वी० स्वा० भाष्ये । १।१।१३।

भगस्येद भाग भागमेव भागधेयम् । ‘नामरूपभागेभ्यो खेयः’^१ । सत्समीक्षीन क्रियते (स्म) सत्कृतम् ।

अघमंहश्च दुरितं पाप्मा पापं च किञ्चिषम् ।
वृजिनं कलिलं घेनो दुष्कृतम् ।

५ दश पापे । न जहाति प्राणिनम् आघम^२ । अहाति गच्छति नरकादिक्षमनेन श्र ह । सान्तम् ।
दुरितम्^३ । दूर्सौत्रोऽय धातु । पाति सुगतेर्वार्यति पाप्मा । पु सि । ‘सर्वधातुभ्यो मन् ।’ पाति सुगतेर्वार्यति पाप्म । “‘पाते: प.’” । निश्चयतेवेन कल्यने मुहुर्मुदुः किरति सङ्गति वा किञ्चिषम् । “किल्विपा” व्यथिष्ठौ” एतौ त्रिप्रत्ययान्तौ निपात्येते । उज्यतेऽपरीयतेऽनेन वृजिनम्^४ । कलयति कलिलम्^५ । “कलेरिलः” । एति गच्छति [मुखम्] अनेन एन् । सान्तम् । दुष्कृतम् । तम । कलनम् ।
१० कल्मषम् । अशुभम् । पङ्कम् । किञ्चम् । मल । अनेकार्ये ।

तज्जयी जिनः ॥ १३० ॥

तस्य पापस्य जर्या तज्जयी । अघजयी । दुरितजयी । पापजयी । इत्यादोनि जिनस्य नामानि भवन्ति ।

सदनं सद्ग भवनं घिष्यं वेशमाथ मन्दिरम् ।
गेहं निकेतनागारं निशान्तं निवृतं शृहम् ॥ १३२ ॥
वमत्यावसथावासं स्थानं धामास्पदं पदम् ।
निकायं निलयं पस्त्यं शरणं विदुगालयम् ॥ १३३ ॥

१५

चतुर्विंशतिगृहै । जना सीटन्यत्र सदनम् । लीबे । सीदन्ति सुख गच्छन्त्यत्र सद्ग । ‘सर्व-धातुभ्यो मन्’ प्रायेण । मवति भूतान्यत्र भवनम् । धिप शब्दे । देखेष्टि शब्द करोत्यत्र धिष्यम् । “‘धिष्यन्यक्’ प्रत्ययो मवति । विश्वन्यत्र वेशम् । नान्तम् । मायन्ति जना श्रव मन्दिरम्^६ । छी-
२० लीबे । मन्दिरा । गेह सौत्रा निवारणग्रहयो । गेहति शीतवानातपादिक निवारयतीति गेहम् । यद्वाति वा गेहम् । ‘गेहे’ ‘त्वक्’ । सुख निकितन्ति जान्त्यत्र निकेतनम् । अद्वन्ति गच्छन्यत्र आगारम्^७ । आगार च । निशाम्यन्त्यत्र निशान्तम्^८ । निश्चयते आच्छायते निवृतम् । शृहणाति नरेणोपाजित धन शृहम् । वसन वसति । आवसन्त्यत्र जना आवसथम् । आ समन्तादुयतेऽत्रावासं । स्वीपते जनेनात्र स्थानम् । दधाति धनादि धाम । नान्तम् । अदन्त च धामम् । लीबे । आमा(प)वनेऽत्रास्पदम्^९ । पद्यते
२५ गम्यते पदम् । निर्चायतेऽस्ति निकायः । “‘शीरनिवासयो कवाऽन्’ धर्म । निलीयते आशिष्यते(अत्र) निलयम् । पसि सौत्रो निवासे । जना पमन्ति वसन्त्यत्र पस्त्यम्^{१०} । वस्ता वासे माधु वस्त्यम् । वत्ती

१ पा० सू० ५।।।।। २ अद्वते गच्छति दानादिनाऽयम् । ‘अविगतो’ । पचायच्च । आगमशास्त्रस्यानियत्वान् नुम् । ३ दुष्टमित गमनमनेनेति रामाश्रम । ४ का० उ० स० २१५५ । ५ ‘किल्विपाव्यथिष्ठौ’ का० उ० स० १।।। ६ ‘वृजा वर्जने ।’ वृजे किञ्चेतीनच । वृजयते वृजिनमित्यपि । ७ कलयति जनयति दुष्टविभित शेष । ८ का० उ० स० ४।।। ९ का० उ० स० ३।।। १० “तिमिषधिमदिमन्दिचन्दिवधिरुचिशुग्धिः किरः” का० उ० स० १।।। ११ का० स० ४।।। १२ आ अद्वति अद्वयते वाऽत्र बाहुलक आरपत्यय । ‘अग्ग गती’ आद्युर्वा । नलोपश्च । १३ निशाया अन्तोऽन्त्यन्यत्र । निशायाम् अम्यते गम्यते स्मेति रामा-अम । “अम गती” । लः । १४ “आस्पद प्रतिष्ठायाम्” पा० स० ६।।।।। १५ ति सुद । १५ का० स० ४।।।।। १६ अगस्त्यायन्ति सद्ग्रीमवन्यत्र पत्त्यम् । “स्त्यै शब्दमद्ययोः” ।

वा से साधु 'वस्त्यमिति शीभोजः । शीर्यते हिस्यते शीतावत्र शरणम् । आलीयते जनेनात्राक्षयः । पुसि ।
चितुः कथयन्ति । पुरम् । कुलम् । सत्त्यायः ।

खेयं खातं च परिखा

त्रयं परिखायाम् । खनु अवदारणे । खन् । खन्यते खेयम् । "आत्खनोरिच्च" यप्रथयो
नकारस्येकार । "अवर्णेइवर्णे ए" अवर्णेवर्णयोरेकार । खन्यते [स्म] खातम् । परिखायते परिखा । ५
वप्रं स्याद् लिङ्कुट्टिमम् ।

द्वौ प्राकारे । शुल्कादिक वपन्यत्र वप्रम् । धूल्या कुट्टिम धूलिकुट्टिमम् । बद्भूमिकम् ।
धूलिकुट्टिमम् ।

प्राकारः परिधिः सालः

त्रयो दुर्गे । प्रकुर्वन्ति तमिति प्राकार ४ । "अकर्तरि च" कारके सशायाम्" घन् । परि १०
समन्ताद् धीयते परिधिः ५ । इयति तनूकराति स्वनगरपर्यत शाल सालं ८ च ।

प्रतोली गोपुराकृतिः ॥ १३४ ॥

द्वौ विशिखायाम् । प्रविशन् जन प्रतोल्यते परिमीयतेऽत्र प्रतोली । गोप्यते रक्ष्यते गोपुर
तस्याकृति गोपुराकृतिः ६ ।

प्रासादसौधहर्म्याणि

त्रय संधे । प्रासादश्च सौधं च हर्म्यं च प्रासादसौधहर्म्याणि । प्रसीदन्त्यस्मिन्नयनमनातीति १५
इत्यानाद् । "अरुनिं च कारके सशायाम्" । सुवाया लिंताया भव १० सौधम् । चन्द्रकरान् इरति
हर्म्यम् ७ ।

निर्व्यूहो मत्तवारणः ।

द्वौ अगाश्रये । निर्व्यूहते निर्व्यूह । मत्ता प्रमादिन पतन्ती वार्यन्तेऽनेन मनवारण । २०

वातायनं मतालम्बम्

द्वौ गवान्ते । वातस्यायन मागो वातायनम् । उभयम् । मतमर्मीष्म आलम्बम् मतालम्बम् ।
जालम् । जालम् ।

आलम्ब्यसुखमासनम् ॥ १३५ ॥

राजामवद्धमे द्वौ । आलम्ब्यस्य अवनन्ननस्य मुवम् आलम्ब्यसुखम् । सुखेनास्यते आसनम् । २५

ममः सवर्णः सज्जातिः सद्वसः सद्वशः सदक् ।

तुल्यः सधर्मस्त्वं तुला कक्षोपमा विधा ॥ १३६ ॥

१ यथा मूले वस्त्यशब्दो नास्ति, तथापि पाठमेदात् "निशान्तवस्त्यमदनम्" २१२५।
इत्यमरे वस्त्यशब्दपाठात् दीकाकृता तदपि विग्रहीतम् । २ का० सू० ४१२।१२। ३ का० मू० १।२।१२।
४ प्रक्रियते इनि कर्मणि घन् । इति रामाश्रम । ५ का० सू० ४।५।४। ६ परितो धीयते वेष्ट्यते
नगरमनेनेति रामाश्रम । ७ दन्तयपाठे तु स्त्वयते सालः । "हल गतौ" । घन् । ८ पुरुषारन्तु गोपुर
भटरक्षितम्, तस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्यास्त्वदशीयर्थ । ९ का० सू० ४।२।१। १० मुवया लित. सोधः ।
शेषेतुग् । ११ इति मनाति हर्म्यमित्यन्यत्र । प्रासादसौधहर्म्याणामत्राविशेषणोपादानम् । पर तदविशेषां
न विस्मर्त्य । तदुक्तम्—"हर्म्यादि धनिना वास प्रामादो देवभूजाम् । सौधोऽङ्गी राजमदनम्"
२।२।१।०। इत्यमरः ।

१ एकादश समाने । समान मातीति॒ समः । समान सटशो वर्णोऽत्य सवर्ण॑ । समाना शाति॒ अस्य सशार्ति॑ । समान इव दश्यते सदृक्ष । “३समानान्ययोश्च” सकृपत्यय । शस्य च पत्वम् । “षटो४ कर्से५ षस्य कत्वम् । “कपयोगे६” कृ७ ” । समान इव दश्यते सदृग्यः । “८समानान्ययोश्च टकृपत्यय । अमात्र । कानुबन्धत्वाद्गुणनिषेध । दानुबन्धत्वान्नादौ पञ्चत । “दकृ९ दश” इति समानस्य १५ सभाव । समान इव दश्यते सदृक् । “१०समानान्ययोश्च” क्षिप् । तुलया समितस्तुदयः । समानो धर्मो यस्य नन्धर्म । समान रूप यस्य स सरूपः । “११रूपनामगोत्रस्थानवर्णवयस्सु” इति समानस्य सादेश । तोलन तुला । “१२तोलेष्वच्च” अड्प्रत्यय । ओकारस्थाकारश्च । कपति कक्षा । उपमा । वधा । प्रवद्य । प्रकाश । प्रतिम । मन्त्रिभः । प्रकार ।

विन्मान्यो विद्यमानश्च गुरुस्थानाम्बुजाननाः ।

१०

सिंहादीनि च पर्यायमुपमानेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

योजयेत् जोट्येत् । पर्यायं विशेषणम् उपमानेषु । वित्सम । वित्सवर्णः । वित्स-
जाति॒ । वित्सदक्षः । वित्सदृशः । वित्सदृक् । वित्समै । वित्सरूप । वित्सुल्य । वित्सक्षः ।
अनेन प्रकारेण मान्यविवरमानगुरुस्थानाम्बुजाननसिहादिशब्दा उपमानेषु प्रयोजनीया ।

व्यपदेशो निभं व्याजः पदं व्यतिकरश्छलम् ।

१५

छङ्ग

सम कैतवे॑ व्यपदेशन व्यपदेशः ॥ १ पुसि । निर॑ अतिशयेन माति॒ निभम् ॥ २ व्यजयेत् व्याज ।
पुसि । पद्यते गम्यते कैतवेन पदम् । व्यतिकरण व्यतिकरः । छलति॑ छलम् । क्लीवे॑ छादयनि॒
छाद्य ॥ ३ । नान्तम् । क्लीबम् । कैतवम् । कूटम् । उपाधिः । मिपम् । लक्ष्यम् ॥ ४ ।

वृत्तान्तमुत्प्रेक्षा शब्दमन्यं च निर्णयेत् ॥ १३८ ॥

२०

दा वार्तायाम् । वृत्तम्य चरितस्थान्तो वृत्तान्त ॥ ५ उत्प्रेक्षणम उत्प्रेक्षा । वार्ता॑ । प्रवृत्ति॑ । उदन्तः॑ ।

१ अत्र समाटय सरूपान्ता नव समाने । तुलाक्षोपमा विधा इति चत्वारम्बुलायामिति
पार्यवयेन वक्तव्येष्पि सदृशाऽभिमायेण तदाह । क्लिच्छिर्भिते पाठः । परन्तु तुलार्थकविधाशब्दोऽत्र युक्त ।
एव च त्रयोदश इति वक्तव्यम् । अभिधापाठे॑ तु “उपमाऽभिधा” इत्यनयोरुपमावाचकन्ये मति॒ “एकादश”
इति सदृच्छुते । २ मकारे परे समानस्य सादेशविधायकवचनाभावान्समान मातीति॒ विग्रहश्विन्त्य ।
‘सम वैकलये॑’ समति॒ वैकलव्य करोतीति॒ सम । समः समाय॑ वैकलव्य करोत्येव । पचाद्यच् । ३ “कर्मणु
पमाने त्वदादौ दशष्टक॑ नक्ता॒ च” का० सू० ४।३।३५। अत्र त्रुति॑ । ४ का० सू० ३।३।४।५ का० रू०
४०।२५६। सू० ६ “समानान्ययोश्चेति॒ वक्तव्यम्” इति॒ वार्तिकल्पणोपलम्यते॑ । २।६०। काशिकायाम् ।
मातन्त्रसूत्रन्तु॑ नैतादशमुपलब्धम । वृत्तिरूपीदशी काव्यि॑ नास्ति । काशिकाया॑ टीकीकृत्वचनसाम्येष्यप्रत्य-
पत्वहरणाम्य नास्ति । ७ “दग्धशदृक्षेषु॒ समानस्य स॑” का० सू० ४।३।४।५ = का० सू० ४।२।३।५
त्रुति॑ । ८ “ज्योतिर्जनपदरात्रिनामिनामगोत्ररूपस्थानर्णवयोवचनबन्ध्यु” इति॒ पा० सू० ६।३।४।५
१० वाचनिक॑ नैतत् अतुलोपमायामिति॒ जापितमिति॒ प्रतिभाति॑ । ११ व्यपदिश्यते॒ व्यपदेशोऽतद्वृपम्य
तादूपम् । १२ नि॒ नितरा॑ तदिव॑ भाति॒ निभम्॒ इत्यन्यत्र । १३ व्यजन्ति॒ विक्षिपन्ति॒ अनेन व्याजः॑ । “अज
गतिद्वेषण्यो॑” । प्रथ । १४. छूयति॑ छिन्निति॒ वस्तुतन्वमनेनेति॒ वा । छो॑ छोदने॑ । क्ल प्रत्यय । १५. छादते॑
स्वपमनेन छुदम । मनिन् । हस्वः । “छुद अवारणे॑” । चुगदिः । १६ लक्ष॑ शब्दोऽप्ययम् । १७ वृत्तोऽनुस-
धानीयो॑ गवेषणीयोऽन्तः॑ समातिर्यस्येति॒ रामाश्रमः ।

ब्रातः^१ पूर्णः समाजश्च समूहः सन्ततिर्वजः ।
 अय्यो हो निकायो निकुरम्बं कदम्बकम् ॥ १३६ ॥
 ओघः समुदयः सङ्गः मङ्गातः समितिसतति ।
 निचयः प्रकरः पड़क्ति:

विशतिस्समूहे : वृणोति छादयति ब्रातः । पूजयते पूजते वा पूर्णः^२ सर्वीयते समाज ॥ घन् ।
 समूहयते सम्यग् दौङ्क्यते समूहः । सतन्यते सन्तति । व्रजस्त्यत्र व्रज । उमयम् । विशेषण उद्यते व्यूह । ५
 निचीयते उसो निकाय । कायश्च । निकीर्यते निकर । समन्ताचिकुरन्ति"वरन्ति (छिन्दित) निकुरम्ब ।
 कुसितम् आम्बते कदम्बम् । स्वार्थे के कदम्बकम् । द्वा कर्लवे । उद्यते ओघः^३ । "ध्याक्वादीना" हश्च व ।
 समुदीयतेऽत्र समुदय ॥ । समुदायश्च । सहन्यन्तेऽस्मिन्नवयवा सङ्ग । सहन्यते सम्यात । १०
 हन्तेर्व । इण् गतौ समूर्वः । समथन समितिः । भित्रा कि । तनन तति । निचीयतेऽसो निचय । १०
 उच्चय । प्रचय । सत्रय । प्रक्रियते प्रकर । पञ्च विस्तारवचन । पञ्च । उदनुव्रथाना धानना नलोपो
 नास्तीति । पञ्चन पड़क्ति । स्त्रिया कि ।

पश्चनां समजो व्रजः ॥ १४० ॥

पश्चना व्रज समूह समज कथ्यते । अज चेमरो । अन् समपुर्वः । समजन समज । 'उमुदोरज
 पगुनु^४' अल् । १५

मर्मापाभ्याममासन्नमभ्यर्णं मन्त्रिधि विदुः ।
 अविदृं च निकटमवलग्नमनन्तरम् ॥ १४१ ॥

नव समीये । समानोति समीपम्^५ । अ+युपेत्य चास्यते आभ्यास । घन् । आसद्यते स्म
 आसन्नम् । अर्द गतो याचने च । अर्द अभिपूवः अन्यर्तिभ्य अभ्यरण्ण । निष्ठान्त । "सामीप्युभे"^६
 नेट । दाह^७ "स्य च" दक्षरकार्योन्तवम् । "गृष्णः^८" -धातोर्नकारस्य णन्वम् । " "तवर्गस्य०" निष्ठा- २०
 नस्य णन्वम् । सद्विदीयते मन्त्रिधि । अ(व)विटुर्नोर्तीति अविदृरम् । "टुनोत्तर्नीर्षच^९" टुनोत्तर्न प्रयो
 भवित दीर्घश्च । रुद उपताप । निकर्ति निकटम् । (नि)नान्ति कटोऽस्येति व निकट । कटे वर्पाऽवरण्यो ।
 अवलग्नि (स्म) अवलग्नः । न अन्तरम् अनन्तरम् । सनीडम् । समर्थादम् । आगान् । सदेशम् । उपक-

^१ चेतनाचेतनसर्वसमूहे ब्रातादयो विशतिशब्दा प्रयुज्यन्ते । ओघो वर्गत्र सन्नान् इति
 वशस्यावान्तरवर्गभेद इति डष्टव्य । परन्तु व्यवहारे प्रयोगमाङ्गीर्यमपि दृश्यते । २ "व्रस् वर्गो" । आतक्
 प्रत्यय । अन्यत्र तु व्रत्यते एकमिन् राशो नियम्यते उत्र मुण्डमिति इति प्यन्तादवतर्षज । ब्रातक्षनोर्गिति
 निर्देशाद् दीर्घ । ३ पूजयते राशत्वेन मन्यते, पूजयते जनसुदायात् गशिभेदेन निर्वाच्यते वा पूर्ण ।
 "छापूखडिष्य कित्" । उ० स० १२८। इति पृष्ठ पूज्रो वा किदूग पत्यय । पूजयते पृगसा उत्त्वे धर्मि कुर्तेऽपि
 स्थानिवर्त्वेन प्यन्ताल्कुत्व टुस्साध्यम् । ४ "अज गतिक्षेपण्यो" । घन । ५ "कुर् छेटने । चाहु-
 लकादम्बच् । अस्योन्त्वे निकुरम्ब इत्यपि । ६ आद्यूर्वादूहतेर्वन् । "उह वितके । ७ का० स०
 ४१६।१७ । ८. सम-उदगूर्वक "इण् गतो" इण्धान् । अलि समुदय । धर्मि समुदाय । ९. "समुदो-
 गणप्रशसया," का० स० ४।५।६।४। इति हन्तेऽप्रत्ययो धादेशश्च । १० का० स० ४।५।५।१ । ११. सङ्गता
 आपोऽस्मिन्निति विग्रहे समाप्त । अच्चसासान्त । "द्व्यन्तरश्वप्तेभ्योऽपि ईत्" दतीकार । उपनाराद+यर्ण-
 मपि समीपम् । १२ का० स० ४।६।६।७ । १३. का० स० ४।३।१०।२ । १४. का० स० २।४।४। ।
 १५ "तवर्गस्य पटवर्गाङ्गवर्ग" का० स० ३।८।५ । १६ का० उ० स० ६।५ ।

एतम् । अन्यग्रम् । सन्क्षिप्तम् । आसन्नम् ।

जित्या हलिर्हेलं सीरं लाङ्गलम्

पञ्च हले । जि जये । जि । जीयते जित्या । “‘जयतेर्हलौ क्यवेव” क्यप् । “धातोऽस्तोऽन्तः पानुबन्धे ।” “३स्त्रियामादा” । हलति हलि । महद्वल हलिर्हयते । भूमि हलति विलिखति हलम् । ५ सीयते बध्यते वरवया सीरम् । लङ्गति भूमिं गच्छति लाङ्गलम् ।

तत्करो बलः ।

हलपर्यायतः करपर्यायेत् बलभद्रनामानि भवन्ति । जित्याकर । हलिकर । हलकरः । सीरकर । लाङ्गलकरः । हलपाणिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

रेवतीदयितो नीलवसनः केशवाग्रजः ॥ १४२ ॥

१० त्रयो बलभद्रे । रेवत्या दयितो भर्ता रेवतीदयितः । नील कृष्ण वर्ण वसन यस्य स नीलवस्त्रम् । केशवस्याग्रज केशवाग्रज । कालिन्दीकर्पण । बल । प्रलम्बन ।

अर्जुनः फालगुनो जिष्णुः श्वेतवाजी कपिध्यजः ।

गाण्डीवी कार्मुकी मध्यमाची मध्यमपाण्डवः ॥ १४३ ॥

वृपसेनः सुनिमोक्तो देवत्यारिः शक्रनन्दनः ।

१५ कण्ठशूली किरीटी च शब्दभेदी धनञ्जयः ॥ १४४ ॥

मसदशार्जने । अर्जुन सर्वं अर्जने । अजति (कीर्तिम्) अर्जुन । “४ऋक्तुवृज्यमिदार्यजिन्य उन् । फल निष्पन्नौ । फलतीति फालगुन । “‘पिशुनफालगुने’” एतो उनप्रत्ययान्ता निपायेते । जयतीयेते शीलो जिष्णु । “‘जिभुवो स्तुक्” शेता वार्जिनो यस्य स श्वेतवाजी । कपिवर्णनरा वजे यस्य स कपिध्यज । गा ज्ञावनीयेवशालो “गाण्डीवा । कार्मुक वनुरमनीय य कार्मुकी । सध्ये साच्यतीति मध्यमाची । मध्यमश्चासो पाण्डवः मध्यमपाण्डव । युधिष्ठिरमीमयो महदेवनकुलयोमन्यर्जुन, २० तेन मध्यमगाण्डव रक्ष्यते । वपु सिनोति व नातोनि वृपसेन । सुनिमुच्यते शत्रुमि सुनिमोक्त । दु साध्यवात् । देवत्यारि शत्रुदेवत्यारिः । शक्रयेन्द्रन्य नन्दन शक्रनन्दनः अर्जुन कथ्यते । यमस्य पुत्रो युधिष्ठिर । वायोमीम । दन्तस्यार्जुन । ग्रस्त्रिनीकुमार्यार्जुनकुलमहदेवो पुत्रो । असत्यमेव तत् । कर्णे शूल विद्यते यस्यासो करणशूली । किरीट शेखर विद्यते यस्यासौ किरीटी । शब्दभेदोऽस्यस्य शब्दभेदी ।

१. का० सू० ८० ८०२०२६ । अत्र तुर्गवृत्ति । २ का० सू० ८११३० । ३ का० सू० २१४४६ । ४ का० उ० सू० २१६० । ५ का० उ० सू० २१६१ । ‘फल निष्पन्नौ’ उनप्रत्ययो गोप्तव्य । फलति कर्मसिद्धिमयते इत्यर्थ । ६ का० सू० ४।८।१८ । ७ गा जीवयतीति बोध्यम । विराट्नगरे पाण्डवानुसन्धानाय भीमकर्तृकगवाक्षमगोर्जुनद्वारारक्षणस्य महाभारतोन्त्वात् । वस्तुतस्तु गाढीव गाढीवमिति अर्जुनधनुषो नाम, तदस्यास्तीति गाढीवी इति मत्वर्थीय इन् । तदुक्त कल्पद्रुकोपे— “गाण्डीवो गाण्डीवोऽस्त्रियाम । गाढीवो गाढीवोऽप्यस्त्री” इति १।५।४।८ मूले गाण्डीवीशव्वत्स्तु गाण्डी ग्रन्थिरस्यास्तीति गाण्डीवम् । ‘गाण्डवजगात्मज्ञायाम्’ पा० सू० ५।८।२।१० । इति मत्वर्थीयो व । तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इन् । ८ सध्येन वामपाणिनाः पि सच्चते वाणान् वर्तीति सध्यसाची ।

केचित् शब्दवेदीति पठन्ति इत्यपि स्यात् । जि ज्ये । धनपूर्व । धन जितवान् धनञ्जयः । “नाभिन्”
त्व । “नाम्यन्त०” गुणां । “ए३श्चय” । “हस्वा॑रुदोर्मान्त॒०” । धनञ्जयेति कवैर्नामाभिधानमपि ज्ञातव्यम् ।
स कथम्भूत ७ शब्दमेदी । अतः” परं कोटि प्राप्ति । पाण्डवनाम मिष्ठेण स्वनाम रुथितमस्ति ।

कुरुकीचकयोवैरी वायुपुत्रो वृकोदरः ।

कुरुवैरी । कीचकवैरी । कुरुगत्रु । कीचकशत्रु । कुरुगिपु । कीचकरिपु । अनिलसुत । ५
पवनात्मज । हयादीनि भीमस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । वृकोऽरण्यवातद्रन् उद्ग यस्य स वृकोदर १ ।

समवर्ती यमः कालः कृतान्तो मृत्युरन्तकः ॥ १४५ ॥

पड् यमे । सर्वेषु तम कृत्य वर्तते समर्थनी । नान्त । रिपौ मित्रे च सम वर्तते इति वा । यम-
यति निग्नाति प्रजा यमः । यमलजातव्यादा । कलयति जन्मन् विनाशहेतुत्तेन काल ८ । कृतोऽन्तो
विनाशी येन स कृतान्त । प्रियतेज्ञेनंति मृत्यु । “भुजिर्दो युक्त्युक्तो” । अन्त कर्तोति अन्तक । १०
शमन । प्रेतपति । पितृति । कीनाशा । वैवस्वत । कालिन्दीसादर । धर्मगाज । दण्डवतः । हरि ।
दक्षिणापति । शाद्वदेव ।

तदात्मजो जातरिपुः कौन्तेयो भरतान्ययः ।

कौरव्यो राजयक्षमाऽमी गोमवंशो युधिष्ठिरः ॥ १४६ ॥

सम युधिष्ठिरे । तस्य धर्मस्यात्मजस्तदात्मज । समवर्तिपृत्र । यमोद्दहः । कृतान्तपोत । १५
मृत्युनन्दन । अन्तकदारकः । इत्यादीनि युविहिपर्यायनामानि ज्ञातव्यान । नातम्य स्वगोत्रस्य रिपुः
जातरिपुः । कुरुत्या अपव्य पुमान कौन्तेयः । भरतोऽन्वयोऽन्वय भरतान्ययः । कुरोरपत्य
पुमान कौरव्यः । राजमिर्नेन्द्रैर्यद्यते पूजयते राजयक्षमा । सर्ववातुम्यो मनू । राजलक्ष्मा चेति
त्रिचित्पटन्ति । सोमो वशोऽस्य सोमवंशः । युधि सप्तामे तिष्ठतीति युधिष्ठिरः ।

श्वेतार्जुनो शुचिः श्वेतो वलक्षं सितपाणदुर्गम् ।

शुक्रलावदात धवल पाण्डुः शुभ्रं शशिप्रभम् ॥ १४७ ॥

त्रयोदश श्वेत । श्वेतो श्वेत १ । अर्ज्यतेऽर्जुन २ । गोचर्णीति शुचिः ४ । शुच शोके ।
श्यायते इयेत ३ । अवलक्षयति अवलक्ष । वलक्ष्य ५ । सिनोति वधनाति(मन)सित । पण्डते याति
मनोऽत्र पाण्डुर । अथवा ‘नगवायुपाण्डुम्यो र ६ पण्डुत्वमस्यास्तीति पाण्डुर । पाण्डुर । शोकति
मनोऽस्मिन् शुक्रल । शुक गत्वा । अवदायते शोक्यते अवदात ७ । धर्वाति धवल ८ । पण्डते याति १५
९ “नाभिन् तु शुक्रुज्ञधारितपित्रिमिसदा मजायाम वा० स० ४१।४४ । १० का० स०
३५।१ । ११ का० स०।१२।१२ । १२ का० स० ८।२२ । १३ धनञ्जयाप्य कश्चिद्द्वेदवेत्ता
नाम्तीर्य । १४ युक्तो भीमजठराग्नि । स उद्गरे यस्येत्यपि । १५ कलयनीयस्य स्थाने कालयतीति
वक्तव्यम् । १६ का० उ० स० ३।३४ । १७ अन्तङ्गोऽन्यतयति । अन्तवत्यन्तक इति यावत् ।
१८ कोशान्तरप्रमाणान्महाभारतादिकथाम्बादात् महाकविव्यवहाराच “अजातरिपु” इतिछेदोऽत्र युन ।
न जाता रिपवो यस्येति युधिष्ठिरस्य “अजातशत्रु” इति मना । तदुक्तम्—“अजातशत्रु शल्यार्थर्घर्मपुत्रो
युधिष्ठिर” । अभिं चित्त ३।३०८ । १९ का०उ०स० ४।२८ । २० “श्विता वर्णे” । न्वादि० आत्म०।
पचाश्च । २१ अर्ज्यते सद्गृह्णयते जनै । २२ शुच्युज्जवलवस्तुना सर्वसद्ग्रहणीयत्वं लोकानुभवसिद्धम् ।
शोचति निर्मलीभवति शुचि । शुच दीप्ते । इकू । २५ श्वेत् गत्वा । श्यायते गच्छति
नोलादिवर्यविशुद्धत्वम् । ‘दृश्यान्यामितन्’ । पा० उ० स० ३।३९३ । इतन् । २६ अवलक्षयति अव-
लद्यते वा अन्यवर्णपित्र्या उत्कृष्टवेनेति । वष्टि भागुरिरल्लोप इत्यल्लोपस्त्वे । २७ अवदायते रम ।
दै४ शोधने । कर्मणि तः । २८ धुनोऽयशोभाम् इति इमचन्द्र । धावति मनोऽत्र । धातु गतिशुद्धये ।
कलच्, हस्वश्चेतीति रामाश्रम ।

मनोऽस्मिन् पाण्डु १ । शोभते शुभ्रः । शशिन द्व प्रभा यस्य शशिप्रभम् । गौरः । हरिण ।

कृष्णं नीलासिंहं कालम्

चत्वार कृष्ण । वर्णान् कर्पति^२ कृष्णः । नीलति नीलम्^३ । उभयम् । न सितम् असितम् । क सुव्रमालाति कालः । कालयति वा मनं ‘काल’ । मेचकम् । श्वामलम् । श्याम च । पालाशम्^४ । ५ इति । शिखिकण्ठाम इति दुर्गः ।

धूमं धूमलिप्रभः ।

बिशिष्टं कृष्णो त्रय । धूनोति धूमः । पूत्रोत्यभिभवति गग धूमः । धूमलश्च । अलिवद्वभा यस्य सोऽलिप्रभम् ।

तमोऽन्धकारं तिमिरं ध्वान्तं संतमसं तमम् ॥ १४८ ॥

१० ताम्यति मन्दीपवति चकुरत्र तम । मान्तम् । क्लोबे । अन्य द्वाट्य पवात करोतीति अन्धकारम् । तिम्यते आच्छायतोनेन तिमिरम् । कान्तारे ध्वन्यते ध्वान्तम्^५ । सम मस्यक् प्रकारेण तमः सन्तमसम् । ताम्यतीति तममित्यदन्तम् । क्लोबे । अवतमसम् । अन्धतमसम् । तमिसम् । भूल्याया । भूल्यायम् । दिग्म्बरम् ।

लोहितं गङ्ग माताम् पाटल विशदारुणम् ।

१५ पद्मरन्ते^६ । रोहति जायते शाभात्तु लोहितः । रजयते रक्तम्^७ । आताम्यते कट्टद्यन्तं कर्णेणु आताम्ब्र । पाटयतीनि पाटलः । पाटेगल् । विशीयते विशद् । अुच्छ्रिति द्यन्यव॑ (ति वा॒) रुणः ।

पीतं गौरं हरिद्राभम्

२० हरिद्रारकवर्णं त्रय । पोयते मनोऽनेन पीतम्^८ । गते गच्छ्रिति वर्णविशेषं गौरः^९ । तथा च नाममालायाम्^{१०} –‘गौरं उवेते तु रुणो पीते विशुद्ध च द्रुमस्यपि । विशदे’ । हरिद्रावत् आमा लुविर्यस्य हरिद्राभम् ।

पालादां हरितं हरित ॥ १४९ ॥

हरितवर्णं त्रयः । पलाशस्य वर्णस्याय पालाशः । पलाश इत्याह^{११} –‘रात्रसे । किशुके वर्णं पङ्कशास्याया । हरित्यपि’ । हरिति चित्त हरितम् । हरित् ।

१ पन्यते स्तूयते पाण्डु । ‘पनेदीर्घवृ इति दु । इति हमचन्द्र । २ कर्षति मन इति रामाश्रम । गुर्वर्णं इति नक । ३. ‘रील वर्णं’ । नामुपधेति का० स० कः । ४ कालयति मन इत्यन्यत्र । ५ अय पाठोऽत्र न युक्त । ‘पालाश हरित हरित’ इति पदवस्य टीकायामग्रे द्रष्टव्यः । ६ कृष्णमित्रिलोहिते धूमरूपलशब्दाविति वैशिष्ठार्थं । तदुक्तन् –‘धूमरूपला कृष्णलोहिते’ इत्यमरः । ७। १५। १६। ७. कान्तारप्रदेशादिपु तमसोऽविच्छिन्नानिवेशात्तदाह –‘कान्तारे ध्वन्यते’ इति । सर्वरोगहरतया ध्वन्यते ध्वान्तमिति हेमचन्द्र । ८ अव द्रा रक्ते, त्रयो विशदारुणं इति वन्दशम् । विशद च तद्रपम्, श्वेतविशिष्टकमिन्यर्थ । तदेव पाटलम् । तदुक्तम् –‘श्वेतरक्तसु पाटल’ इत्यमर । ९ ‘रुह वीजजन्मनि प्रादुर्भावे’ । ‘रुह रक्तलो वा’ । पा०उ०स०३।४। इतीनक्, लात्व च वा । १० रजति सम रजयते सम वा रन्मित्यन्यत्र । ११ पीयते वर्णान् पीत । ‘पीद् पाने’ । दिनो इत्यपि । १२. गूरते उद्युद्के मनोऽस्मिन गौर । ‘गूरी उद्यमने’ । ऋज्रेन्द्र इत्युराणादिसंत्रेण व्युत्पादित । ‘ग्र्यते गौर’ इति हेमचन्द्र । ‘रूडसश्लेषणे’ । १३ अनेऽम० २। ४२५ । १४ शा० क० ५२९ ।

हरिणी लोहिनी शोणी गौरी श्येनी पिशङ्क्षयपि ।

पठ् रक्तवणे । “श्येतैतहरितलोहितेऽस्तो न.” अनेन ईप्रत्यये तकारस्य नकारन्च । हरिणी । तथा च हलायुधे—“शुकाभा हरिणी स्मृता ।” हरिता च । रोहति जायते शोभात्र लोहित । रलयोरेक्यम । “श्येतैतहरितलोहितेऽस्तो न.” अनेन ईस्तकारस्य च नकार । लोहिनी जाता । हलायुधे—

“जपाकुसुमसकाशा लोहिनी परिकीर्तिं ॥

शोणते शोणी । गते गौरः । नदादित्वादीः । गौरी । श्यायते गच्छति श्रिय श्येनी । हलायुवे—“श्येनी कुमुदपत्राभा ।” श्येना च । पेशति पिशङ् । ईप्रत्यये पिशङ्की ।

मारङ्गी शवरी काली कल्मापी नीलपिञ्जरी ॥१५०॥

पठ् पञ्च वणे । सारथति गमयति [ब्रह्मवर्णान्] सारङ्गः । ईप्रत्यये सारङ्गी । शवति याति वर्णान् शवर शवलङ्घन् । ईप्रत्यये शावरी । कालयति काली । कलयति वर्णान् । कल्मापी । इः कल्मापी । नील गन्धे । नीलति नालम् । ईप्रत्यये नीली । पिञ्जति पिञ्जर । १० उप्रत्यये पिञ्जरी ।

परागं मधु किञ्जलकं मकरन्दं च कौसुमम् ।

पञ्च कुमुमरेणो । परं प्रकर्पमग्यते सम्भाव्यते पुष्पेण परागः । उभयम् । मन्यते सम्भाव्यते पुष्पेण मधु । उभयम् । कि जलपति किञ्जलकम् । मङ्गलते मण्डयते पुष्पमनेन मकरन्दम् । १५ कुसुम-यद कौसुमम् ।

उपचाराद्रजः पांशुरेणृधूलीश्च योजयेत् ॥१५१॥

चत्वारो धूल्याम् । २ ज रागे । रजत्यनेन रजः । “उत्तिरजिग्रन्थो यष्वत् ॥” । नाक धाक पश्चि नाशने । पश्यते पांशुः । “१२ ब्रह्महितलिपशिन्य उण् ।” रीढ़ गतो । रीयते रेणुः । “दामागीवृत्त्यो चुः” । धूयन धुनोति दृष्टि वा धूति । उपचारात् पुष्परजः । सुमनःपाणुः । पुष्परेणुः लतान्तधूति । २० प्रसवरजः । प्रसूनरेणुः । इत्यादोनि पुष्परजो नामानि ज्ञातव्यानि ।

कलङ्गावद्यमलिनं किञ्जलकं लक्ष्म लाञ्छनम्

निवोधमधमं पङ्कं मलीमममपि त्यजेत् ॥१५२॥

१ अत्र षट्खीलिङ्गवाचकं तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वस्तव्यम्, न तु रक्तवणे । तत्तद्वर्ण-मेदा यथा—हरिणी शुकाभा, लोहिनी जपाकुसुमङ्गाशा, शोणी कोकनदञ्जवि, गौरी हरिंद्राभा, श्येनी कुमुदपत्राभा, पिशङ्की पीतरक्ता । २ “श्येतैतहरितभिरितरोहिताद् वर्णान्तो न” ह०शा० २।४।३६ । ३ “श्येनी कुमुदपत्राभा शुकाभा हरिणी स्मृता । जपाकुसुमङ्गाशा रोहिणी परिकीर्तिं ।” इति पूर्णं श्लोकः । ३ हलायु० ४।५३ । ४ हला० ४।५३ । ५ हला० ४।५३ । ६. अत्र षट्खीलिङ्गवाचके तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम् । तद्भेदो यथा—सारङ्गीशमनीकल्याण्यश्चित्रवर्णा । काली नीलवासिते । पिञ्जरी पीतरक्ता । ७ अत्र परागकिञ्जलकशब्दौ पुष्परजोवाचकौ, मधुमकरन्दशब्दौ पुष्परसवाचकौ, कौसुम-शब्दमत्तुभयवाचकौ, इति विवेक । ८ परागच्छति परमुक्तर्षमगति वेति विग्रहः सरल । ९. किञ्चिञ्जलति, “जल अपवारणे” । बाहुलकाल । किञ्चिञ्जलति जडीभवति इति त्री० स्वा० । १० मकरमपि वृति कामजनकत्वान्मकरन्द । “दो अवखण्डने” । कः । मकरमपि अन्दति वधनातीति वा । “अद्रि बन्धने” । कर्मण्यग् । शकन्वादिः । इति रामाश्रम । ११ का०उ० स० ४।५९ । १२ का० उ० स० १।३ । १३ का० उ० स००।२।७ ।

दश कलङ्के । कल्यते लक्षणेन कलङ्कः^१ । न वर्दं समीचीनम् अवश्यम्^२ । मल्यते धार्यतेऽपयशो-
उनेन मलिनम् । किं कुत्सित, जल्पति किञ्चल्कम् । लक्षयति परं नान्तम् लक्षम् । लाञ्छयतेऽनेन
साञ्छलनम् । निबुध्यते निवोधम्^३ । न अपूर्वो धात्र । न दधातीत्यधमः । “धर्मसीमाग्रीष्माधमाः”^४ ।
“पञ्चयते पङ्कम् । मलिना कदवेण मस्यते^५ परिमाणीकियते मलीमसः । तं त्यजेत् सप्तुरुष ।

५

जनोदाहरणं कीर्ति साधुवादं यशो विदुः ।

वर्णं गुणावलिं ख्याति

सप्त यशसि । जनाना लोकानामुदाहरणं, जनेन लोकेनोदाहियते वा जनोदाहरणम् । कृत
सशब्दे । कृत-“चुरादिश्च^६” इन् । कृतं कारिते हर् । कीर्ति जात । नामिनोर्धा^७ । कीर्ति जातम् ।
कीर्तन कीर्तिः । “कीर्तीषोः क्तिश्च^८” क्तिप्रत्यय । कारितलोप । त्रिषु व्यक्तनेषु सज्जातेषु स्वजातीयाना मध्ये
१० एकव्यञ्जनलोप । एकस्तकारो लुप्यते । सिः । रेक । साधूना सतपुरुषाणा वादः साधुवाद ।
कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । यज देवपूजादिषु । इज्यते यशः । “११ यज शित्तच” अस्मादसन्
प्रत्ययो भवति स च यथ्वत् । जस्य शिः । इकार उच्चारणार्थः । वर्णयते साधुजनेन वर्णं । गुणानामवलि
श्रेणिः गुणाचलि । रुचयते ख्यातिः । व्लोक । अभिरुच्या । समारुच्या ।

अवधानं तु साहसम् ॥१५३॥

१५

साहसे द्वौ । अवधीयतेऽवधानम् । अवदान च । साहते^९ साहसम् ।

प्रेष्यादेशनिदेशाज्ञानियोगाः शासनं तथा ।

घडादेशे । प्रेष्यते इति प्रेष्य । आ समन्ताद् दिशतीत्यादेश^{१०} । निदिश्यते निदिशतीति वा
निदेशा । आज्ञानातीत्याज्ञा^{११} । नियुज्यते नियोगा । शास्यते प्रतिपादते शासनम् । शासु
अनुशिष्टौ ।

२०

सन्देशः प्रिययोः

स्त्रीपुरुषयोः मुखवार्ताया सन्देशा । सन्दिशति^{१२} “सन्देशः । अमरसिहनाममालायाम्”^{१३} –
“सन्देशवाग्बाचिक स्यात्”^{१४}

वार्ता प्रवृत्तिः किंवदन्त्यपि ॥१५४॥

त्रयो नवीनवार्तायाम् । वृत्तिलोकवृत्त विद्यतेऽस्या वार्ता । “१५ प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चावृत्तियो ण”

१ क ब्रह्माणमपि लङ्कयति हीनता गमयतीत्यन्यत्र । २ न वदितु योग्यमित्यवद्य गर्हम् ।
“अवश्यपण्यवयागर्हपश्चित्यानिरोधेषु” इति यत् । ३ नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम् । निबुध्यते
निश्चयेन ज्ञायते कर्लङ्कज्ञोऽनेनेति करणे घञ् । कर्लङ्कज्ञा राजशासनचिह्नहत्वदर्शनात् । ४. का०
उ० सू० १५३ । ५ पञ्चयते दुखमनेन । पञ्च व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । कर्मणि घञ् ।
६ “मसी समी परिमाणे” । पुसि सज्जाया घ । यदा मलोऽस्यास्तीति “ज्योस्स्नातमिक्षे”
त्यादिना मत्वर्थीय ईयस् प्रत्यय । टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्य । तत्र मलिमस इत्यापतेः । ७. का० सू०
३।२।१। ८ कीर्तीषोः क्तिश्चेति निर्देशात् कृत कारिते हर् । ९ “नामिनोर्धोऽकुर्वुर्रोव्यज्ञने”
का०सू० ३।२।१४ । १० का०सू० ४।५।८६ । ११ का०उ० सू० ४।१।६० । १२ सहसि बले भव साहसम् ।
१३ आदेशनम् आदिश्यते वेति विग्रहः । १४ अत्रापि आशायते आज्ञानं वेति विग्रह । १५ सन्दिश्यते
इति कर्मणि घम् न्याययः । १६ अम० को० १।६।१७ । १७. पा० सू० ५।२।१०।१ ।

स्त्रीकलीवे वार्ते च । प्रवर्तते जनोऽनया प्रवृत्तिः । स्त्रियाम् । किं कुत्तित वदत्यत्र किंवदन्ती^१ । वृत्तान्तः । उदन्तः ।

कठोरं कठिनं स्तब्धं कर्कशं परुषं दृढम् ।

षड् दृढे । कठति कृच्छेण जीवति कठोर^२ । कठति कठिनः । स्तम्भोति स्म स्तब्धः । कर्कः सोनोऽयं धातुः । कर्कति करोति निर्दयत्वं कर्कशः । परुषति कुप्यतीति परुषः^३ । कुप कुष रष रोषे । ५ दृह दृहि दृढौ । दृहति स्म दृढः । “परिवृद्धदृढौ प्रभुवलवतोऽ” क्रूरः । कक्षवट । खरः । चण्डः । निष्ठुरः । जरठः । मूर्तिमत् । मूर्तम् । प्रवृद्धम् । प्रौढम् । एधितम् । सर्वे त्रिषु ।

अश्लीलं काहलु फलगु

निस्सारे बचसि त्रय । न श्लीयते न शिल्प्यते सता चित्तम् अश्लीलम्^४ । वचनम् । क शिर आ समन्तात् हलति अशोभमान करोतीति काहलम्^५ । लोहलञ्च । लुह सौत्रः । फल निष्पत्तौ । १० फलति फलगुः^६ । “रजुतर्कुर्वत्पुलुशिशुरिपुष्युलघव ।

कोमलं मृदु पेशलम् ॥ १५५ ॥

त्रयः कोमले । कौ पृथिव्या मलते कोमलम्^७ । मृदु द्वौदे । मृदूनातीति मृदु^८ । पिशति पेशलम्^९ । सुकुमारः । मृदुलम् ।

प्रत्यग्रं साम्प्रतं नव्यं नवं नूतनमग्रिमम् ।

१५

षड् नवीने । प्रत्यग्रति प्रत्यग्रम्^{१०} । सम्प्रति भव साम्प्रतम् । नूते नव्यम्^{११} । नौति नवम्^{१२} । नूयते नूतनम्^{१३} । अग्रे मवम् अग्रिमम्^{१४} । “पृथ्वादिभ्य इमन्वा” । अभिनवम् ।

१ कोऽपि वाद । किम्पूर्वाद् वदेरौणादिको भन्त् प्रत्यय । भन्यान्त् । गौरादित्वान्डीष् । इति रामाश्रम । २ ‘कठिचकिष्यमोर’ । का० उ० स० ४।३७ । “कठ कृच्छुजीवने” । ३ वष्टि-भागुरिरल्लोपित्यपेरल्लोपो नत्वपस्येति थीकोक्तविग्रहश्चन्त्य । रामाश्रमस्तु—“पिर्त्ति पूरयति अल त्रुद्धि करोति । “पृ पालनपूरणयो” । “पैनहि” इत्यादिना उ० स० ४।७५ । उषच् । इत्याह ।” पृणाति पूरयति पर कोपेनेति हेमचन्द्रः । ४. का० स० ४।६।९५ । ५ न श्रिय लातीति अश्लोलम् । कप्तयः । कपिलकादित्वालत्वम् । इति रामाश्रमः । न श्रीरस्यास्तीति सिध्मादित्वान्मत्वर्थीयो ल । ६ काहलोऽस्तुवगिति हेमचन्द्र । ७ फलति विशीर्यते इत्यन्यत्र । ८ का० उ० स० १।१। इन्युप्रत्यय गश्च । ९ कौ पृथिव्या मलते धारयति श्रियम् इत्यर्थ । “मल मल्ल धारणे” पचाद्यन्त् । परमेव कुमल इत्येव सिद्धति । वस्तुतस्तु ‘कोमल’ शब्दस्य सिद्धि-प्रकारान्तरेणैव साधनीया । कौतीति कोमल इति विग्रहोऽभिधानचिन्नामणौ । काभ्यने जनैः इत्यन्यत्र । १० मृद्यते इति कर्मणि कु-प्रत्ययो न्याययः । ११ पिंशल्येऽक्षेत्रेण सर्व करोतीति । श्रौणादिकोऽलच् । रामाश्रमस्तु—‘पिश समाधौ’ पेशन पेश समाहितचित्तता, सोऽत्यास्तीति सिध्मादित्वादलच् इत्याह । पेशलशब्दस्य दक्षार्थो मुख्यः कोमलाथो गोणः । तदुक्तम्—“दक्षे चतुरपेशलपटवः सूत्थान उप्याश्च” इत्यमरः । २।१०।१९ । “दक्षस्तु पेशः” इति अभिभ० चिभ० ३।४८ । १२ “अग्र गतो” । ड । प्रतिनवमप्रमस्येति द्वीरस्वामि-रामाश्रमौ । प्रतिगतमग्रमनेनेति हेमचन्द्रः । १३ ‘गु स्तवने’ । अचो यत् । १४ नूयते नवम् । अदोदप् । एव कर्मणि विग्रहो युक्तः । १५ नवमेव नूतनम् । “नवस्य नूरादेशस्तनप्तनप्लाश्च प्रत्यया वा० ५।४।३० । इति तनप् प्रत्ययो नूरादेशश्च । इत्यत्र । १६ ‘अग्रादिपश्चाडिमच्’ वा० इति डिमच् । नात्र पृथ्वादिभ्य । इमन्, तस्य भावकर्मणोर्विधानात् पृथ्वादौ पाठाभावाच्च । सत्यपि । अग्रिमन् इत्य-निष्ठरूपापते ।

नूत्नश्च । यर्वे निषु ।

पुराणं जठरं जीर्णं प्राक्तनं सुचिरन्तनम् ॥ १५६ ॥

पञ्च पुरातने । पुरा भवम् पुराणम् । जठ इति सौत्रोऽय धातु । जठतीति जठरम्^१ । जीर्णते जीर्णम् । प्राक् पूर्वं भवम् प्राक्तनम् । सुषु चिर भव सुचिरन्तनम् । प्रतनम् । प्रतनम् ।

५ भो रे हं हो हयामन्ते

एते शब्दा आमन्त्रणार्थे वर्तन्ते । भू सत्तायाम् । भोः^२ । रेपु स्वगतौ । रे । हनु हिसागत्योः । ह । हु दाने । हो । हि गतौ । हे ।

कश्चित् किञ्चन संशये ।

सन्देहार्थे^३ द्वो शब्दौ वर्तते । अविशेषाभिधाने चिद्वनशब्दौ अवगतव्यौ । तथा चोत्तम्—
१० “किम् सर्वविभवत्यन्ताचिक्षनो” । कश्चित् । कश्चन । कौचित् । कौचन । केचित् । केचन इत्यादि ।
क्षिया काचित् काचन इत्यादि । कलावे किछित् । किञ्चन । इत्यादि ।

‘द्राक्षणेऽह्नाय’ मपदि^४

शीघ्रार्थे त्रयं शब्दा वर्तन्ते ।

निषेधे मा न खल्वलम् ॥ १५७ ॥

६१ निषेधे चत्वारं शब्दा वर्तन्ते ।

उच्चैरुच्चावचं तुज्ञमुच्चपुन्नतमुच्छ्रतम् ।

पङ्क दीर्घे । उच्चीयते उच्चैस्तु । अ-ययः । उच्चं च अवच च उच्चावचम् । तुज्ञति दैर्घ्यमादत्ते तुज्ञम्^५ । उच्चीयते उच्चम् । उन्नमत्युन्नतम्^६ । उच्छ्रीयते उच्छ्रतम्^७ । प्राणु^८ तालव्यः । उदग्रम दीर्घम् । आयत च ।

२० नीचं न्यगातनं कुब्जं नीचैर्हस्य नयेन्परम् ॥ १५८ ॥

पङ्क हत्वे । निचीयते नीचम्^९ । न्यवतीति न्यक् । आतन्यते आतनम्^{१०} । कौति व्यावि कुब्ज ।

^१ यद्यपि जठरशब्दो जीर्णे प्रसिद्धो जठरशब्दमृदरे, तथापि क्रचिजठरशब्दोऽपि जीर्णे पठितस्तदाशयेनाह—जठतीति जठरनिति । यटुकम्—‘जठरः कुक्षिद्वद्यो’ अनेऽ स० ३।५५ ।
^२ भातीति भोस् । डोसप्रत्यय । यथा—भो भार्गव । रिणातीति रे । विच् । यथा रे चेटा । हं हो, इति पृथक्प्रभवीधनद्वयसुक्तम् । परन्तु नाटकादौ ‘ह हो’ इत्यवण्ड एव सम्बोधने प्रयुज्यते । ह जुहोतीति हहो । यथा हहो तिष्ठ सखे । हिनोति हे । ‘हि गतो वृद्धाँ’ । विच् । यथा हं हेरम्ब ।
^३ अविशेषार्थे इत्याशयः । ४ द्राति द्राक् । ‘द्रा कुत्साया गतौ’ । बाहुलकात्कः । अकार इत् । स चासौ अणो द्राक्षणा । ५ आहवनम् आहाय “इनुद् अपनयने” । धज् । पृष्ठो-दरादित्वाद् वस्य य । ६ सम्पद्यते सपदि । ‘पद गतौ’ । इन् । पृष्ठोदरादित्वात्समोन्त्यलोप । ७ तुज्ञति दैर्घ्यं पालयतीति । धज् । कुत्वम् । ८ उच्चमति स्म उच्चतम् । ९. उदर्घ्वं श्रयते उच्छ्रतम् । १० प्राणुते दैर्घ्यं प्राणु । ‘अशूद् व्यातो’ । ११ निकृष्टामो लक्ष्मीं चिनोतीति । डः । इति रामाश्रम । निम्नमश्चति, नीचैरुच्चयस्य वा । अर्च आदित्वादच् । अव्ययाना भमावे दिलोप । १२. नात्र प्रमाण-सुपलव्यम् । १३. कौति व्याधिविशेषं ब्रूते सूचयति । कौ पृथिव्याम् उब्जति ऋजूभवति । ‘उज्ज आर्जवे’ । अच् । शक्त्यादि । कु ईषद् उब्जमार्जवमस्य वैति रामाश्रम ।

न्युजश्च । निचीयते नीचैस् । हसति हस्त ।

अमा सह समं साकं मार्दं सत्रा सजूः समाः ।

अष्टौ सधैः । अमति अमा । सह हन्ति गच्छति सह । सह मिनोति समम् । सह अक्ति गच्छति साकम् । सह शृद्धम् सार्ढम् । सह प्रायते सत्रा । जुषी प्रीतिसेवनयोः । जुप् सहपूर्व । सह जुषते सजूः । किंच वेलोपः । सि । व्यञ्ज्र० । सिलोप । समन्ति समा । सह मान्ति वर्तन्ते ऋतवो ५ यामा वा । स्त्रीबहुत्वे ।

सर्वदा सततं नित्यं शश्वदात्यन्तिकं भदा ॥१५॥

पट् नित्ये । सर्वस्मिन् काले सर्वदा । ‘काले कि’ सर्वयदेकान्येभ्य एष दा’ । सतत्यन्तेम् सततः सन्ततम् च । नियच्छति नित्यम् । शमलीति शश्वत् । अत्यन्ते भवमात्यन्तिकम् । सदा इति निपात । सर्वशब्दात्परो दाप्रत्ययो भवति सर्वस्य समावश्च । सर्वस्मिन् काले सदा । मना- १० तन् सदातनम् । त्रिवम् । शाश्वतम् । शाश्वतिकम् । अनश्वरम् । अविनश्वरम् । सर्वे त्रिषु ।

वियोगं मदनावरथां विग्रहं पल्लकं विदुः ।

चत्वारो विरहे । वियोग वियोग । मदनस्य बन्दर्यस्त्यावस्था मदनावस्था । विरह्ण विरहः । मल मल्ल घारणे । मल्लस्थाने चित्पल्ल इति पठन्ति । पल्लते पल्ल । त्वार्य क पल्लक ।

प्रेमाभिलापमालभ्य रागं स्नेहमतः परम् ॥१६॥

पञ्च स्नेहे । प्रियम्य भव कर्म वा प्रेमा । प्रिय १ स्थिरेति प्रादेश । अभिलाप्यते उभित्तापः । लय श्लेषणकीडनयोः । आलभ्यम् २ । ३ ‘मक्षिस्विपवर्गान्ताच्च’ । रञ्ज रागे । रञ्ज । रञ्जन रागः । भावेष्य० । रञ्जेर्भाविकरणयोः ४ पञ्चमलोप । अस्यो० दीर्घ । ५ चज्ञो ५ कगो तुष्ट वानुवन्धयोः । जकारगाकार । प्र००८१ । रेफः । अथवा रञ्जयतेऽनेन राग । ‘व्यञ्जनाच्च’ ६ करणे वन् । प्र० ७ ‘रञ्जेर्भाविकरणयोः’ । पञ्चमलोप । अत्यो० दीर्घ । चज्ञो कगाविति जकारगकार । स्तिरहते स्नेहः ।

संहितं सहितं युक्तं मंपूक्तं संभृतं युतम् ।

मंस्कृतं समवेत च प्राहुरन्वीतमन्वितम् ॥१६॥

१ न माति सह मापिनामनेस्त्वान्मेयता न गच्छति । डप्रत्यय । कप्रत्ययो वा । २ ‘व्यञ्जनाच्च’ का० स० २१४६ । ३ ‘मसी समी परिमाणे’ । सम धातु । पचाद्यच् । सममिति मान्तम- त्वयम् । सहार्थकमत्रोक्तम् । तद्भिन्नः समा शब्दो वर्षव चको न तु सहार्थवाचक । तदुक्तम्—‘हयनोऽन्त्री शरत्समा.’ इत्यमरः । यतोऽुत्पिन्नये एतत्य प्रामाण्य चिन्त्यम् । सह मानित ऋतवो यामामिति विग्रहोऽपि वर्देवाचकसमाशब्द एव सङ्क्षिप्ते । तत्रैव ऋतुना सहमानात् । ४ का० स० २१४३४ । ५ ‘तु विस्तारे’ । कः । ६ ‘समो वा हिततयो’ इति नलोप । ६ त्यन्तेऽपि विन्यमिति वा० निशब्दात्यप् । नियच्छति नियत भवतीत्यर्थ । ७ अत्र शशीति वलु युक्तम् । शश लुप्तगतौ । ब्राहुलकादवर् । ८ सनातनादिशब्दाना विशेष्यनिव्वाना यथोक्तशश्वदादिशब्दसमानार्थतया टीकाकृतोक्तिर्न सङ्क्षिप्ते । ९ मल्लकपल्लकशब्दयोर्विग्रहार्थते प्रमाणान्तर नोपलब्धम् । १० पा० स० ६१४१५७ । इति प्रादेश । इमनिच्चप्रत्यय । पूर्वादित्य इमनिज्वा इति । ११ आलभ्यशब्दस्य रागार्थे कोपान्तर- सवादो नोपलब्ध । १२ का० स० ४१२११ । १३ का० स० ४११६८ । १४ का० स० ४१६१५ । १५ का० स० ४१५१९ ।

दश सहिते । सहीयते संहितम् । सहितम् ।

“^२कुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि ।

समो वा हिततयोर्मासस्य पचि युद्धब्रोः॥”

५ योजनं युक्तम्^३ । पृच्छी सम्पर्के । पृच् । सम्पूरणकि स्म सम्पूरकम् । “गत्यर्थाकर्मक०^४” इति कर्तरि कप्रत्ययः । “चोऽहोऽहो”—चत्य क । उभिभ्यते स्म सम्भृतम् । वौतिस्य युतम् । सस्कियते स्म सस्कृतम् । समवेयते स्म समवेतम् । अन्वीयते स्म अन्वीतम् । अन्वितम् ।

वर्त्माऽध्वा सरणिः पन्थाः मार्गः प्रचरसञ्चरौ ।

१० सप्त मार्गे । वर्तन्ते प्रतिपदान्ते जना येन तत् वृत्तम् । नान्तम् । “^६सर्वघातुभ्यो मन्” । गच्छति अतति चलति अनेन नान्तोऽध्वा^५ । सरत्यनया सरणि । दन्ततालव्यः । सुतिश्चास्त्रियाम् । द्वौ । पतन्ति गच्छति अनेन पन्था^६ । नान्त । इन्तोऽपि । पथः । पथ । पथान् । पन्थ इत्यपि । एते पुंसि । मार्जनं मार्गयन्त्यनेन वा मार्गः^७ । पुंसि । प्रक्रेण चरत्यनेनेति प्रचरः । सञ्चरत्यनेनेति सञ्चरः । पद्धतिः । एकपदी । वर्तनी । अयनम् । पदवी । पद्या । निगम ।

त्रिमार्गनामगा गङ्गा

१५ मार्गपूर्वं त्रिशब्दे प्रयुज्यमाने गङ्गानामानि भवन्ति । त्रिवर्मा । त्रयध्वा । त्रिसरणि । त्रिपथा । त्रिपचरा । त्रिसञ्चरा ।

घोपो गोमण्डलं ब्रजः ॥१६२॥

त्रयो गवा स्थाने । घोषन्ते ^१गोवोऽत्र घोप । गवा मण्डलम् गोमण्डलम् । गावो । ब्रजन्त्यत्र ब्रजः । गोकुलम् । गोष्ठम् ।

मृद्गो द्वितिहरिनाथहरिस्तिर्यक्च भृद्गणः ।

२० पञ्च महिषादिके । पर श्रुणाति हिनस्तीति श्रुद्गः^{११} (म) । त्रित्रु । द्वृत्रु । हरणे । ह द्वितीयवृ । द्विति चर्मप्रसेवक जलभाण्ड हरति द्वितिहरि । “हरतेर्द्वितिनाथयोः^{१२} पशो” इत्यत्यय । नामन्तगुणः । नाथ स्वामिन हरतीति^{१३} नाथहरि । “हरतेर्द्वितिनाथयोः पशो” । तिरोऽुच्यतीति

१ सहीयते इति विग्रहो न युक्त । सम्पूर्वस्य हाकस्यागार्थकत्वात्प्रसुतार्थाप्रतीते । अतः सन्धीयते स्म सहितम् । सम्पूर्वादधात्रः कप्रत्यये धात्रो हिरिति हादेशः । २ ६।१।१४४ का० स० । ३ युज्यते स्म युक्तम् । ४ का० स० ४।६।१४९ । ५. का० स० ४।६।५६ । ६ का० उ० स० ४।२८ । ७ अतति सन्तन गच्छति जनोऽन अध्वा । “अत सातत्यगमने” । “वनिस्तस्य एः” का० उ० स० ६।५९ । इति विनिप्रत्ययः तकारस्य धकारश्च । “अत्ति बल पथिकानाम् । अतेर्थ श्रेति क्लिप् धशान्तादेश ।” इति रामाश्रम । ८, “पःलृ पतने” । पतेस्थश्रेति थोऽन्तादेशश्रेति ग्रन्थाशयः । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथिमथिभ्यामिनि । इति रामाश्रम । ९ मृडयते विनृणीक्रियते पादै । मृज् शुद्धौ । धञ् । वृद्धि । कुर्वं च । मार्यते इति वा । “मार्ग अन्वेषणे” । १० वासन्ते शब्दायन्ते इत्यर्थं “वासु शब्दे” । ११ “शृङ् शृङ् द्वाऽद्वानि” का० उ० स० १।४।४८ । “शृङ् हिसायाम्” । अङ्गप्रत्यये निपातः । शृङ् गवादीना विपाणमिति तत्रैव दुर्गः । ततः शृङ्गमस्यास्तीति अर्शं आदिभ्योऽच् । एव सति महिषादिसज्जा सगच्छते । अजभावे विशाणमेवार्थं स्यात् । १२ का० स० ४।३।२६ । १३. नाथ नासारजुं हरतीत्यन्यत्र ।

तयश्चः । शृणातीति शृङ्गम् । “शृङ्गभृग्नाङ्गानि” एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शृङ्गानि विद्यन्ते येषा ते श्रुक्षिण ।

गौश्चतुष्पातपशुः

त्रयोः^२ गवि । पूजा गच्छतीति गौः । चत्वारं पादा यस्यासौ चतुष्पात् । स्पश्च इति सौत्रो धातु । स्पशते [बाधते] इति पशु । ^३अपश्चादयः—“अग्निदुष्टुपुष्टुहरिदुमितद्वशतद्वशकुधनुम् । युपशुदेवयुजटायुक्तमारयुम् गयवः” एते शब्दा कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

तत्र महिषी नाम देहिका ॥१६३॥

द्वौ महिष्याम् । तत्र तस्मिन् मवते ^४ महिप । नदादित्वादी । महिषी । दिव्यते उपचायते दुर्घेन देहिका” ।

कृती नदीष्णो निष्णात् कुशली निपुणः पदुः ।

१०

क्षुण्णः प्रवीणः प्रगल्भः कोविदश्च विशारदः ॥१६४॥

एकादश कुशले । प्रशस्त कृत कर्मस्य कृती । नथा स्नातीति नदीष्ण । “निनदीयो^५ स्नाते कौशले” इति पत्वम् । नितरा स्नानाति स्म शुचित्वमानोति स्म निष्णात् । कुत्सित श्यति कुशल । अथवा कुशान् लाति कुशलः । निपुणतीति निपुणः । शोभनकर्मत्वात् । पटति जानातीति पदुः । क्षुण्णति स्म क्षुण्ण । क्षुदिर् सम्पेवणे । प्रकृष्टा वीणास्य प्रवीणः इति मुख्यार्थं परित्यज्य १५ निपुणे रुदा । तदाहु—

“निस्तु लक्षणा कैश्चित्सामर्थ्यादभिवानवत् ।

क्रियतेऽद्यतनै कैश्चित्कैश्चिन्नैव त्वशक्तिः ॥”

प्रगल्भते प्रगल्भम् । गल्भ धार्षयेण । को वेत्ति तदभिप्रायमिति निरुक्त्या कवते कोविदः^६ । विशेषेण पाप शृणति प्रिशारदः । क्षेत्रज्ञः । कृतहस्त । द्रुतमुखः । कृतकर्मा । दक्षः । शिक्षित । २०

विदग्धश्चतुरः

द्वौ चतुरे । विद्यते ^७ विदग्धः । पुरुषार्थान् चतते याचते चतुर ।

धूर्तश्चादुकृत् कितवः शठः ।

१ “तिर्यन्च” इत्यकारान्तपाठश्चिन्त्य । वप्रत्ययान्तेऽन्ततावेव “तिरसस्तिर्यलोपे” इति तिर्यदेश इति चकारान्तसौव युत्तत्वम् । चकारान्तत्वे चापाक्षरपादे एकाङ्गरोनत्वेन मूले छन्दोभद्रश्च । न चाकारान्तस्तिर्यश्चशब्द केनाऽयन्यकोषकरेण पश्वर्थेऽभिमत । तदुक्तम्—‘पशुस्तिर्यद्वचि’ अ० चि० ४२२१ । २ सामान्यविशेषार्थत्वादिष्ठा पर्याप्त्यवाभावात्त्रयो गवीति पाठशिच्चन्त्य । गोशब्द पशुविशेष बलीवर्ददौ । चतुष्पातपशुशब्दयो र्वा सर्वपशुवाचकत्वात्पायायत्वमिति विवेकः । ३. का० उ० स० ११५ । ४ “महिद् वृद्धौ” । महते वर्धते वा विशालकायवान् । श्रीगादिकषिप्तच् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न नुम् । इत्यन्यत्र । ५ नात्र कोषान्तरसवाद । ६ पा० स० ८३८९ । ७ अस्य पूर्वार्थ ध्वन्यालोकलोचने १६ कारिकाटीकायामेवमुपलयते “निरुद्धालक्षणाः कारिंचत्सामर्थ्यादभिवानवत्” इति । उत्तरार्थस्तु न समुपगत । ८ कौति प्रतिपादयति धर्मादि कौविदः । कुशातोर्बिन् । वेत्तीति विद् । इयुपधेति क । कोविदः । अथवा कवि वेदे विदा यस्येत रामाश्रमः । ९ विशेषेण शारदोऽवृष्ट । प्रत्यग्रो वा विशारदः । इति हेमचन्द्रः । विशिष्टो विपरीतो वा शारदः इति रामा० । १० विशेषेण मैर्वचित दहति स्म विदग्धः ।

चत्वारो धूर्वे । धूर्वति स्म हिनस्ति म्म सदाचार धूर्त् । चाटु करोतीति चाटुकृत् । कितबोऽस्त्वयेति कितव्य । शठयतीति शठः । दण्डाजिनक । कुहक । कापंटिक । जालिक । कौसु
तिकः । व्यञ्जक । मायावी । मायी ।

कापि नागरिको झेयः

५ कापि कुनापि झेय जातव्य । नगरे भवो नागरिक ॥

गोत्रसज्जाङ्कनाम तत् ॥१६५॥

चत्वारो नाभिन । गवा वाण्या स्वाचारेण त्रायते रक्षति पालयति गोत्रम् । मजान सज्जा ।
अङ्ग च नाम च सपाहारत्वादेकवचनम । अङ्गयने लक्ष्यने अङ्गम् । नमनम नामम् ।

मुग्धो मूढो जडो नेढो मूर्खश्च कद्वदः ।

१० सप्त मूर्वे । वर्मकायेषु मुहूर्ति सशय प्रानतीति मुग्ध । मुहूर्ति स्म मृढ ।
गन्धर्वस्यादिना कः । हो ट ॥ १ ॥ १० टं दो लोप० । तिः । रेफ । जडति न पुण्य गच्छन्ति ॥
जडः । जालमश्च । न ईङ्गयने न स्त्रयते केनापि नेड । मूटु बन्धने । सूयते मूकः ॥ २ मूकादय—‘मूक्यूक्-
यन्नकपृथुक्वृक्षुकभूकाः’ एते कप्रशयान्ता निपात्यते । मुहूर्ति कायेषु मूर्खः । ‘मुहू-’
मूर्खः ॥ कुतिसत वदति कद्वदः । विवेयः । वालिशः । वाडिशः । वाल । ३ वद्वर । मलि ॥ १ ॥
१५ ४ नालीक । पणुः ।

स देवानां प्रियोऽग्राज्ञो मन्दः

त्रयो मन्दः । देवानां प्रियः ॥ २ ॥ ग्रथि (निथ)ल इत्यर्थः । न प्राज्ञ अप्राज्ञः । कार्येषु मन्दते
स्वपित्तावेति मन्दः ।

१ कुसुत्या चरतीति कोसुतिक । तेन चरतीति ठक् । २ धूर्तसामान्यार्थ इत्यर्थ ।
३ वचसा आचारेण च स्वरूप रुप रक्षयने । नामाऽपि स्वानुरूपाचारवचोन्यामान्मान प्रतिश्व-
रयनि । रामाश्रमस्तुदग्ययने शब्दयते उच्चार्यते इति व्युत्पन्नाह । “गुद् शब्दे” । ४ तदुक्तम्—
‘मजा स्वाच्छेतना नाम हस्ताद्यार्थसूचना’ इति । अम० को ३।३।३३ । ५ अद्वितयतेनेति शेषः ।
नामा जनोऽङ्गितो भवति । ६ नमन नामेत्यसङ्कृतम् । भावे गति प्रणामार्थक दन्त्यनामशब्दसाङ्गवापत्तेः ।
अतः भा अन्यासे” भ्नायते उन्त्यतेऽुभिधीयतेऽयोऽुनेनेति विग्रहो न्याय । नामन् सीमन् इति निपा-
तित । ७ अत्र “मुहार्दीना वा” का० सू० २।३।४६ । इति तकारस्य धकारः । ८. “तवर्गस्य षट्कर्गा-
द्वृग्” का० सू० ३।८।५ । इति धस्य द । ९ “डं टलोपोदीर्घश्चोपधाया.” । का० सू० ३।८।६ । इति
दलोपो दीर्घश्च । १० जलति तीव्रो न भवति । डलयोरैक्ये जड इति हृमचन्द्रः । ११ नेडशब्द, कोषा-
न्तरे नोपलभ्यते । एडमूकशब्दोऽवडमूकशब्दो वा वाक्मुतिवर्जितार्थे लभ्यते । तदुक्तम्—“एडमूक्तु
वम्तु श्रोतुमशिक्षिते” इति । अम० को० ३।१।३८ । “एडमूकौ त्वावाकश्रुतो” अभि० चि० ३।१२ ।
अतोऽत्रापि अनेडमूक इति पाठ, सम्भाव्यते । जडविशेषवाचकत्वेऽपि तस्य सामान्याभिप्रायेण जडे
प्रयोगः अनेडशब्दो वा विधिरार्थः सामान्याभिप्रायेण प्रयोग । १२. का० उ० सू० २।५८ । १३
का० उ० सू० ४।१७ । १४ नात्र प्रमाणान्तरसुपलब्धम् । १५ अत्रापि नान्यप्रमाणम् । १६ अत्राऽने-
कार्यसदग्रहः ३।५।४ । प्रमाणम् । तदुक्तम्-नालीकोऽज्ञे शरे सन्धे नालीकं पञ्चनन्दने” इति । १७
‘देवानां प्रिय इति च मूर्वे” वा० ३।३।२१ । “षष्ठ्या अलुक्” इति पा० सूत्रे ।

धीनामवर्जितः ॥ १६६ ॥

धीवर्जित । बुद्धिवर्जित । प्रतिभावर्जित । प्रशावर्जित । मनीषावर्जित । धिषणावर्जित ।
मतिवर्जित । सख्यावर्जित । इत्यादीनि सूखनामानि भवन्ति ।

षाष्टिकः कलमः शालिर्वीहिः स्तम्बकरिस्तथा ।

चत्वारं शालिभेदे । षष्ठिरात्रेण पञ्चन्ते षाष्टिका^१ । षष्ठिदिवैरुतपन्ना हत्यर्थः । ५
कलयति पुष्टिमनेन कलमः । शालते घान्येषु शालि । अथवा सहालिना अमरेण युतः सालि । वर्हति
वर्धते वीहिः ।^२ स्तम्बकरि ।

वत्सः शकृत्करिजातिः षोडन् षट्दशनः स्मृतः ॥ १६७ ॥

चत्वारो वत्से । मातरमभीक्षण वदति वत्सः । शकृत् करोतीति शकृत्करिः । (इ) । “स्तम्ब-
शकृत्करित” वीहिवत्सयोरुपसख्यानादिन् । षट् दन्ता यस्य स षोडन् । “समासे दन्तदशाघासु^३ १०
षष्ठ उत्त दधोर्डौ” षट् दशनाः यस्य स षट्दशनः ।

शौण्डीरो गर्वितः स्तब्धो मानी चाहंयुरुद्धतः ।

उद्ग्रीव उद्धरो द्वसः ।

नव गर्विते । शौण्डीरो गर्वित शौण्डीर । “कृशौण्डम्य द्वैर्” । गवोऽहंकार संजातोऽस्य
गर्वित । तारकितादिदर्शनात्सजाते इत्येति इत्यच् । स्तम्ब्यते स्म स्तब्धः । मान पूजादिलक्षणो गवो विद्यते^{१५}
अस्य मानी । अहम् अहकारोऽस्त्यस्य अहयु । “उर्णाऽहशुभ्यो युः” । उद्धन्यते रूपेण उद्धतः^४ । उद्
ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य स उद्ग्रीवः । उद्धरति गर्वेणान्यम् उद्धर । दृष्ट्यते द्वसः ।

नीचश्च पिशुनोऽधमः ॥ १६८ ॥

त्रयो दुर्जने । नितरा पाप चिनोति नीच^५ । मैत्री पिशिति मैत्रै पेशयति वा पिशुनः^६ । तालम्ब ।
पिनष्टि वा पिशुनः । “पिशुनफाल्युनौ” नज्पूर्वो घात् । न दधातीत्यधमः । “१० व्र्ष्मसीमाग्रीष्मा-^{२०}
धमा” । दुर्जन । क्षुद्र । कर्णजप । दोषग्राही । द्विजिह ।

चौरैकागारिकस्तेनास्तस्करः प्रतिरोधकः ।

निशाचरो गूढनरो हेरिकः प्रणिधिश्च सः ॥ १६९ ॥

“नव चौरे । चौरयतीति चोरः । स्वार्थेऽुणि चौरश्च । एकागारं प्रयोजनमस्येत्यैकागारिकः ।

- १ “षष्टिकाः पष्टिरात्रेण पञ्चन्ते” पा० ५।१।९० । इति कन् प्रत्ययो रात्रशब्दलोपश्च ।
२ स्तम्ब करोतीति, स्तम्बकरि । “इः स्तम्बशक्तोः” । का० सू० ४।३।२५ । इति कुञ्ज इप्रत्यय । ३
का० सू० ४।३।२५ । ४ का० उ० सू० ३।४८ । ५ “उर्णाऽहशुभ्यो युः” इति है० सू० ७।२।१७ । ६.
उत्कष्ट हन्ति गच्छति हिनस्ति वा० उद्धत इति हेमचन्द्रः । ७ हस्तवर्युय शब्दो गतः । तत्र न्यज्ञतेति
विग्रह उक्तः । अत्र पिशुनार्थानुरोधेन विग्रहभेदः । निष्पूर्वकाच्चिनोतेर्बाद्युलकाङ्गः । उपसर्गदीर्घश्च ।
अन्यत्र तु निकृष्टमञ्चतोति विग्रहः । ८ पिशात्येकदेशेन सूचयति “क्षुधिपिशिमिथ्यः कित्” उ० सू०
३।५। इत्युनन् । पिशुनयति अपिशुनति वा । “अपिश्यति खण्डयतीति भोजः” इति हेमचन्द्रः ।
९ का० उ० सू० २।६। १० का० उ० सू० १।५६ । ११. चौरादयो निशाचरान्ताः षट् चौरे । गूढन-
रादयः प्रणिष्यन्तास्त्वयो गुमचरे । इति पाठ उचितः । तदुक्तम्-“हेरिको गूढपुरुषः । प्रणिषिः”-
अभिः० चि० ३।३।७ ।

स्तेनयति स्यायति वा स्तेन.^१ । उभयम् । तस्यति परद्रव्य क्वयं नयति तरकर । “तसे,^२ करः” । अथवा कृज् तत्पूर्व । तत्करोतीति तत्करः^३ । तदाच्यृ । नाभ्यन्तगुणः । रुदित्वात्स्य सकारः । प्रतिक्षणद्वि
मागं प्रतिरोधकः । निशा चरतीति निशाचरः । गृदश्चासौ नरः गृदनरः । हिनोति परराष्ट्र गन्छति
हैरिकः । प्रकर्णेण निरां गुप्तो धीयते ध्रियते वा प्रणिधि । दस्युः^४ । परास्कन्दी । मलिम्लुचः ।
५ मोषक । प्रतिमोषकः ।

प्रस्तरोपलपाषाणदृषद्वातुः शिला घनः ।

प्रस्तुणात्याच्छादयति “प्रस्तर । काठिन्यमुपलाति उपलम् । उभयम् । पिनष्टि सर्वे
०पाषाणः । पाषाणश्च । दणाति चूर्णयति द्रियते आद्रियते वा कार्यर्थ दृषत् । ख्रियाम् । दधाति धातु ।
शिनोति तनूकरोति ०शिला । शिली च^{११} । ख्रियाम् । हन्यते ०घन । अशमन् । ग्रावत् । पुलकश्च^{१३} ।

१०

तत्र जातमयो लोहम्

द्वौ लोहे । तत्र तस्मिन् पाषाणे जातम् उद्भवम् तत्रजातम् । प्रस्तरोद्भव । उपलोद्भवः ।
धातुद्भव । दृषदुद्भव । शिलोद्भवः । घनोद्भवः । इत्यादि लोहनामानि भवन्ति । अयते सर्वविकार
सान्तम् अय । लुनाति सर्वे लोहम् ।

शातकुम्भं नयेत्परम् ॥ १७० ॥

१५

तत्र पाषाणे उद्भवानि सुवर्णनामानि भवन्ति ।

क्षामं शान्तं कृशं क्षीणं हीनं जीर्णं च वैरिणाम् । शीणविसानं दूनं च

नव कृशे । क्षायति स्म क्षामम् । शाम्यति स्मशान्तम् । कृशम् । क्षीणम् । हीनम् ।

१ “स्तेन चौर्णे” । चुरादिः । पचाद्यच् । २ का० उ० स० ६।३ । ३ “तदाद्याद्यन्तानन्त-
कारबहुआहर्दिवाविभानिशाप्रभाभाश्चिक्रक्तृनान्दीकिलिपिलिविचलिभक्तिचेतजङ्घाधन्वरहःसद्ग्र्यासु च”
का० स० ४।३।२।३ । इति कृत्तप्रत्ययः । ४ दस्युप्रभृतयः प्रतिमोषकान्ताश्चौरपर्याप्ता न तु
गुप्तचरपर्याप्ता । गुप्तचरपर्याप्ता-यथार्हवर्णः । अगर्सर्प । मन्त्रविद । चरः । वार्तायन । स्पशः ।
चारः । ५ “तत्त्वं शाच्छादने” । पचाद्यच् । ६ अथवा पलतीति पलः । ओः शम्भो पलो वोपल ।
७ “पिष्टु सञ्चूर्णने” । बाहुलकादानच् । पूरोदारादित्वादिकारस्याकार । “पष बाधे ग्रन्थे च” ।
इत्यश्चेति घञ् । पषत्यनेनेति । अणतीत्यण । “अण शब्दे” । अच् । पाषश्चासावणश्चेति विग्रहोऽप्य
न्यत्र द्रष्टव्य । ८. “दणाते पुग् हस्तश्च” ति सातुः । ९. “धातुलु गैरिकम्” अभिं० चिं० । “धातुर्मन-
शिलाद्यद्रेगैरिकन्तु विशेषत” अभ० को० । इत्यादिकोपग्रामाणत सामान्यप्रस्तरपर्याप्तेऽस्य पाठोऽयुक्त ।
१०. शिनोतीति तालव्यशिधातुरुं कचिदुपलभ्यते । “शो तत्करणे” । तस्य शयतीति रूपम् । तनूकरो-
तीत्यर्थ । तत् शिलेति निपातो बाहुलकादैणादिकायेन समायाति । रामाश्रमादिव्युपत्तिकारैस्तु “शिल
उञ्ज्ञे” शिलतीति शिला । इगुप्तेति क इत्युक्तम् । तत्रान्तरतम्यं मुवीभिविचारणीयम् । १' उदुम्बरश्चाय
शिली शिला चापि शिलि स्मृत । इति कल्पद्रुकोषवाक्यमत्रोपोद्वलकम् । १२ “मूर्तौ घनिश्च” का० स०
४।५।५।०। हन्तेरत्र घनादेशश्च । १३. तदुकतम्—“पुलक कृषिमेदे स्यान्मणिदोषे शिलान्तरे । गजान्पिण्डे
रोमाज्ज्वे गल्वर्कैरितालयोः ।” चिं० को० का० व० ११६ ।

जीर्णते स्म शीर्णम् । शीर्णते स्म शीर्णम् । अवस्यते अवसानम्^१ । दूयते स्म दूनं च । हे राजेन्द्र, तव वैरिणां शत्रूणा भवतु इति प्रयोजनीयम् ।

धैर्यं शौर्यं च पौरुषे ॥१७१॥

त्रयः^२ पौरुषे । धीरस्य भावो धैर्यम् । शूरस्य भावः शौर्यम् । पुरुषस्य भावः पौरुषम् ।
युष्माकं भवतु इत्यध्याहार्थम् ।

क्षिप्राशुमङ्गवरं शीघ्रं सहसा झटिति द्रुतम् ।
तूर्णं जवः स्यदो रंहो रयो वेगस्तरो लघुः ॥१७२॥

षोडश^३ वेगे । क्षिपति^४ निरस्यति क्षिप्रम् । रक्षप्रत्यय उणादौ ज्ञातव्य । अशनुते आशु । कृबापाजीति उण् । मज्जति मर्ति वा मङ्गस्तुः^५ । इयर्ति मान्तमव्ययम् अरम् । अदन्तं च अरम् । शेते कामे शीर्ण (शिङ्ग) ति व्याप्तोति वा शीघ्रम् । सहते सहसा^६ । अव्ययम् । भट्टति सधातीभवति इदन्तमव्ययम् । झटिति^७ । द्रवति स्म द्रुतम् । त्वरते स्म तूर्णम् । जवनं जवः । जुगतो । स्यन्दते स्यदः । “स्यदो जव^८” इति साधुः । रहयस्येन रहः । रथते रीणाति वा उनेन रथः । वीय (विज्य) ते वेगः । तरयनेन तरः । “९० सर्ववातुभ्योऽसुन्” । लहूते भूमि लघुः । सवेगः । गतिवचनो जवो वर्म-वचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थमेदः ।

सदागतिप्रस्तावादाश—

१५

साधीयोऽत्यर्थमत्यन्तं नितान्तं सुष्टु वै भृशम् ।

सप्त घण्ठे । साधुभ्यो हितं साधोय^{१०} । ईयम् । अतिकान्तोऽर्थं वेला मात्राम् अन्तं च अत्यर्थम् । अत्यन्तम् । अतिवेलम् । अतिमात्रं च । निताम्यति स्म नितान्तम् । सुष्टौति सुष्टु ।

१. अनावसानभिना अष्टावपि शब्दा विशेष्यनिधानस्तेन कुटुम्बमिति विशेषमध्याहार्य हे राजेन्द्र तव वैरिणा कुटुम्बं ज्ञाम भवतु । एव शान्तं कृशमित्याचापि योज्यम् । अवसानशब्दस्य भावल्यु-दन्तवात् तव वैरिणामवसान नाशो भवतिवति विवेक । अवस्यते उवसानमिति टीकोक्तविग्रहस्वपञ्चतः । अवपूर्वस्य “षोऽन्त कर्मणि” इत्यस्य भावलिति अवसीयते इति रूपम्, नव्ववस्यते इति । कर्त्तरि लटि दिवादौ अवस्यतीति परस्पैपदमेव । नापि कर्तुकान्तोऽवसानशब्दः । क्लप्तये “अवसित” इति रूपस्यैव सर्वसम्पत्त्वात् । तस्मादवसायतेऽवसायो वा अवसानमिति विग्रहो युक्तः । २. कोषान्तरप्रमाणतो व्यवहाराच्च धैर्यादिशब्दाना परस्परकर्मभेदात्पर्यायानहैवेऽपि बलसामान्यविवक्षया त्रयः । पौरुषे इत्युक्तम् । ३. गतिवचनो जवो धैर्यवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थेदस्य वक्ष्यमाणवात् क्षिप्रादयस्तर्णा-ता नवं शीघ्रायेऽन्तमव्ययम् । अवसानशब्दस्सप्त वेगार्थं इति सुवचनम् । “द्राक् लग्नेऽहाय भट्टिति” एतस्यैवास्य शीघ्रार्थतया पाठे कर्त्तव्येऽपि पृथगस्य पाठो भट्टितिशब्दपुनरक्षितश्च दीप । ४. क्षिपति विलम्बमिति शेषः । ५. “दु मस्तो शुद्धौ” । बाहुलकात्यु । महिजनशोरिति नुम । स्कोरिति उलोपः । मज्जति कालात्पत्वे मङ्गस्तु । ६. “षह मर्णेण । असा प्रत्ययः यदा सहस्यति । ‘षोऽन्तकर्मणि’ । आप्रत्ययो डित् । विभक्तयन्तप्रतिरूपकमाकारान्तमव्ययम् ? उदाहरणम्—“सहसा विद्वीत न किशमित्यादि” । ७. “भट्ट सङ्घाते” । श्रीणादिक इतिः । ८. का० स० भ११४५। स्यन्देर्घं नलोपो दीघीभावश्च । स्यन्दनं स्यद इति भावविग्रहो न्यायः । ९. “ओ विजी भयचलनयोः” । १०. का० उ० स० ४५६ । ११. अतिशयेन साधु वादं वा साधीय इति । साधुभ्यो हितं इति टीकोक्तविग्रहस्तु न सङ्घच्छते । अतिशयार्थे ईयसो विधानात् । साधीय इति मूलौकपदस्य झ्लीवत्वेन हितं इति पुविग्रहेऽपि तथैव ।

‘अपष्टुदयः—अपष्टु दुष्टु बुष्टु हरिदु मितदु शट्टु घनु इत्यादयः । वै अव्ययम् । विभर्ति भृशम् ।

स्फुर्तं साधु खलु स्पष्टं विशदं पुष्कलामलौ ॥१७३॥

सप्त निर्मले । स्फुरत्यभिश्रायोऽस्मात् ३स्फुटम् । साध्यतीति साधु । खलतीति खलु ४ ।
सप्तयते स्थ स्पष्टम् । विशति चित्ते विशदम् । पुष्णातीति पुष्कलम् । न मलमस्मिन् आमलम् ।
५ प्रकाशम् । प्रकटम् ।

नित्राश्चर्याद्गृहतं चोद्यं विस्मयः कौतुकोऽव्ययो ।

षट् कौतुके । चित्र चयने । चिनोतीति चित्रम् । आचरतीत्याहचर्यम् । पारस्करादि-
त्वात्सुट् । भू सत्तायाम् । अद् पूर्वः । अद् विस्मितो भवत्यत्र अद्गृहतः । “अदि भुवो डुत्” । चोद्यते इति
चोद्यम् । विस्मयते इति विमयः । कुतुकस्य भावं कौतुकम् । अहो लोका आश्चर्यम् इति
१० प्रयोजनीयम् ।

अभियोगोद्यमोद्योगा उत्साहो विक्रमो मतः ॥१७४॥

पञ्चोदयमे । अभियोगजनम् अभियोग । यमु उपरमे । यम् उद्घूर्व । “चुरादेश्च”—इन् ।
“आत्योप०१०”—दीर्घः । उद्यामि इति जातम् । “मातुकन्धाना०११” हस्तः । उद्यामि जातम् । उद्यमनमुद्यमः ।
भावे घञ् । “कारितस्य०१२” । उद्योजनम् उद्योग । उत्सहनमुत्साह । विक्रमण विक्रमः ।

५१ **रहोऽनुरहसोपांशु रहस्यं च भिनत्ति कः ।**

चत्वार एकान्ते । रहति त्यजति जनः सङ् यत्र सान्त रह । क्लीबे । अव्यय च । अनुगत
रह अनुरहस्यम् । “१३ अन्ववतप्तेभ्यो रहस्” । उपाशनुते अव्ययमुद्वन्तम् उपांशु । रहसि भव रहस्यम् ।
कः उमान् भिनत्ति विदारयति । प्रच्छब्दम् । एकान्तम् । नि शलाकम् । उपदूरम् । विजनम् ।
विविक्तम् । जनान्तिकम् ।

२० **कीनाशः कृपणो लुब्धो गृध्नुर्दीनोऽभिलाषुकः ॥ १७५ ॥**

षट् कृपणे । लोभेन विलशयति बाध्यते १४कोनाशः । कों वाणीं याचकाना नाशयति विनाशय-
तीति कीनाश । कलपते रक्षितु न दु दातु कृपण । लुभयति स्थ लुब्ध । गृध्नाति गृष्णः । गृध्नुरित्यपि
स्यात् । लोभेन द्योतते शोभते (दीयते क्षयति) द्यीन । दीद् द्यये । क्वचित् हानः इति पठन्ति । लष
कान्तौ । अभिपूर्व । अभिलषतात्येवंशालं अभिलाषुक । “शृकमगमहनवृष्ट्यालसपतपदामुकद्” ।

१. का० उ० स० ११५ । इति कुप्रत्ययः । २. भृषातोः शपत्यः किदित्यर्थः । भृश्यतीति
भृश वा । “भृशु भ्र शु अथ पतने” । दिवादिः । इगुपेति कः । भृशरत्रान्तर्भावितप्यर्थ । ३. स्फुटतीति
कर्तुविग्रहो न्यायः, नत्वपादानकः तत्र घजि स्फोट इत्यापत्ते । अवैगुपेति क । ४. “खल सप्त्वैः” ।
बाहुलकादुः । खलुशब्दो नानर्थे । तदुक्तम्—“निषेधवाक्याऽलङ्घारे जिज्ञासाऽनुनये खलु” । अम० को०
३।३।२२५ । ५ “चित्र चित्रीकरणे” । चित्रयतीति चित्रम् । पचाद्यन् । इत्यन्त्र । ६. आ इति
चर्यते उभिनीयते इति विप्रहोऽन्यत्र । “आश्चर्यमनित्ये” इति सुट् । ७. का० उ० स० ४।२५ । ८ चोद्यशब्द
आश्चर्यर्थैः । तदुक्तम्—“चोद्यन्तु प्रेरेण प्रश्नेऽद्गृहेपि च” अनेऽ स० २।३।६२ । ९. का० स० ३।२।१ ।
१०. का०स० ३।६।५ । ११. का०स० ३।४।६५ । १२. का०स० ३।६।४।४। इतीनो लोपः । १३. का०स०
३।४।४।१ । अत्र राजादिवृत्ति २९ । १४ “क्लिश्च विवाघने” । “क्लिशेरीचोपधाया कन् लोपश्च लो नाम्
च” पा० उ० स० ५।६।६ । १५. का० स० ४।४।३।४

कदर्यः । किंपचान । मितम्पच् । क्षुल । क्षुलक । क्लीबः । क्षुद्र । वराकश्च ।

पाशनीतः सितो बद्धः सन्धानीतो नियन्त्रितः ।

नियामितः शृङ्खलितः पिनदः पाशितो रिषुः ॥ १७६ ॥

नव बद्धे । पाशं नीतः पाशनीतः । सीयते स्म स्ति । बध्यते स्म बद्धः । सन्धा प्रतिज्ञा नीतः प्राप्तिः सन्धानीतः । नियन्त्रं सजातमस्य नियन्त्रित । नियामी जातोऽस्य नियामितः । शृङ्खला ५ सजातोऽस्य शृङ्खलितः । तारकितादिदर्शनादितच् । पिनद्यते स्म पिनदः । पाशः सजातोऽस्य पाशितः । क रिषुः शत्रुः ।

कान्तं च कमनं कप्रं कमनीयं मनोहरम् ।

अभिरामं र(रा)मणीयं रम्यं सौम्यं च सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

दश वरिष्ठे (अतिसुन्दरे) । काम्यते कान्तम् । काम्यते कमनम् । काम्यते इत्येवशीलं १० कप्रम् । काम्यते वाञ्छयते कमनीयम् । “तव्यामीयो” । मनोहरति मनोहरम् । मनोहारी । मनोहरम् । अभिरामम् अभिरामम् । रमणस्य (णाय) हित रमणोयम्^३ । रम्यते रम्यम् । सीमस्य भावः सौम्यम्^३ । सुन्द सौत्रोऽय सुन्दित सुषुटु नन्दयति इति निश्चल्या सुन्दरम्^४ ।

चारु श्लक्षणं च रुचिरं प्रशस्तं हृदयबन्धुरम् ।

दर्शनीयं मनोज्ञं च

१५

अष्टौ मनोज्ञे । चरन्ति नेत्राण्यत्र चारु । शिष्यते युज्यतेऽनेन इत्यक्षणं^५ । रोचते सर्वेऽयो रुचिरम् । प्रशस्यते स्म प्रशस्तम् । हृदयस्य प्रियम् हृदयम् । चित बन्नाति बन्धुरम् । हृयते दर्शनीयम् । मनो जानातीति मनोज्ञम् ।

चित्तपर्यायहारि च ॥१७८॥

चित्तहारि । मनोहारि । इत्यादीनि मनोहरनामानि शातव्यानि ।

२०

अवश्यायं तुषारं च प्रालेयं तुहिनं हिमम् ।

नीहारम्

षड् हिमे । अवश्यायते अवश्याय । “दिहिलिहिश्लिश्वसिव्यध्यतीणश्याऽता च^६” गप्रत्यय । तुष्यन्त्यनेन तुषार । प्रलयादागत प्रालेयम्^७ । तोहयत्यर्दयति तुहिनम् । तुहिर् अर्दने । हिनोति वर्धते जलमनेन हिमम् । निहियते नीहारः । मिहिका । धूमिका । देश्याम् ।

२५

१ का० सू० ३।७।९ । २ रमणाय हितमिति विग्रहो युक्त । तस्मै हितमिति चतुर्थन्ताच्छु । मूले छन्दोभङ्गदोषवारणाय रमणीयमेव रामणीयम् । इति स्वार्थिकोऽणपि कार्यः । ३ सोमस्य भाव इति विग्रहोऽयुक्त । “प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारीभूतो भाव.” इति सिद्धान्तात् सौम्य इत्यस्य सोमत्वमित्यर्थापत्तेः । अतः सोमो देवताऽस्येति व्युत्पत्ति । “सोमाट्टद्यश्च” । इति द्यश्च । अथवा सोम इव सोमः । ततश्चतुर्वर्णादित्वात्पृथग् । इति रामाश्रमः । ४ सुषुटु द्रिष्टते आद्रियते । दुष्टातोरप् । पृष्ठोदरादित्वान्तुम् । सुषुटु उनति आर्दीकरोति चित्तं वा । सुपूर्वकात् “उन्दी क्लेदने” उन्दधातोबुदुलकादरः । शकन्धा-दित्वात्पररूपम् । इति रामाश्रमः । ५ नेत्र मनो वेति शेषः । “शिलष आलिङ्गने” । “शिलषे रचोपधाया.” ६ का० सू० ४।२ । ५८ । ७. प्रलीयन्ते पदार्थां अत्रेति प्रलयो हिमाचलः । तस्मादागत प्रालेयम् । अण् । केक्यमित्रयुप्रलयाना यादेति । पा० सू० ७।३।२ । इति यादेति ।

तत्करं विद्धि मृगाङ्कं रोहिणीपतिम् ॥ १७६ ॥

तस्य करस्तकरस्तम् । हिमशब्दात्करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । अवद्यायकर ।
तुषारकरः । प्रालोयकरः । तुहिनकर । हिमकर । नीहारकर । मृगाङ्कः । रोहिणीपति । अष्टौ नामानि
विद्धि जानीहि ।

५ पुष्टां सन्नरं प्राहुः

द्वौ प्रधानपुरुषे । पुमाँश्चासौ नामः भेषः पुष्टांगः । संश्चासो नर सन्नरः । प्राहुः त्रूवन्ति ।
तिलकं च विशेषकम् ।

ललाटिका ललामापि पूर्णवाहं तथा द्रुमम् ॥ १८० ॥

१० षट् तिलके । तिलकाङ्क्षिः तिलकः । तिलतीति तिलकम् । विशिनष्टीति विशेष । स्वार्थेः कः ।
विशेषकः । लल्यते ललाटम् । के प्रत्यये ललाटिका । लल्यते ललामा । पूर्णं वाहयतीति पूर्णवाहः ।
द्रवति वृद्धिं गच्छति द्रुमः । तमालपत्रम् । चित्रकम् ।

अञ्जनं कज्जलं नागं गजपाटलमारुण्यम् ।

षट् कज्जले । अच्यतेऽनेत्यडजनम् । कषति नेत्रवैरूप्यं कज्जलम् । न शोभाम
अगति गच्छति नागम् । गति शोभया मायति गजम् । पाटलाया हृदम् पाटलम् । शून्यति गच्छति
१५ शोभाम् आरुण्यम् ।

सालं परिधि वृक्षं च

त्रयं प्राकारे । सरति गच्छति कालान्तर सालः । परिधीयते वैष्ट्यते अनेन परिधि
वृणोति नगरमाञ्छादयति वृक्षम् ।

कुल्यां स्त्रीं सारणीं विदुः ॥ १८१ ॥

२० त्रयः^५ पानीयनिर्गमनमार्गे । कुले यहे साधुः कुल्या । स्तृणाति वैरूप्यमाञ्छिन्नति स्त्री ।
सरत्यनया सारणी । तो विदु कथयन्ति घनञ्जयकवयो भाष्यकर्त्तरोऽमरकोर्त्याचार्याश्च ।

चारोऽवसर्पः प्रणिधिर्निंगूढपुरुषश्चरः ।

पञ्च^६ चारे । चरति शत्रुमण्डले चार^७ । अवसर्पति अवसर्प । अपसर्पश्च । प्रकर्त्तेण

१ अत्र तिलकविशेषके दीकोक्तमालपत्रचित्रके च ललाटकृततिलकाङ्गलङ्करणे । तदुक्तम्—“तिलके तमालपत्रचित्रपुण्ड्रविशेषका” । अभिं चिं ३।३।१७ । ललाटिका पत्रसमूक्तललाटभूषणम् । तदुक्तम्—‘पत्रपाश्या ललाटिका’ अभिं चिं ३।३।१९ । ललामा तु सीमस्ताग्रे मरुमणीभित्रिव धार्यमाणं रनादिकृतभूषणम् । तदुक्तम्—“पुरोन्यस्त ललामकम्” अभिं चिं ३।३।३६ । पूर्णवाहृदमयोस्तु कोषान्तरे पाठो नोपलब्ध । २ पट कज्जले । इत्यविचारसहम् । अञ्जनकज्जलौ समानार्थौ । नागगजपाटलारुण्या श्रोष्कपोलादिरञ्जकलोहितरङ्गविशेषवाचका । तदुक्तम्—अनेकार्थसद्ग्रहे—“नागो मतकृजे सर्वे पुनागे नागकेसरे” २।३४ । “पाटलान्तु कुसुमश्वेतरक्षयोः” ३।७।१ । “अरुणोऽनुरुद्धर्ययो । सन्ध्या रागे त्रुष्णे कुष्ठे निःशब्दाऽव्यक्तरागयो” ३।१।९८ । ३ अरुणमेव आरुणम् । ४ वृहशब्दस्य सालार्थे कोषान्तरसंवादो नोपलब्धः । ५ अत्र द्वाविति वक्तव्यम् । छीशब्दोऽत्र कुल्या-सारण्यो छीलिङ्गबोधकः तत्पर्यायः । ६ पूर्वमुक्ते उपि सिंहावलोकनन्यायेन चारेऽर्थेऽन्यानपि शब्दान् समुच्चिनोति । ७ चरति शत्रुमण्डले चरः, चरेरच् । तत स्वार्थिकोऽण् । चर एव चारः ।

नितरां गुतो धीयते प्रणिधिः । निगृदश्चासौ पुरुषः निगृदपुरुषः । चरतीति चरः । सप्तशः । १ यथार्थवर्णः । मन्त्रशश्च ।

तद्वानुक्तः सहस्राशः

तस्मात् पूर्वोक्तशब्दात् परं वान् इति प्रयुज्यमाने सहस्राक्षनामानि भवन्ति । निगृदपुरुषवान् । चरवान् इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

५

सत्यार्थं सूनृतं ऋतम् ॥१८२॥

सत्यार्थेण हौ । सु सुष्टु ऋत सत्यं सूनृतम् । पृष्ठोदरादित्वान्नाडागमः । ऋच्छ्रुतिं गच्छति जनं प्रत्ययमत्र ऋतम् । तथा चामरकोषे—“सत्यं तथ्यमृतं सम्यक्” ।

निस्तलं वर्तुलं वृत्तम्

त्रयो वर्तुले । निर्गतं तलं प्रिष्ठाऽत्य निस्तलम् । अथवा निर्गतं तलादधीभागान्निस्तलम् । १० भूमौ न तिष्ठति वा । वर्तते भ्रमति वर्तुलम् । वृत्यते स्म वृत्तम् । सर्वे त्रिषु ।

स्थपुटं विषमोन्नतम् ।

विषमोन्नते स्थपुटम् । स्थापयत्यात्मनो विषमोन्नतत्वे स्थपुटम् । प्रायः क्लीवे ।

दीर्घं प्रांशु

द्वौः^३ दीर्घे । दण्णाति दीर्घम्^४ । प्राण्नुते व्याप्तोतीति प्रांशु” ।

१५

विशालं च बहुलं पृथुलं पृथु ॥१८३॥

चत्वारो विस्तीर्णे । विस्तार विशति विशालम् । बहुत् लातीति बहुलम् । प्रथते वर्षते पृथुलम् । गुणमात्रवृत्तेऽर्थं । पर्थते पृथु । बहुत् । उरुः । गुरुः । विस्तीर्ण ।

उल्वणं दारुणं तिगमं धोरं तीव्रोग्रमुक्तटम् ।

सप्त धोरे । उल्वणात्युल्वणम्^५ । पृष्ठोदरादित्वात्पक्षे लः । दारयति दारणम् । तितिक्षतीति तिगमम्^६ । शुति धोरम्^७ । तीवति तीव्रम् । तीव स्थौल्ये रक् । उच्यति उग्रम्^८ । उक्तटथते उक्तम् । प्रतिभयम् । भीमम् । भयानकम् । आभीलम् । भीषणम् । भैरवम् ।

२०

शीतलं तिमिरं याथं मन्दं विद्धि विलम्बितम् ॥ १८४ ॥

१ यथार्थ यथा अर्थं प्रयाजन वरणो जाति प्रसिद्धिर्वा यस्येति तदर्थं । २ अम० कौ० १।७।२।२। ३ वक्तुतस्य प्राणुदीर्घयोरर्थमेद । दीर्घविस्तुतायतशब्दा पर्याया । प्राणुस्त्वत । तदुक्तम्—‘दीर्घमायतम्’ अम० कौ० ३।१।७० । ४ ‘दृ विदारणे’ । ब्राह्मणादधक । दण्णाति हस्तव्वमिति दीर्घ । ५ प्रकृष्टा अशब्दोऽस्येत्यपि । ६ ‘विश प्रवेशने’ । ब्राह्मणादाल । रामाश्रमस्तु—‘वै शालच्छङ्कटचौ’ इति० पा० सूत्रेण विशब्दाच्छालन्प्रत्ययमाह । ७ उद्वणातीति उल्वणम् । पृष्ठोदरादित्वादुदील इति पाठोऽत्र युक्तः । ‘वण शब्दे’ । अच् । उल्वणशब्दे वस्तुतः स्पष्टार्थक, न तु दारणार्थकः । स्पष्टो ह्युद्वेजको भवति खलानाम् । अत उद्वेजकत्वसामान्यात्याह । ८ तितिक्षतीति क्षमार्थकत्वादत्र न युक्तम् । ‘तिज निशाने’ । निशान तिक्षणीकरणम् । तेजयतीति तिगमम् । घृकृत्यय । ९ ‘घुर भीमा र्थशब्दयोः’ । घोरयतीति घोरम् । ष्यन्तादच् । १० उच्यति कुधा सम्बन्धते उग्रम् । ‘उच समवाये’ । दिवादिः । ‘ऋग्रेन्द्र’ इत्यादिना रक् गश्चान्तादेश ।

पञ्च कार्यविलङ्घे (मिथुते) । शीतं लाति मन्दो भवति कायें शीतलाम् । ताम्यति स्वकार्य-
मिञ्छुति तिमिरम्^१ । स्तिमित स्थिमितं वा पाठः । यथा भव याथम् । मन्द्यते मन्दम् । विलम्ब्यते
स्म विलम्बितम् । विद्धि जानीहि ।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसगो विश्वसो निजः ।

५ पञ्च स्वभावे निजे । स्वः स्वकीयो भावः स्वभावः । प्रकरण प्रकृतिः । शील्यते शीलयति
वा शीलम् । निसृज्यते निसर्गः । विश्वसितीति विश्वसः^२ । विश्वासश्च । विश्रम्भ ।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे । युज्यते योग्या^३ । गुण्यते उद्दर्निश गुणनिकाः^४ । अव्यसनमभ्यासः ।

स्यादभीक्षणं मुद्दुर्महुः ॥ १८५ ॥

१० मुद्दुर्मुद्दुर्वारं वार स्यात् भवेत् । अभीक्षणम् । अभीक्षणम् । अभिमुखमीक्षते
वा अभीक्षणम्^५ । नितराम् ।

मृषालीकं मुधा मोघम्

चत्वारोऽलीके । मृष्यते सहते नारकं दुःखमनेत मृषा । आदन्तमध्ययम् । अलति स्वस्वाहा-
(स्वर्गा)विवारयति अलीकम् । मुञ्चति व्यजति निमित्त मुधा । आदन्तमध्ययम् । मुद्यतेऽत्र चित्त मोघम् ।

विफलं वितर्थं वृथा ।

१५ निष्कलवचने त्रयः । विगत फल विफलम् । विगत तथा सत्य यस्मात् वितरथम् । वृणो-
त्याच्छादयति गुणान् वृथा । अव्ययम् ।

विधुरं व्यसनं कष्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत् ॥ १८६ ॥

पञ्च कष्टे । कष्टेन विधुनोति शरीर विधुरम् । व्यस्यते अनेन व्यसनम् । कष्यते
२० (कषति) कष्टम् । कृणोति क्लिनति दुखेन कृच्छ्रम्^६ । गाहते गहनम् । उद्धरेत् निस्तरेत् ।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम् ।

षट् समते । समस्यते एकीकरोति समस्तम्^७ । सम ग्रसते समग्रम्^८ । समान कलयतीति
“सकलम् । सरति सर्वम् । कृन्तति वैष्यति व्याप्तोति कृत्स्नम् । विशति तिष्ठति सर्वत्र विश्वम् ।
नास्ति विल शून्यमस्याखिलम् । निखिल च ।

१ “तिम आद्रीभावे” । तिम्यति आद्रीभवति तिमिः । विलम्बशीलो जन सर्वदाऽद्र्द्य इव
शीति स्फूर्तिरहितश्च भवति । २ विश्वसशब्दाऽन्वयानमपि व्याकरणादस्पष्टम् । अतीत्र त्रिष्वपि मूलीके एव प्रमाणम् । ३ योगे
वित्तैकाऽये साध्वीति योग्या “तत्र साधु”रिति यदन्यत्र । ४ गुण्यते गुणाना । चुरादिगिजन्ताद् भावे
“एषासश्रन्येति उच्च् । ततः स्वार्थे क । गुणनैव गुणनिका । ५ अभीक्षणौति अभीक्षणम् । “क्षणु तेजने” ।
बाहुलकाङ्क्षम् । अन्येषामपीति दीर्घः । इति रामाश्रम । ६ अत्र मृषालीकशब्दौ वद्यमाणो वितरथ-
शब्दशास्त्रवाचक । मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वद्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽ-
न्यत्र । तदुन्नमरे—“मृषा मिथ्या च वितरथ” ३।१।१५ । “अलीक त्वप्रियेऽन्तते” ३।३।१२ । “मोघ
निरर्थकम्” ३।१।८१ । व्यर्थके दु वृथा मुधा” ३।४।४ । “वितरथ त्वन्तत वचः” १।१।२१ । इति ।
७. कर्वति कृन्तति वेति क्वी० स्वात० । ८ समस्यते स्म समस्तम् । “असु ज्ञेपणे” । कर्मण रः ।
९ सकृतमग्रमस्य समग्रम् । १० सह कलाभिर्वर्तते सकलम् ।

शकलं विकलं खण्डं शलकं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे । शक्तोति काये शकलम् । शलक च । विगता कला यस्मात् तद् विकलम् ।
ख"ङ्गते खण्डः । लिशते लेशः^१ । लिश विज्ञु गतौ । "अकर्तरि च कारके संजायाम्^२" । रीति शब्द
करोति ^३लवः । विदु कथयन्ति । अर्धम् । नेम । सामि । असम्पूर्णम् । दलं च ।

मर्म कोपं च

५

द्वाँ मर्मणि । म्रियतेऽनेन मर्म । नान्तम् । कुर्यते कोषम्^४ ।

कलहं परिवादं छलं नयेत् ।

करेण हन्त्यत्र कलहः । परिवदन परिवाद । छलयती (त्वं)ति छलम् ।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं भतजासृजम् ॥ १८८ ॥

षड् सूधिरे । शोण्यते वर्णते देहोऽनेन शोणितम् । तालव्य । रोइति देहे जायने लोहितम् । १०
रजति रस रक्तम् । रुणद्वि सूधिरम् । क्षताद् व्रणाजायते क्षतजम् । अस्यते क्षिप्यते अस्तु ।

सन्ततानारताजसान्वहं कन्यापतिर्वरः ।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते । सन्तन्यते रस सन्ततम् । न आरतम् अनारतम् । न जन्मतीत्येवशील
मजस्यम् । अन्तर्हम् । कन्यापतिर्वर नन्दतु इति प्रयोजनीयम् ।

उद्वाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

१५

चत्वारो विवाह । उद्वहन उद्वाहः । परिणयते^५ परिणयनम् । विवाहते विवाहः ।
निवेशयते निवेशनम् ।

शुपिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारशिल्द्रे । शुष्यति जलमत्र "शुष्यिरम्" । उषशुशीति रः । विश्रियते भूम-यमनेन विवरम् ।
गणति वानेन रथति हिनस्ति प्राणिन वा रन्ध्रम् । छिद्रते तत् छिद्रम् । कुहरम् । विलम् । निर्व-
यनम् । रोकम् । व्वभ्रम् । वपा । शुष्पि ।

गर्ता च गह्वरम् ।

गर्ताया द्वौ । पतित प्राणिन गिरति गर्ता । गर्तः । गृहतीति गह्वरम् ।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेघसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके । श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिर्नान्ति वा श्वभ्रम् । रसाया भव
रस्यम् । पतन्त्यस्मिन् पातालम् । नरा कायन्त्यत्र नरकः । नारकः । पुसि । अमेघस उद्दिरहिता

२५

१ "लिश अल्पीभावे" । दिवादि । ततो श्वविधानमर्थात् नुस्तप्यम् । २ का० स०
४।५।४ । ३ लूप्यते छिद्रते लव । श्रूदोरप् । टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनार्थात् भिधायी । ४ कोष-
शब्दः पेशीवाचकां मेदिन्या लभ्यते । पेशीना मर्मस्थानव्यायुवेदे सम्मतम् । अत उपचारात् कोषोऽपि
मर्मस्थान्युनेयम् । तदुन्तम्- 'कोषोऽुल्ली कुडम्ले पात्रे दिव्ये खङ्गपिधानके । जातिकोषेऽर्थसङ्घाते पेशी
शब्दादिसङ्ग्रहे" । षा०वर्ग० ६ । ५ "तिमिरुषिमदिमन्दिचन्दिवधिरुचिशुषिन्य किर." का०उ० १।२।३ ।
सुषिरस्यास्तीति विग्रहे तु "उषसुषिमुक्तमधो र" पा०स० ५।।२।१०७ । इति र । रथत्ययपक्षे दन्त्यादिरयम् ।
उषसुषीति पा० रथते दन्त्य एव पाठः । क्षीरस्वाभ्यपि दन्त्यमेव पपाठ ।

सम्यक्चारित्रहिता यान्ति गच्छन्ति नरकम् । निरय । दुर्गति ।

अदध्रं भूरि भूयिष्ठं बंहिष्ठं बहुलं बहु ।

प्रचुरं नैकमानन्यं प्राज्यं प्राभृतपुष्कलम् ॥ १६१ ॥

दावश प्रभूते । न दभमदभ्रम् । भवति प्राचुर्यमत्र भूरि, भूरिष्ठं च । अतिशयेन बहु भूयिष्ठम् ।

५ “बहो ‘लोपो भू च बहो” “इत्स्य॑ यिट्चेति” भूरादेशो यिडागमश्च । अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः । वहति प्राचुर्यं बहुलम् । प्रचुरति^३ प्रचुरम् । न एक नैकम् । अनन्तस्य भाव आनन्त्यम् । प्राज्यते प्रकारेण वीयतेऽनेन वा प्राज्यम्^४ । प्रामवति स्म प्राभूतम् । प्रहृत च । पुष्यति पुष्कलम् । पुष्क च । पुरजम् । पुष्टम् ।

भवो भावश्च संसारः संसरणं च संसृतिः ।

तत्त्वज्ञश्चतुरो धीरस्त्यजेऽजन्माजवं जवम् ॥ १६२ ॥

१० अष्टौ सप्तारे । भवतीति भवः । भवतीति भावः । “वा ज्वलादित्तनीभुवो णः” । सप्तरति अस्मिन् संसारः । संसिधते अस्मिन् संसरणम् । सप्तरण संसृतिः । जनयतीति जन्म । आजवतीति आजवम् । जवति चतुर्गत्या भ्रमति (अत्र) जव ।

ऊर्जस्फूर्जस्वी तरस्वी तेजस्वी च मनस्त्यपि ।

चत्वार (पञ्च) स्तेजोयुक्तपुरुषे । ऊर्जा ऊर्जा वाऽस्त्यस्तीति ऊर्जस्वी । स्फूर्जोऽस्यास्तीति १५ स्फूर्जस्वी । तरोऽस्यास्तीति तरस्वी । तेजोऽस्यास्तीति तेजस्वी । मनोऽस्यास्तीति मनस्वी ।

भास्वरो भासुरः शूरः प्रवीरः सुभटो मतः ॥ १६३ ॥

पञ्च सुभटे । भासते इत्येवशीलो भास्वरः^५ । भासुरः । “भिदिंभासिमत्रा शुरः” । शूरयति शूरः । शूर वीर विकान्तौ । प्रवीरयते प्रवीर । सुष्टु भटः सुभट । विकान्त ।

तनुत्रं वर्म कवचमावृतिर्वाणवारणम् ।

२० पञ्च कवचे । तनु शरीर त्रायते रक्षति तनुत्रम् । वृणोत्यज्ञ वर्म । कन्यते वध्यते शरीरम् अनेन कवचम् । आवरणमावृति । वाणाना वारण निषेधन वाणवारणम् ।

कृपासं कञ्चुकम् ।

द्वौ कञ्चुके । करोति शोभा कृपासम् । कर्पास च । कन्यते वध्यते कञ्चुकः ।

छत्रमातपत्रोणवारणम् ॥ १६४ ॥

२५ त्रयश्छत्रे । वर्षातपौ छादयतीति छत्रम् । त्रिषु । छत्र, छत्री । आतपात् त्रायते आतपत्रम् । उष्णस्य वारणम् उष्णवारणम् । उपलद्धम् ।

केशं शिरोरुहं वालं कचं चिकुरमीहयेत् ।

पञ्च केशे । के मस्तके शेरे केश । शिरसि रोहति शिरोरुहः । वल्यते सविष्यते वालः । मस्तके चीयते कचति वा कचः । चीयते यत्नेन चिङ्गुः । चिकुरश्च । मूर्धजः । शिरसिजः ।

१ पा० सू० ६।४।१५८ । २ पा० सू० ६।४।१५६ । ३ प्रचोरति प्रचुरम् । चुर स्तेये । चुरादीना णिज्जैकल्पिकः । इगुपधेति क । प्रगत चुराया प्रचुरमिति वा रामाश्रमः । ४ प्राज्यते काम्यते “श्रीजू व्यक्त्यादौ” अज्जैः सज्जायामिति क्यप् । यद्वा प्रवीयते “अज गतिक्षेपणयोः” वयप् । बोभावे नेति दीकाशय । ५ का० सू० ४।२। ५५ । इति ण । ६ “कपिपिसिभासीशस्याप्रमदा च” का० सू० ४।४।४७ । इति वरः । ७. का० सू० ४।४।४१ ।

वृजिन । कुन्तलः ।

चूडापाशं च धर्मिन्द्रं कबरी केशबन्धनम् ॥ १६५ ॥

चत्वार केशबन्धने । चुद संचोदने । “चुरादेशन^२” हन् । नामिनो^३ गुण । चोदन चूडा । “ऊन चूदपीडमृगयतिम्य इनन्तेभ्य, सज्जायाम्” अद् प्रत्ययः । कारितलोप । निपातनात् उपधाय हस्तवम् । दस्य डत्वम् । चूडाया, शिखायाः पाशः बन्धन चूडापाशः । धर्मिः सौत्र । धर्मन्ते केशा ५ वर्णन्ते धर्मिमङ्गुः । क मस्तक वृणोपि कबरो नदादित्वादी । कबरी । इदन्तोऽपि कबरि । आबन्तो वा कबरा । केशस्य बन्धन केशबन्धनम् । वेणी । प्रवेणी । बीणा ।

उररीकृतमप्यूरीकृतमङ्गीकृतं तथा ।

चयोऽङ्गीकारे । ऊरीप्रभूतीना कृजा सह ममासो वा भवति । तथाहि—ऊरी ऊरी अङ्गी-
करणे विस्तारे च । आश्रुतम् । प्रतिज्ञातम् । उपगतम् ।

१०

अस्तुकारोऽभ्युपगमे

अ+भ्युपगमे अङ्गीकारे अस्तुङ्कार कथयते । अत्त करोतीति(करणम्)अस्तुङ्कार । ‘कर्मण्’ अरण प्रत्यय । अस्योप० वृद्धि । व्यजनम् । “सत्यागदात्मना कारे” । मकारागम ।

सत्यङ्कारः पणार्पणे ॥ १६६ ॥

सत्यापणे सत्य करोतीति सत्यङ्कारः ।

१५

सौहार्दं सौहृदं हार्दं सौहृद्यं सख्यसौरभम् ।

मैत्री मैत्रेयिकाजर्यं सहाय्यं संगतं मतम् ॥ १६७ ॥

दश (एकादश) सख्ये । सुहृदा भावः सौहार्दम् । सौहृद्यम् । हार्दम् । सौहृद्यमेकमेव वाक्यम् । सख्यम् । सुरस्येद (मेरिद) सौरभम् । मित्रस्य भावो मैत्री । मैत्र्या नियुनो मैत्रेयिक । न जीर्यते अजर्यम् । सहाजी (यथ) ते समाधयम् । सगमनम् सज्जनतम् ।

२०

क्षेमं कल्याणमुभयं श्रेयो भद्रं च मङ्गलम् ।

भावुकं भविकं भव्यं श्वोवसीयं शिवं तथा ॥ १६८ ॥

दश (एकादश) कल्याणे । क्षिणोति क्लेशान क्षेमम् । कल्यते जायते कल्याणम् । कल्य नीरुजत्वमनिति वा कल्याणम् । प्रकृष्ट प्रशस्य श्रेयस् । सान्तम् । भद्रते ह्वादते सुखीभवत्यनेन भद्रम् । म पाप गालयतीति मङ्गलम् । भवनशील भावुकम् । “शुक्रमगमहनवृषभस्थालपतपदमुक्तज्” । प्रशस्तो २५ भवोऽस्यास्तीति भविकम् । पुण्यकृतो भवितव्य भवति भवयम् । श्व शोभनश्च वसीयः इद्वोघसीय । श्वोवसीयस च । ‘श्वसो’ ‘वसीयस्’ । शीयते तनूक्रियते दुःखमनेन शिवम् । भाव्यविधातृणां श्रीमदमर्कीतीना शिव भवतु ।

१ वृजिनशब्दो भद्रगुरवाची । तदुक्तम्—‘वृजिन भद्रगुर भुग्मराल जिज्ञामूर्तिमत्’ अभिं चिं श१९३ । लक्षणाया भद्रगुरकेशोऽपि वृजिनशब्दप्रयोग । २ का० सू० श१२११ । ३ का० सू० श१५१२ । ४ का० सू० श१५१२ । अत दुर्गवृत्ति “ऊनचूदपीडनगयतिम्य इनन्तेभ्यौ या प्राप्ते वचनम्” इत्येवरूपा । ५ अस्तुकरणमस्तुङ्कार । ६ का० सू० श१३१ । ७ “व्यञ्जनमस्वर परवर्णं नयेत्” का० सू० श११२१ । ८ का० सू० श११२३ । ९, सत्यस्य करण सत्यङ्कारः । भावे धज् । कर्तृ-विग्रहङ्गीकोतस्त्वयुक्त । १० का० सू० श१४३४ । ११ का० सू० श१२६४१ । वृत्ति २७ ।

वक्ता वाचस्पतिर्यत्र श्रोता शक्रस्तथापि तौ ।
शब्दपारायणस्यानं न गतौ तत्र के वयम् ॥ १६६ ॥

अस्य श्लोकस्य सुगमज्ञाख्या ।

तथापि किञ्चित् कस्मैचित् प्रतिबोधाय द्वचितम् ।
५ बोधयेत्क्यदुक्षिणो मार्गज्ञः सह याति किम् ॥ २०० ॥

तथापि मया घनञ्जयकविना सूचित कथितम् कस्मैचित् प्रतिबोधाय ज्ञानाय । उक्तिशो बोधयेत् ज्ञापयेत् । मार्गज्ञ किं सह याति गच्छति, अपि तु न गच्छति ।

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।
द्विःसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २०१ ॥

१० एतद्रत्नत्रयमपश्चिम नवीनमपूर्व वर्तते ।

कवेर्धनञ्जस्थेयं सत्कवीनां शिरोमणे: ।
प्रमाणं नाममालेति श्लोकानां हि शतद्रव्यम् ॥ २०२ ॥

घनञ्जयस्य कवे, सत्कवीना शिरोमणे इति अमुना प्रकारेण हयं नाममाला श्लोकाना शतद्रव्य २०० प्रमाणमस्ति ।

१५ ब्रह्माणं समुपेत्य वेदनिनदव्याजात् तुषाराचल-
स्थानस्थावरमीश्वरं सुरनदीव्याजात् तथा केशवम् ।
अप्यभोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशादहो
फूल्कुर्वन्ति घनञ्जयस्य च भिया शब्दाः समुत्पीडिताः ॥२०३॥

अहो लोका घनञ्जयस्य च भिया कृत्वा शब्दाः समुत्पीडिता सम्यक् प्रकारेण वीड़िता २० फूल्कुर्वन्ति । कि कृत्वा पूर्व वेदनिनदव्याजात् मिषात् ब्रह्माण समुपेत्य प्राय, ईश्वर तुषाराचलस्थान-स्थावर सुरनदीव्याजात् प्राय, केशव श्रीविष्णु कि विशिष्ट अभोनिधिशायिन जलनिधिध्वानोपदेशात् समुपेत्य सुगमोऽय श्लोकः ।

इति महापण्डितश्रीमद्भरकीर्तिना त्रेविद्येन
श्रीसेन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृताया
धनञ्जयनाममालाया प्रथमं काण्ड
व्याख्यातम्

श्रीमद्भुतञ्जयकविविरचिता

अनेकार्थ नाममाला

—०—

जिनेन्द्रं पूज्यपादं च चैलाचार्यं शिवायनम् ।

अर्हन्तं शिरसा नत्वाऽनेकार्थं विष्णोम्यहम् ॥ १ ॥

गम्भीरं सुचिरं चित्रं विस्तीर्णार्थं प्रसाधकम् ॥

शाब्दं मनाक् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥

गम्भीरं रुचिरं मनोङ्गं चित्रं विस्तीर्णार्थं प्रसाधकम् । सुगमव्याख्याऽस्ति ।

५

अर्हत्पिनाकिनौ शम्भू

शम्भू इति द्विचनान्तं पदम् ।

जिनावहं चथागतौ ।

जिनां कर्येते ।

वेदसूर्यों विवस्वन्तौ

१०

वेदश्च मूर्यश्च वेदसूर्यों विवस्वन्तौ सर्यों कर्येते ।

विष्णुरुद्रौ वृषाकर्णी ॥ ३ ॥

विकुण्ठाविन्द्रगोविन्दौ अनेन्तौ शेषशार्ङ्गिणौ ॥

शेषश्च धरणेद्, शार्ङ्गी च विष्णु. शेषशार्ङ्गिणौ ।

जीमूर्तौ तु करिकीदौ पर्जन्यो शकवारिदौ ॥ ४ ॥

१५

वनमम्भसि कान्तारे

अम्भसि कान्तारे वनम् ।

भुवनं विष्टपेऽर्णसि ।

सुगमव्याख्या ।

१. श कल्याणं भवतीति शम्भु. । दुग्रत्ययः । केशवब्रह्मवाची च । तदुक्तम्—‘शम्भु स्याद् ब्रह्मशिवयोरहर्त्यपि च केशवे, । इति विं लो० ना० व० ९ । हेमे च—“शम्भुर्ब्राह्मैतोः शिवे” । २१६ । इति च । २ विष्णु, अतिवृद्ध, जित्वर, इन्द्रेतेष्वपि जिन । तदुक्तम्—“जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोन्निपु” विं लो० ना० व० ८ । हेमे—“जिनोऽहंद्वृद्धविष्णुपु” २१६९ । ३ “विवसान् देवसूर्ययो” अनेऽ स० ३१२१७ । अत्र देवशब्दपाठात्प्रस्तुतेऽपि देवशब्द एव युक्त । ४ अनिनश्च । तदुक्तम्—‘वृषाकर्णीसुद्वेशे शिवेऽग्ना च” अनेऽ स० ४२१६ । ५ अनवधिरायनन्तार्थ । “अनन्तः केशवे शेषे पुमाननवधौ त्रिषु” इति मेदिनी । ६. “जीमूर्तो वासवेऽम्भुदे । धोपकेऽद्रौ धृतिकरे” इति० अनेऽ स० । ७ पर्जन्यो मेषगर्जितेऽपि । तदुक्तम्—“पर्जन्यो मेषपश्चदेऽपि धृतदम्भुद-शकयो” इति मेदिन्याम् ।

धृतं सर्पिषि पानीये विषं हालाहले जले ॥ ५ ॥
 तल्पं दारेणु शश्यायां ज्योतिश्वक्षुषि तारके ।
 घबले सुन्दरे रामो वामो वक्रे मनोहरे ॥ ६ ॥
 नक्षत्रे मन्दिरे घिष्यम्

७

दवेष्टि शब्दं करोत्यत्र जनो घिष्यम् । नपुसकम् । धिष शब्दे ।

वसने गगनेऽम्बरम् ।

वसने गगने अम्बरं वर्तते । अम्ब शब्द राति ददातीति अम्बरम् ।

परिधौ पादपे सालः

परिधौ पादपे सालो वर्तते । सा लक्ष्यो लातीति साल ।

८

‘सालः शर्जतर्गं वृक्षमात्रप्राकारयोरपि’ इति हैम ३ ।

सिन्धुः स्रोतसि योषिति ॥ ७ ॥

स्रोतसि योषिति सिन्धु । स्यन्दने सिन्धु ।

सारसः शकुनौ ध्रूते

सरसि तडगे भव ३सारसः ।

केतनं दीधितौ ध्रजे ।

केतन्ति जानन्त्यत्र केतनम् । तथा च—

“कृत्ये निमन्त्रणे चिह्ने मन्दिरे केतनं विदुः ।”

मयूखः कीलके दीप्तौ

मयते विस्तार यातीति मयूख ।

पतञ्जः शलभे रचौ ॥ ८ ॥

९

पततीति पतञ्जः । पन्तु गता ।

अञ्जनः कञ्जले नागे

कञ्जले नागे अञ्जनो वर्तते । अञ्ज वृक्षिक्षकणकान्तिसु । विकमेण^३ अञ्जते प्रकटं-
कियते अञ्जन ।

१०

सारङ्गः पृष्ठे गजे ।

सरतीति सारङ्ग ।

सरलः प्रगुणे वृक्षे

ऋजुत्वात्सरलः ।

पुन्नागः सन्नरे तरौ ॥ ९ ॥

११

पुमोश्चासौ नाग श्रेष्ठ ।

१. अनेऽ स० राम०७। २. धूतपत्ते तु अरसेन द्वेषेण सहितः सारम इति विवेकः ।

३. गजोऽपि विकमेण जायने, कजलोऽपि विकमणवलेन मन्द्यते । ४. सार दृढमद्य यस्येत्यपि । सरतीत्यस्य स्थाने सारयतीति युक्तम् । ५. “पुन्नागस्तु सितोत्पत्ते । जातीकले नरश्रेष्ठे पाण्डुनागे दुमान्तरे!” इति मेदिनी

पाञ्चजन्योऽनले शङ्खे

पञ्चजने पाताले भवः पाञ्चजन्यः ।

कम्बुः शङ्खे मतङ्गजे ।

कम्बुः सौत्र कम्बयते वर्णयते कंबु । अथ वा करु वर्णे उणादिन्वादस्मादेव नकारागमश्च ।

कस्वरो द्युभवे द्युम्ने

द्युभवे स्वगोद्धवे द्युम्ने सुवर्णे ५० ॥ ४ ॥ कुत्सित स्वरति कस्वरः ।

स्यन्दनं शकटेऽम्बुनि ॥ १० ॥

स्यदन्ते स्यन्दनम् ।

अद्विर्गिरिवनस्पत्योः

गिरिश्च वनस्ततिश्च गिरिवनस्ती तथोर्गिरिवनस्पत्योः । अत्ति आकाशमित्यद्वि ।

शिखरी तरुभूधयोः

शिखरमस्ता तीति शिखरी ।

***राजा चन्द्रमहीपत्योः ।**

राजने इति राजा ।

द्विजो दशनविप्रयोः ॥ ११ ॥

द्विजातो द्विजः ।

मोचामग्नियो रम्भा

ब्रह्मपर्वनपि रमयतीति रम्भा ।

कदली ध्वजमोचयोः ।

केन वायुना दल्यते विदार्यते कदली ।

अशोकः सुमनस्तर्वाः

न शोको यस्माद्यस्य वा अशोकः ।

सुमनाः सुरपुष्पयोः ॥ १२ ॥

सुरश्च पुष्प च सुरपुष्पे तयोः सुरपुष्पयोः । शोभनचित्तः सुमनाः ।

मुक्तारजतयोस्तारः

तीर्यते तारः ।

भूरि भूयःसुवर्णयोः ।

पुण्यवन्सु भवतीति भूरि । क्लीवे ।

पानीयदुग्धयोः क्षीरम्

घस्तु अदने । सौत्रोऽयम् ।

१५

२०

२५

३०

१ “पाञ्चजन्यस्तु विष्णुशङ्खे द्रुमान्तरे” इति मेदिनी । २ “कम्बु पुमान् गजे । बलये शङ्खे-शम्बुककन्धरामलके त्रियाम्” इति वि० लौ० बा० व० २ । ३ “स्यन्दन प्रसवै नीरे स्यन्दनस्तिनिशो रथे” वि० लौ० ना० व० १५१ । ४ राजा प्रमौ च वृपतो लक्ष्मिये रजनीपतौ । पक्षे शके च पुमि स्यात्” इति मेदिनी । ५ घस्तु अदने । “घस्तु अदने” । घसेः किञ्चेति कीरः ।

पयः सलिलदुष्योः ॥ १३ ॥

पीयते पयः ।

कालप्रकर्षयोः काष्ठा

कालश्च त्रुट्यादिलक्षणः ।

५

‘स्वस्थे नरे मुखासीने यावत्स्पन्देत लोचनम् ।

तस्य त्रिशत्तमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ॥’

अथवा-- “सर्षपस्य प्रयत्नेन क्षिप्तस्य पततोऽम्बरात् ।

द्वियव यथदध्यान कालः स (च) त्रुटिः स्मृतः ॥”

प्रकर्षश्च प्रकर्षता उत्कृष्टता वा । कालश्च प्रकर्षश्च कालप्रकर्षयोः काष्ठा
१० कथ्यते । काशते भासते काष्ठा । आन्तोऽयम् ।

कोटिः संख्याप्रकर्षयोः ।

कुट्टीति कोटिः ।

“कियर्ती पञ्चसहस्री कियर्ती लक्षा च कोटिरपि कियर्ती ।

आँदार्योन्नतमनसा रत्नवतो वसुमती कियर्ती ॥”

१५

रन्ध्रसंश्लेषयोः सन्धिः

सन्धान सन्धिः ।

“सन्धियोन्नो सुरङ्गाया नाश्चेऽड्गे श्लेषभेदयोः” इति हैमी ।

सिन्धुर्नदसमुद्रयोः ॥ १४ ॥

स्नन्दते सिन्धु ।

२०

निषेधदुःखयोर्वाधा

वन्धन (वाधन) वाधा । वारु प्रतिवाते ।

व्यामोहो मूर्खमौढ्ययोः ।

व्यामुक्तने व्यामोह ।

कौपीनाकारयोर्गुह्यम्

२५

गुह्यते गुह्यम् । गुह्य सबरणो । “गुह्यसुपस्थे रहस्ये च” इति हैमी ।

कीलाल रुधिराम्भसोः ॥ १५ ॥

कीला लातीति कीलालम् । “कीलाल रुधिरे नीले” इति हैमी ।

मूल्यसत्कारयोरधः

३०

अर्हनेन पूज्यतेऽनेनत्यर्थः । “‘व्यञ्जनाच्च” वच् । होपवत्वादीर्घो न । “न्यद्वादीना हश घ.” ।

जात्यः श्रेष्ठकुलीनयोः ।

१ अनेऽ स० २१२५७ । २ व्यामोहशब्दस्य मूर्खार्थे मूल मृग्यम् । ३ अनेऽ स० २१३५८ ।

४ कीला ज्वालामलति वारयति । अल पर्याप्त्यादौ । इति जले विप्रह । रुधिरार्थे तु टीकोक्त । ५ अनेऽ

स० ३६८३ । ६ का० स० ४१५१९३ । ७ का० स० ४१६१५७ ।

अभ्युकुलीनयोर्जात्यः । जात्या भवो जात्य ।

मेघवत्सरयोरब्दः

अवतीति अब्दः । कुन्दादय^१—“कुन्दकृन्दमन्दान्दा.” । “अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके गिरिभिद्यपि^२ ।”

ताक्ष्यो हयगरुत्मतोः ॥ १६ ॥

५

तृष्णस्यात्पय ताक्ष्य । पुंसि ।

स्तवधतास्थृणयोः स्तम्भः

स्तम्भ इति सौत्रीय वातु ।

चर्चा चिन्तावितर्कयोः ।

चर्चण चर्चा ।

हरकीलकयोः स्थाणु

१०

तिष्ठतीति स्थाणु ।

स्वैरः स्वच्छन्दमन्दयोः ॥ १७ ॥

स्वस्य ईर स्वैरः । ३ स्वस्यात ऐतर्मारेरिणोरपि वक्तव्यम् । तथा चालङ्कारे—

‘स्वैरं विहरनि स्वैरं शेने स्वैरं च जल्पति ।

१५

मिष्ठुरेकः सुखो लोकं राजचोरभयोऽज्ञितः ॥”

“स्वैरा मन्दे स्वतन्त्रे च” इति हैमी० ।

शङ्कुः सङ्कीर्णविवरे पलालाग्नौ च कीलके ।

संख्यायाम्

श कायति कूयते वा “शङ्कु ।

२०

काननोदभूते वह्नौ दावो दवोऽपि च ॥ १८ ॥

काननोदभूते वह्नौ दावो दवोऽपि च । दुनोतीति दवः । दाव । “वा उवलादिदुनीभुवो णः” ।

कीनाशः कृपणे भृत्ये कृतान्ते पिशिताशिनि ।

तथा पुण्यजनान् प्राहुः सज्जनान् राक्षसानपि ॥१९॥

लोभेन विलश्यते बाध्यते कीनाश । तालव्यः ।

२५

विरोचनो रवौ चन्द्रे दनुसूनौ हुताशने ।

विरोचते इत्येवशीलो विरोचनः ।

हंसो नारायणे ब्रह्मे यतावश्वे सितच्छदे ॥ २० ॥

हन्तीति हस ।

सोमश्वन्द्रोऽमृतं सोमः सोमो राजा युगादिभूः ।

३०

सोमः ग्रतानिनीभेदः सोमपोऽगस्त्यदिग्पतिः ॥ २१ ॥

१ का० उ० स० ३१६४ इति दप्तव्यः । २ अनेऽ स० २१२२६ । ३ “स्वत्येरेरिणीरिषु”
का० र० ३० प० ३८ । ४ अनेऽ स० २१४८२ । ५ शङ्कतेुस्मात् शङ्कु । “शकि शङ्कायाम्” । औषणा-
दिक् उ । ६ का० स० ४१२५५। इति गप्रत्ययः “दुदु उपतापे” ।

षुञ् अभिषेवे । अनेन सर्वेषां साधनिका शातव्या ।

अजो विघिरज्जो विष्णुरजः शम्भुरजस्तमः ।

अजस्त्वैवार्थिको ग्रीहिरजो रामपितामहः ॥ २२ ॥

न जायते नोत्पद्यते अजः ।

५

शुद्धेऽनुपहते वहौ ब्राह्मणे सचिवोत्तमे ।

आपादेऽध्यात्मसंवित्तौ ब्रह्मचर्ये शुचिमतः ॥ २३ ॥

१०

मतः कथितः । एतेष्वयेषु शुचिशब्द । शोचति जनो देहलग्नेऽत्र शुचि । तथा च यशस्तिलकचम्पूकाव्ये-

“न छाभिः सङ्गमो यस्य सर्वद्वन्द्वचिर्जितः ।

त शुचि सर्वदा प्राहुः मारुत च हुताशनमिति ॥”

अर्थोऽभिषेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।

१५

अर्थशब्द । पञ्चते । अभिषेयश्च शदो वाचक, शब्दमध्ये योऽसावर्थ स वाच्यः अभिषेयश्च कथ्यते । रा सुवर्णम् । वस्तु—अस्थादिलोहितादिर्वा । गैरिकान्वित (दिक च) वस्तु । प्रयोजनकार्यम् । निवृत्तिश्च मुकिः । तासु । शृः गतौ । अर्थते इत्यर्थ ।

भावः पदार्थचेष्टात्ममत्ताभिप्रायजन्मसु ॥ २४ ॥

एतेष्वयेषु भावः पञ्चते । भवतानि भावः । “वा” उल्लादिदुनोभुवो ण ॥”

प्रायो भूमोपमातकर्यप्रभृत्यननिवृत्तिषु ।

एतेष्वयेषु प्रायः शब्द ।

अन्तः पदार्थमामीप्यधर्मसत्त्वव्यतीतिषु ॥ २५ ॥

२०

एतेष्वयेषु अन्तः ।

अक्षो द्यूते वस्थाङ्गे नयनादौ निभीतके ।

द्यूते वस्थाङ्गे रथचक्रावयवे, नयनादौ, निभीतके पूतनायाम अक्षो वर्तते ।

सारः श्रेष्ठे वले वित्ते कोशे जलचरे स्थिरे ॥ २६ ॥

२५

श्रेष्ठे, वले, वित्ते, कोशे, कोशे वा पाठः । जलचरे, स्थिरे सारो वर्तते । सरत्यनेनेति सार ।

^३“बलमत्स्ययोश्च” इति परस्युवेण व॒ज् । स्वमते “अकर्तरि च कारके सज्जायाम्^४” इति पञ्च । “सारो मञ्जस्थिरांशयोः, वले श्रेष्ठे ‘च’ इति हैमी ।

वाचि वारि पशौ भूमौ दिशि लोम्नि रवौ दिवि ।

विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौमर्तः ॥ २७ ॥

३०

पूजा गच्छतीति गौ । गमेडोः ।

चन्द्रे सूर्ये यमे विष्णौ वासवे दर्दुरे हये ।

मृगेन्द्रे वानरे वायौ दशस्वपि हरिः स्मृतः ॥ २८ ॥

हरतीति हरिः ।

१ का० सू० ४२१५५ । २ प्रकृष्टमयन प्राय । “इण गतौ” । एरच् । ३. “सर्तेंस्थिरव्याधि-मस्त्यग्ने” है० शा० ५।३।१७ । ४ का० सू० ४५४४ । ५. अनें० सू० २।४७८ ।

पदे करिकरप्रान्ते व्योम्नि खड़फले गदे ।
वायभाण्डमुखे तीर्थे जले पुष्करमष्टसु ॥ २६ ॥

पुष्णातीति पुष्करम् ।

शृङ्गारादौ कथायादो घृतादौ च विषे जले ।
निर्यासे पारदे रागे वीर्येऽपि रस इव्यते ॥ ३० ॥

शृङ्गारादौ-

“शृङ्गारहास्यकरुणारोद्वीरभयानकाः ।

बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाटये रसाः स्मृताः ॥”

कथायादो—तिक्ताम्लमधुकटुकयोगे । घृतादौ—दुर्घदधिघृततैललवण्यकुरसेषु ।
विषे जले, निर्यासे वृक्षरसविषेषे, पारदे रागे, वीर्येऽपि रस इव्यते ।

५

१०

तीर्थं ग्रवचने पत्रे लघ्वाम्नाये विदांवरे ।
पुष्णारण्ये जलोत्तारे महासत्ये महामुनौ ॥ ३१ ॥

एतेष्वर्थेषु तीर्थम्^१ ।

धातुः पञ्चसु लोहेषु शरीरस्य रसादिषु ।

पृथिव्यादिचतुष्के च स्वभावे प्रकृतावपि ॥ ३२ ॥

१५

पञ्चसु लोहेषु मुवर्णं जतताम्रीतिकायेषु । शरीरस्य रसादिषु रसासु इमासमेदोऽस्थिमज्ञशुकेषु ।
पृथिव्यादिचतुषुके च पृथिव्यसेजावायु (वनस्पति) पु, स्वभावे, वाताप्तश्लेष्मादिषु एतेष्वर्थेषु धातुः
पृथिव्यते । दधातीति धातु ।

प्रधानशृङ्गलाङ्गूलभूपृष्ठप्रभावना ।

ध्वजलक्ष्मतुरङ्गेषु ललामो नवसु स्मृतः ॥ ३३ ॥

२०

एतेष्वर्थेषु ललामः । ललामन् ।

आकृतावक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु ।

माल्यानुलेपने चंच वर्णः पट्सु निगद्यते ॥ ३४ ॥

आकृतो, अकृते, रूपे, ब्राह्मणादिषु जातिषु माल्यानुलेपने च वर्णो^२ निगद्यते ।

अकारादावुदात्तादौ पड़जादौ निस्वने स्वरः ।

२५

एतेष्वर्थेषु स्वरः कथते । अकारादौ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, औ ए, ऐ, आ औं ।
उदात्तादौ—“उच्चैरप्लभ्यमान उदात्त,” “नीचैरनुदात्त,” “समवृत्या स्वरितः” । पड़जादौ—

“निपादपूर्वभगान्धारवड्जमध्यमध्यवनाः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रिकण्ठोत्थिता. स्वराः ॥”

निस्वने शब्दे ।

३०

सङ्केताचारसिद्धान्तकालेषु समयः स्मृतः ॥ ३५ ॥

समयते समयः ।

^१ तरति तीर्थते वाऽनेन तीर्थम् । ^२. “लड विलासे” । डलयोरमेदात् ललतीति ललामः ।

३ “वर्णं शब्दं” । वर्णयति वर्णते वा वर्ण । घजु कर्मणि, अज्वा कर्तरि । ४ सारस्व० स० २ । ५. शम्
को० १।७।१ ।

तन्नं प्रधाने सिद्धान्ते सैन्ये तन्तौ परिच्छदे ।
तन्यन्ते भुत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति तन्त्रम् । अप्रत्यय ।
सत्त्वमोजसि सत्तायामुत्साहे स्थेन्नि जन्तुषु ॥ ३६ ॥

५ एतेष्वर्थेषु सत्त्वम् ।
रूपादौ तन्तुषु ज्यायामप्रधाने नये गुणः ।
गुणायतीति गुणः ।
ज्ञानचारित्रमोक्षात्मश्रुतिषु ब्रह्मवाग्वरा ॥ ३७ ॥

१० वरा विशिष्टा ।
अवकाशे क्षणे वस्त्रे बहिर्योगे व्यतिक्रमे ।
मध्येऽन्तःकरणे रन्ध्रे विशेषे रहितेऽन्तरम् ॥ ३८ ॥

१५ एतेष्वर्थेषु अन्तरः ।
हेतौ निर्दर्शने प्रश्ने श्रुतौ कण्ठसमीकृतौ ।
आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ इष्यते ॥ ३९ ॥

२० इष्यते कथते । अथ एष्वर्थेषु ।
हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।
ग्रादुभावे समासौ च इतिशब्दः प्रकीर्तिः ॥ ४० ॥

२५ प्रकीर्तिः कथित इतिशब्द एतेष्वर्थेषु । इणु गतो । इ । प्रति एवमादिकमर्थमिति ।
“इति ॑अमुर्षणि प्रभृतिन्यो यावत्” इत्यनेनेतिप्रत्यय । इति जातम् । प्रथ० सि । “अन्व-
॒याच्च” सिलोपः ।

२० घर्मो घनुष्यहिसादावुत्पादादावये नये ।
द्रव्यक्रियाश्रये वित्ते जीवादौ दारुचैकृते ॥ ४१ ॥

३० एतेष्वर्थेषु धर्मः । धरतीति धर्मः ।
मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।
एतोवर्थेषु पुद्गलाः^३ ।
३५ अकर्मकर्मनोकर्मजातिमेदेषु वर्गणा ॥ ४२ ॥

(अकर्म पुद्गलस्कन्धः) कर्म-शानावरणादि, नोकर्म—शरीरादि । जातिगोत्रादि । एतेषु वर्गणा
वर्तते ।

३० ऐश्वर्यस्यासमग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्यावबोधस्य षणां भग इति स्मृतः ॥ ४३ ॥

भजन्त्यस्मिन्निति ४भगः ।
प्राहुः कौवल्यमार्हन्त्ये विविके निर्वृतावपि ।

१. कातन्त्रेऽस्य शुद्ध रूप नोपलब्धम् । २. का० स० २।४।४ । ३. पूर्यन्ते पुनः पुन सत्यधर्मे
इति पुरः । गलन्ति विलीयन्ते गलाः । पुरश्च ते गलाश्च, पुद्गलाः । पृष्ठोदरादित्वाद्रस्य द । ४. भजते
सेष्यते धार्यते वा भगः ।

केवलस्य भाव कैवल्यम् ।

लब्धिः केवलबोधादाविष्टासौ नियतौ श्रियाम् ॥ ४४ ॥

लम्बन लब्धिः ।

अनेकान्ते च विद्यादौ स्यान्निपातः श्रुते क्वचित् ।

‘स्यात् भवेत् एतेष्वयेषु निपातः ।

५

भैद्रारको धर्मचन्द्रस्तपद्मे धर्मभूषणः ।

तत्र देवेन्द्रकीर्तिः श्रीकुमुच्चन्द्रस्नतः परम् ॥ १ ॥

धर्मचन्द्रस्ततो ज्ञानसागरस्तपदेऽभवत् ।

तेन पुस्तकमेतद्वि दत्तं (लोकहितेच्छया) ॥ २ ॥

इति

धनञ्जयनाममाला सटीका समाप्ता

१ स्यात् इत्याकारको निरात एतेष्वयेषु इति सम्बन्ध । २ इतः पर मुद्रितपुस्तकेष्वधिकः पाठ उपलब्धते, तद्यथा—‘दर्शनादौ मणौ रन भव्यः शते प्रसेत्यति ॥४५॥ परमात्मा जिने सिद्धे पर-मेष्ट्यर्हदादिषु । सिद्धाः सिद्धनिष्ठायामर्हत्सिद्धभियामपि ॥४६॥ अर्हत्सिद्धमिति द्रावप्यर्हत्सिद्धाभिधायिनौ । अर्हदारीनपि प्राहुः शरणोत्तममङ्गलान् ॥४७॥ इति । ३ अत्राशुद्दिदोषात् किञ्चित्पाठमेद, स च शोधित इत्यरूपं संवृत्तः ।

अनेकार्थ-निघण्टुः

गम्भीरान् रचिराँश्चत्रान् विस्तीर्णार्थं प्रसाधनान् । कष्टशब्दान् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥१॥
 बागिदरभूरश्चिमवज्ञेषु पश्चक्षिस्वर्गं वारिषु । नवस्वर्येषु मेधावी गोशब्दमुपलक्षयेत् ॥२॥
 क प्रजापतिश्चिद्ष्टो को वायुरभिधीयते । कः शब्द स्वर्गं माण्याति क इत्यात्मा मत व्यवचित् ॥३॥
 सलिल कमिति ज्ञेय शिर कमिति चोच्यते । देवाननिमिषानाहुर्मत्स्याननिमिषांस्तथा ॥४॥
 अतिनश्च वर्हण चैव वृक्ष कुम्कुट एव च । शिखिनोऽभिहिता शस्त्रं पृथुकश्च मत शिखी ॥५॥
 हमो नारायणः प्रोक्तं व्यवचिद्द्वासो विवाकर । अश्वश्चापि स्मृतो हमो हस्तश्चापि विहगम् ॥६॥
 मारमस्सरसिजेन्द्रो पतञ्जयिं च सारस । राजाऽपि नृपतिज्ञयो राजा चोक्तो निशाकर ॥७॥
 विभावमुहुंतश्च स्याञ्छ्वेतच्छत्र व्यवचिद्द्वैते । हिमाराति स्मृतो वह्नि हिमारातिश्च भास्कर ॥८॥
 धनञ्जयेऽनिवृत्यादियातो पार्थश्चापि धनञ्जयः । बीभत्सश्च मत पार्थी बीभत्सो विकृत स्मृत ॥९॥
 अनिविरोचनं प्रोक्तो भास्करस्तु विरोचन । विरोचनश्च चन्द्रं स्यात्वचिद्दैत्यो विरोचन ॥१०॥
 पाञ्चजन्य व्यवचिद्द्विति व्यवचिद्द्वौ निगद्यते । कम्बुश्च गदितः शङ्खं कम्बुरिष्टश्च कुञ्जर ॥११॥
 भास्करोऽनिसमुद्दिष्टः सहस्राशुरपि व्यवचित् । पतञ्जो दिनङ्गद् ज्ञेय । पतञ्ज शलभः स्मृत ॥१२॥
 कोशिको वेवराजः स्यादुलूकश्चापि कौशिक । शम्भुरक्षां च विष्णुश्च शम्भुश्च भहेश्वरः ॥१३॥
 घृषकेनुभूत शडकु शडकु कीळ इहोच्यते । जम्बुको वरणो ज्ञेय शृगलश्चापि जम्बुकः ॥१४॥
 अक इष्टस्तु मधवान् घमांशुरकं उच्यते । मन्थो राहुश्च चन्द्रश्च ग्रहो मन्थो निरुच्यते ॥१५॥
 केतवो रक्षमयो ज्ञेयाः केतवश्च महाध्वजाः । तमोनुद सहस्राशुरधिनश्चापि प्रकीर्त्यते ॥१६॥
 मयूखा किरणा ज्ञेया मयूखाश्चापि कोलका । सप्तविश्वस्वं प्रोक्तः सप्तान्ये कृष्ण । व्यवचित् ॥१७॥
 चस्त्रं शवरा उक्ता देवाश्च वस्त्रो मताः । नक्षत्रं धिष्ठयमित्युक्तं गेहं धिष्ठयं मत व्यवचिन् ॥१८॥
 बासाऽम्बरमिति ख्यातमन्द्रर च नमःस्थलम् । पयं सलिलमृद्धिष्ट पयं क्षीरं मत व्यवचित् ॥१९॥
 शिवं पानीयमुद्दिष्ट शिवं श्रेयं शिवं सुखम् । शिवं व्योमर्पाति प्राहुः शिवं श्रेष्ठं प्रचक्षते ॥२०॥
 क्षरं जलं विजानांयात्वचिन्मेधं विदुः क्षरम् । स्यन्दनं चाम्बुर्निर्दिष्टं स्यन्दनश्च महारथः ॥२१॥
 कृष्णं तम समाख्यात कृष्णश्चाद्योक्तजस्तथा । अमृतं क्षीरमित्युक्तं व्यवचित्त्वेष्ट समुद्रजम् ॥२२॥
 शशं च सलिलं प्रोक्तं मृतमाहु शशं तथा । तोयं घृतमिति प्रोक्तं घृतं सर्पि व्यवचिद्द्वैते ॥२३॥
 पातीयं च विषं प्रोक्तं व्यवचिद्वालाहलं विषम् । हस्तिहस्त करं प्रोक्तं करो हस्तः प्रचक्षयते ॥२४॥
 कोलालं दधिरं प्रोक्तं नीरं चंच प्रशस्यते । भुवनं सलिलं प्रोक्तं आकाशं भुवनं स्मृतम् ॥२५॥
 प्रवालं कोमलं ज्ञेयं कोमलं स्पष्टवाचकम् । सदनं च स्मृतं तोयं सदनं वेशम उच्यते ॥२६॥
 तोयं सद्येति गदिति निलयं सद्यं निगद्यते । सवरं च जलं प्रोक्तं सवरः पर्वतो भवेत् ॥२७॥
 सवरत्वाऽमुर स्यातो यो बिभत्ति रसा प्रियाम् । स्वरवाक्षमास्त्रिदा प्राहुरिडा चाम्बरदेवताम् ॥२८॥
 पत्नीं चन्द्रेष्टिरा प्राहुरिला तत्समता गता । अदिति पृथिवीं ज्ञेया देवमाताऽदिति व्यवचित् ॥२९॥
 अध्यृष्टा भार्या परित्यक्ता त्वद्द्विदिश्च निगद्यते । वृद्धो धर्मं व्यवनिज्ञेयो गवामपि पतिवृष्टः ॥३०॥
 वृषा कण्ठश्च गदितो वृषा चोक्तः शतक्रतु । रोहिणेयो बलं प्रोक्तो रोहिणेयो बुधं व्यवचित् ॥३१॥
 बलदेवो मत शेषो नागो वा शेषं उच्यते । रामस्तु लागली ज्ञेयो रामो दाशरथं व्यवचित् ॥३२॥
 रामश्च शुक्लो वर्णो रामश्च धन्त्रनाशनः । वराहं केशवः ख्यातो वराहो जलद व्यवचित् ॥३३॥
 वराहं शकरो ज्ञेयो विष्णुमेंघो हरिस्तथा । अजाराट्स्मरेनद्वो ज्ञेयास्त्रिनेत्रश्चाप्यजो मत ॥३४॥
 अजं पशुश्च विल्यातो तथाजौ ब्रह्मकेशवौ । शरीरजः स्मृतो गोगं पुत्रश्चापि शरीरजः ॥३५॥

जय पुष्करमब्जं च नागनासामयमेव च । कूलं नभः समाख्यात् कूलं रोधं प्रचक्षते ॥३६॥
 ख चानन्तमिति प्रोक्तमनन्तं च बलं क्वचित् । विष्णुं क्वचिदनन्तं स्थानागश्चानन्तं उच्यते ॥३७॥
 प्रजापतिः स्मृतो राजा ब्रह्मा चापि प्रजापतिः । प्रजापतिः स्मृतं क्षत्ता क्षत्ता च चरं उच्यते ॥३८॥
 वामं पथोधरं प्रोक्तो वामं स्यावद्विविष्ट हरः । वामश्च मदनं प्रोक्तो वामश्च प्रतिकूलके ॥३९॥
 आगोपो गोपको ज्ञेयं क्वचिदागोपको ध्वजः । उरश्चाङ्गुं समाख्यातः स्थानमङ्गुं स्मृतस्तथा ॥४०॥
 वासरस्तु स्मृतो नागो वासरो दिवसो मतः । विभावसुनिर्देशं ज्ञेया गन्धर्वं च क्वचिन्मतः ॥४१॥
 शर्वदीर्थात्रयः प्रोक्ता, शर्वर्यं च स्त्रियो मताः । सान्द्रं धनमिति प्रोक्तं स्त्रियं सान्द्रं निगद्यते ॥४२॥
 स्वः स्वर्गस्य मतं नाम स्वः सुखं क्वचिदुच्यते । स्व आत्मा चैव निरिष्टः स्वं प्रोक्तो गृहमूषिकं ॥४३॥
 ककुञ्छलन्दोविशेषज्ञो मतः शास्त्रेषि ना ककुपः । ककुम्भीरुहं प्रोक्तो ज्ञेयस्तु ककुभो दिवः ॥४४॥
 क्षयं वेशम् समुद्दिष्टं क्षयं रोगं प्रचक्षते । जन्दस्तु प्लवो ज्ञेयं प्लवो ज्ञेयस्तथोडुपः ॥४५॥
 प्रासादो मण्डपं प्रोक्तो विहारश्चापि कथयते । घनं घनं विजानीयाद् घनं विपुलमुच्यते ॥४६॥
 प्रयुज्यते च कस्त्रियिच्छ घनं सङ्घातवायामो । वृह्ण्य स्यन्दनाप्य स्याद्रूपं वेशम् उच्यते ॥४७॥
 चमूश्च वर्मं तहसा प्रवदन्ति मनीरिप । अमुराश्च मुरा ज्ञेया क्वचिद्वारायोऽमुरा ॥४८॥
 नागाश्च द्विरदा ज्ञेया पन्नाइव क्वचिन्मता । गन्धर्वं च तथा वायुं क्वचिन्म्याद् देवगायत्रे ॥४९॥
 नार्थीं हयं समुद्दिष्टस्त्राकर्त्रं चापि पन्त्रिगाटः । बालेषानमुग्नानाहुवलियाद्वच क्वचिन् खरान् ॥५०॥
 नृणो वनस्पति प्रोक्ता वनचिदप्राइच कथयते । शिवरो वृक्षं उटिष्ट शिवरो पद्मं तस्मृत ॥५१॥
 दिजो विप्रश्च दन्तश्च दिजं पक्षो निगद्यते । चौरो मतिम्लुचो ज्ञेयो वातश्चापि मतिम्लुच ॥५२॥
 आन्तजं रक्तपुद्दिष्टं सुतं कामस्तयैव च । कीनाशो मृतको ज्ञेयं कीनाशश्चापि राक्षस ॥५३॥
 कीनाशोऽग्निं कृतनश्च कृपणो यम एव च । कीनाशो कर्षको ज्ञेयं कीनाशश्च वृकोदरः ॥५४॥
 अवदात प्रधानं स्यादवदानं च पाण्डुरम् । ज्योतिलर्णेचनमिष्टं ज्योतिनक्षत्रमुच्यते ॥५५॥
 ज्योतिश्च गदितो वह्निं काव्येषु मुनिषुहृदये । प्रधानं नज्जनं ज्ञेयं प्रधानं श्वेतमुच्यते ॥५६॥
 अद्वः सवत्सरो ज्ञेयो मेषधश्चापि क्वचिन्मत । बलाहका महामेवा शिवरी च बग्धाहक ॥५७॥
 तोयद जन्द प्राहुस्तोयद कथयते धूतम् । जीमूतश्च मतो नागो जीमूतं क्वचिदस्वृद्ध ॥५८॥
 पोलस्त्य तु मतं युद्धं पोलस्त्यं पोरुषं विदु । शुचिरुद्रवकश्चनैव प्रोक्तो निन्द्रं ब्रुदं रम ॥५९॥
 परजन्यं जलद प्राहुं पर्जन्यं तु शतकनु । शिशीमुवा स्मृता वाणा भ्रमगद्य शिशीमुखा ॥६०॥
 लेखा सीमेति विज्ञेया लेखा प्रित्रकृतो मना । अम्बरीषं क्वचिद्भाषु वविलुद्धं निगद्यते ॥६१॥
 पुस्तवं वापि मतं युद्धं पुस्तवं पोरुषमुच्यते । विद्वामोर्फिप्तो ज्ञेया विद्वासम्बवस्वो मता ॥६२॥
 मायाऽविद्येति विज्ञेया क्वचिन्माया तु सावरी । मधुं द्राक्षीति विज्ञेया क्वचित्स्यान्मधु माक्षिकम् ॥६३॥
 मधुं चाम्बु समाख्यात् सुरा च मधुसत्तका । ख रध्मिति विज्ञेयं ख गृहं नभं एव च ॥६४॥
 खमिन्द्रियमिति स्थायात् ख च नक्षत्रमुच्यते । धार्तराष्ट्रा महाहसा धूतराष्ट्रमुता क्वचित् ॥६५॥
 प्रभाकरो मतं सूर्यो वह्निश्चापि प्रभाकर । सितं शक्लमिति ज्ञेयं सितं बद्धं प्रचक्षते ॥६६॥
 असितं कृष्णमित्युक्तं अशितं भक्षितं स्मृतम् । वभूस्तु नकुलो ज्ञेयं पाण्डवो नकुलस्तथा ॥६७॥
 त्रिशङ्कुमाहुर्मार्जरमविश्चापि तयेष्यते । यमस्तु वायसो ज्ञेयो यमं प्रेताधिष्ठितस्तथा ॥६८॥
 लक्षणं सारसं विद्यात्तथा दशरथात्मजम् । लक्षमं चान्दस्य काठ्यं स्यालक्षम्यं केतुः प्रकोपितात् ॥६९॥
 केतुश्चापि मतं काव्ये लक्षमेति मुनिषुहृदये । जारुण्यं स्मृतो दक्षो दक्षश्चाचेतसं क्वचित् ॥७०॥
 आशुकारी भवेद्दक्षं स्यादलो तोमरं स्मृत । अदित्यं च र्वं विद्याद् दंत्यश्चायदिते सुत ॥७१॥
 रोगो रजस्तथा रेणूं रजो लोहितमुच्यते । स्वन्धो नितम्बवस्त्रं स्यान्तितम्बं जघनं तटम् ॥७२॥
 हेमं वस्त्रिति विज्ञेयं वसुं तेजो निगद्यते । सारङ्गं चातकं प्राहुः स्वर्णं चापि सितासिती ॥७३॥
 रम्भाश्च कदली प्राहूं रम्भा स्वर्णाङ्गुना मता । प्रावाणो गिरिजा प्रोक्ता मेषधश्चापि मनीषिभि ॥७४॥

..... निगद्यते । औषण रसमुद्दिष्टमूत सत्यमपि वरचित् ॥७५॥
 अक्ष आत्मेति विज्ञेयः केचिचाहुविभीतकम् । ज्ञेयमिन्द्रियमक्ष च शाकट कर्ष एव च ॥७६॥
 अक्ष च पाशक विद्याहृथ्यवहारिकमेव च । पदमिन्द्रियमित्युक्तं पद्य तामरस विदु ॥७७॥
 चंत्यमायतनं प्रोक्तं नीडमायतनं तथा । पुष्पं लोहितमुद्दिष्टं पुष्पं च कुसुमं तथा ॥७८॥
 वाजी तुरङ्गमो ज्ञेयो वाजी ज्ञेयो विहङ्गमः । विलिवन्दिसिहमण्डूकचन्द्रादित्यांस्तु वानरान् ॥७९॥
 अभृतिवानिलहृष्णः हरीनिछल्निति कोविदाः । पुरुषवज्रलिङ्गेषु हृष्णभूषणलक्ष्मणु ॥८०॥
 रामशेषावनीन्द्रेषु ललाम नवसु स्मृतम् । शुक्रा स्मृताऽधिविदेषो ना लबली मञ्जरी तथा ॥८१॥
 वक्षवक्ष शको ज्ञेय कोकिला वचनप्रिया । पुलिन जलविच्छेदं पञ्चाङ्ग स्यात्कुशेशयम् ॥८२॥
 रतं पापमिति ज्ञेय सत्वरं शीघ्रमुच्यते । पिण्डं रोचनाभं स्याम्भेदकस्तिलको मतः ॥८३॥
 ललाटेऽवस्थित चिह्नं विवृद्धस्तिलकं मतम् । परिचर्यं च कटकं निकपस्तु कवो मतः ॥८४॥
 नानारत्नंरूपचित्ता मञ्जूषं रागिणी स्मृता । दिनकृद्वार्जिसिद्धेषु केसरित्वं विधीयते ॥८५॥
 अव्यक्तो मधुरं शब्दः कलं इत्यभिधीयते । अलातमुलकं ज्ञेय छेदो नामं भयङ्कर ॥८६॥
 भावं शृङ्गारमाधुर्यं भावोऽवस्थाप्ररूपणम् । विलासं कामजो दोषस्तदेव ललितं मतम् ॥८७॥
 उत्तमाङ्गं विना देह कवचं चेति शस्यते । गिरसो वेष्टनं यद्युं तदुण्णीषं निगद्यते ॥८८॥
 आहृतं समवीर्यं स्यान्निविडं पीडितोन्तम् । मण्डको भेकसङ्गः म्यादर्षाभृत्वातको मतः ॥८९॥
 शिवा पिङ्गलवनी ज्ञेया विशालं सबलं मतम् । दुर्द्वर्षा शिपिविष्टं स्यात्कर्षकस्तु कृषीबल ॥९०॥
 कन्याजातश्च कानीनो पण्ड कलीब इति स्मृत । उत्कष्टं श्वसुरं स्याता म्लिष्टमव्यवत्वाचकम् ॥९१॥
 रवनो हस्तवत्तं स्याद्वानं कटकसज्जितम् । तोदनं चाइकुशं विद्यादालाम हस्तबन्धनम् ॥९२॥
 घनाघनं इति ख्यातं शास्त्रेष्वधिकपौरुषं । अपाचीनं मनोजं च बुद्धिज्ञेया तु शेमुषी ॥९३॥
 अर्कस्तु पादपे ज्ञेयो नदी स्यात्केनवाहिनी । अश्वारोहो मरुद्यानोऽश्वानां हृदये ध्वनि ॥९४॥
 आकून्व इति विज्ञेयं खुराश्च शफसीजिता । आममासं भवेन्कव्यं पक्वं पिण्डामुच्यते ॥९५॥
 शुक्रं तु विरसं ज्ञेयं मृष्टं सरसमुच्यते । शङ्खं शुक्तिजं चैव वाराहं निमिमौकितकम् ॥९६॥
 वशादाशीविष्णवान्नागाज्जीमूताच्च तथाष्टमम् । लोकज्ञो दक्षिणो ज्ञेयो दक्षिणश्च तुरं स्मृत ॥९७॥
 आकूतं तु मतं विश्वात्कण्ठं गहनं मतम् । आननं चाकुले नेत्रे चिकुरं चापि शस्यते ॥९८॥
 पापं श्यामं इति प्रोक्तो वभ्रुस्तु कपिलो मत । स्थविष्टं स्थावरे चैव दविष्टं दूरमुच्यते ॥९९॥
 परमेष्ठो मतं श्रेष्ठं प्रेमं प्रियमुदाहृतम् । प्रकाशं स्त्रीगृहेरक्तं शैलूषं इति सज्जित ॥१००॥
 पवक्त्रचम्पकारं स्यान्नापितस्त्वजयं स्मृत । लावण्यमाहूर्माधुर्यं चित्रं च शुभकम्मजम् ॥१०१॥
 व्याधयश्चामया प्रोक्ता पानीयं तु समुच्चय । आधयस्तु स्मृता प्राज्ञैश्चित्तोत्पन्ना उपव्रवा ॥१०२॥
 रहो वेगं समाख्यातं सत्रं सच्चरितं स्मृतम् । आलदालं स्मृतं सद्भिरपा वेगनिवारणम् ॥१०३॥
 चटकं कलविङ्गं स्यात्तुल्यं सदृशमुच्यते । किलासं पाण्डुरं ज्ञेयं दोला प्रेष्टुति शस्यते ॥१०४॥
 मन्दिरं नगरं ज्ञेयं निलयं चापि मन्दिरम् । सहस्रनयनोऽगारं प्रधनं युद्धमुच्यते ॥१०५॥
 पलाशो हरितो वण्णो मेचको नीलपित्तजर । उक्षणं वृषभं विद्याल्लुलायो महिषो मत ॥१०६॥
 उस्त्रा वध्या वसा वेहत् पृष्ठोही गर्भणी हि या । व्याख्यातो मस्करो वेणुस्त्वचिसारं परिकीर्तित ॥१०७॥
 हिलं कामं शपं चैव रोषमाहूर्मनीषिण । कलभोऽल्पवयो नागं कलुषं चाविलं मतम् ॥१०८॥
 वृजितं कुटिलं विद्यात्सन्नाद् राजा च भूभुजौ । रत्नं वज्रं विजानीयात्रियामा क्षणवा मता ॥१०९॥
 द्वीर्घं प्राशु विजानीयात् हस्तं नीचकमुच्यते । भूरि प्रभूतमुद्दिष्टमभितः सर्ववाचकम् ॥११०॥
 पवनश्वानिलो ज्ञेयं पवनश्चाधमो जन । प्रियवाक्यो भवेदार्यं स्नातश्च परिकीर्तित ॥१११॥
 आङ्गम्बरश्च पटहो व्यञ्जनं बोधनं मतम् । विपची वल्लकी ख्याता बोणा चैव निगद्यते ॥११२॥
 मालतीं सुमना ज्ञेया सुमना मुदितो जन । वल्लरी मञ्जरी ख्याता प्रपात्प्रशाला प्रकीर्तिता ॥११३॥

आयुर्निवृत्यते तोयं तेन जीवति पश्यकम् । तस्य पत्राक्षिभानेन रामो राजीवलोचनः ॥११४॥
 उत्कृष्ट्य कवच देहादसुगदाव च यत्पुरा । इन्द्राय वैत्तवान्कर्णस्तेन वैकर्तन स्मृत ॥११५॥
 तीक्ष्णहृचंव प्रचण्डहृच बृको नामानलो मत । स पाण्डवस्य उवरे तेन भीमो बृकोदर ॥११६॥
 यस्य श्रुतिमुखा वाणी पुण्य-इलोक स उच्यते । य लेदी चानिवर्ती न पुद्धशौण्ड स उच्यते ॥११७॥
 महासर्गंसङ्कृतात् सर्वेवास प्रचक्षते । स्वविक्रमंस्तापयेच्च पर यथ तापयेत् ॥११८॥
 यूथ तापयेत्स्त विलेपवृच स यूथप । तस्मादपि च यो वर्य स तु यूथपयूथप ॥११९॥
 सिहानिन्तान्तसौवोर स नृसिंह इति स्मृत । ये हि स्पष्टप्रवक्तारो मतास्ते व्यक्तवादिन ॥१२०॥
 यो यमित्य च नाम्नाति स कीर्तना इति स्मृत । यो ब्रह्मद्वो ब्रुप्लबुद्धिवृच स तु मन्द इति स्मृत ॥१२१॥
 उपकार तु यो हन्ति स कृतव्यं इति स्मृत । हर्षे गर्वे सुखे लेदे वृद्धौ च प्रतिभासते ॥१२२॥
 स्नेहभाग्यक्षये चैव मन्दशब्दो निगद्यते । नातीत्य वर्तते यत्र तदध्यात्म प्रचक्षते ॥१२३॥
 चेतसङ्च समाधान समाधिरिति गद्यते । सर्वक्लेशाविनिर्मुक्तो स हि दान्त इति स्मृत ॥१२४॥
 निर्ममो निरहङ्कारो विजेय छिन्नसशय । प्रदाता देशकालत्र समाधिस्यः स उच्यते ॥१२५॥
 मुखरोऽप्तमतिर्यस्तु सक्रोधवृचंव कोटक । वृत्तिर्यत्र तु गृह्याना परोक्षे बहि तत्किया ॥१२६॥
 आहारव्यवहारेषु सा प्रीतिर्निरुपस्करा । परस्पर स्वदारेषु सत्ता येषा प्रवर्तते ॥१२७॥
 विश्वभात्प्रणयाद्वापि सा प्रीतिर्निरुपद्वा । यज्ञ स्यातिरिति प्रोक्त तद्योगात्प्राहुरुच्यते ॥१२८॥
 कोर्तिस्यातिपशोयोगाद् भगवन्निति चोच्यते । प्रियदानेषु य शुद्ध स उदार इति स्मृतः ॥१२९॥
 रजस्वना तु या नारी सा चोदक्या प्रकीर्तिता । प्रीतिर्भविक्ये स्वच्छरक्षालिगितनु विपुस् ॥१३०॥
 तेजो रेतसि दीप्तौ तपो हि स्याद् वृवार्थक । योऽन्यजातो हनो जीव स शराह इति स्मृत ॥१३१॥
 मिथ्यादृष्टिरहमानी नास्तिक स प्रकीर्तित । कामः ऋषिवृच वै पूर्वे लोभोऽसत्य च मध्यमे ॥१३२॥
 अन्ते मोहो विषादहृच यस्य ज्ञेय स षड्वद् । अमृते जारज कुण्डो मृते भर्तरि गोलक ॥१३३॥
 अनयोर्योऽनन्ममन्नाति स कुण्डारी निगद्यते । भ्रूणस्त्री गम्भीरी बाला ब्राह्मणी ब्रह्मजीविनी ॥१३४॥
 परचिते यवोयान् यो ज्येष्ठपत्नी परामृशन् । यः पश्चिमश्च ज्येष्ठोऽपि परचित स उच्यते ॥१३५॥
 पुष्पज क्षेमज चर्मस्कोशज भर्म्मज तथा । गुणज च समुद्दिष्ट तदभेदा वस्त्रजातिषु ॥१३६॥
 विन्द्वारक्तव्यरा या स्त्री बिन्द्वोष्ठी ता विनिर्दिशेत् । या स्पात् सकीडनपरा ललना ता विनिर्दिशेत् ॥१३७॥
 द्रुव्वर्काण्डप्रतीकाशा कुभी यस्यास्तनु कुची । सर्वरूपविविक्ताङ्गी सा भवेद्रवर्णिणी ॥१३८॥
 लावण्ययुक्ता या नारो ललिता ता विनिर्दिशेत् । या मत्ता मत्तवज्जयोति. सा ज्ञेया मत्तकाशिनी ॥१३९॥
 भूरिश्च भूरिसुहित अन्त श्रव इति स्मृतम् । भूरि श्रवो ददातीह तस्माद् भूरिश्रवो हि स ॥१४०॥
 चतुर्णादविवातिभुजो लोहितप्रीव एव च । निसर्गाद्वाहणात्कूराद्रवणाद् रावण स्मृत ॥१४१॥
 रोषणा या भवेद्वारी भामिनी ता विनिर्दिशेत् । न्यग्रोधलक्षण विद्याद्वाना परिमण्डलम् ॥१४२॥
 ताम्यामुपेता वनिता न्यग्रोधपरिमण्डला । तत्त्वये चाक्षिणी यस्या सा स्त्री राजीवलोचना ॥१४३॥
 वर्णप्रमाणनिर्धोषोऽलिङ्गसपद्भिरन्वित । राजीवमन्ये शसन्ति स्तनधर्वण सितासितम् ॥१४४॥*
 किंचिदुत्तरत्वयोगात्सोता राजीवलोचना । बलिभिर्यस्त्रभिर्युक्ता शङ्खकण्ठी उदाहृता ॥१४५॥

जराकराकार स्यन्दनाप्रभिवाप्रत । वस्त्वे ति तज्ज्ञेय तस्यवाप्त ॥१४६॥

त मर्मसयुक्त तत्त्वालिनमुच्यते । ग्रहणे धारणे सामे वाहने धर्मसयुता ॥१४७॥

रमणे कीडने सङ्गे भार्या नाम प्रवर्तते । मूढतायां सविद्याया सप्ताश्वस्त्वशुमालिनि ॥१४८॥

विषमाक्षदरा एते ज्ञेयात् ते विस्तिता । कोटरस्था इति ज्ञेया सर्पकीटखगादय ॥१४९॥

आताम्बपल्लवो यस्तु वृक्षाणामचिरोद्गम ॥१४०॥

सौकुमार्य किसलय कोमलत्व च तत्स्मृतम् । शताना च चतुर्हस्त नल्व तदिहसन्नितम् ॥१५१॥

* नोट—मूल प्रतिमे १४४ से १४८ तक के पदोपर उनके नम्बर नहीं पढ़े हैं।

कुम्भो वाह प्रस्थ सम नत्व इति विधीयते । विपिन शून्यमित्युक्त विपिन गृहमेव च ॥१५२॥
 हकम वर्णं च वाम च वर्णनीयार्थवाचक । सर्वार्थश्चाप्युवर्णं च पानीय शीतमुच्यते ॥१५३॥
 नोहार शीतमित्युक्त प्रदोषान्तो निशीयक । ॥ १५४ ॥
 इति महाकविश्रीघनञ्जयकृते निघण्टुभमये शब्दसकीर्णे अनेकार्थप्रस्पष्णो द्वितीयपरिच्छेद ॥२॥

एकाक्षरी-कोषः

विश्वाभिधानकोशानि प्रविलोक्य प्रभाव्यते । अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका ॥१॥
 अ कृष्ण आ स्वयम्भूरि काम ई श्रीहरीश्वर । ऊ रक्षणं कृ ऋ ज्ञेयो देवदानवमातरौ ॥२॥
 लृदेवसूर्लवरिही भवेदेविष्णुरे शिव । ओर्बेष्ठा औरनत स्पाद ब्रह्म परमअ शिव ॥३॥
 को ब्रह्मात्मप्रकाशाके क स्याद्वायुयमानिषु । क शीर्षं सुखे कुस्तु भूमो शब्दे च कि पुन ॥४॥
 स्यात्क्षेपनिन्दयो प्रश्ने वितके च खमिन्द्रिये । स्वरगे व्योम्नि मुखे शून्ये सुखे सविदि खो रवो ॥५॥
 गस्तु गातरि गधब्बे गा गीतौ गो विनापके । स्वर्गे दिशि पश्चो वज्रे भूमाविन्दौ जले गिरि ॥६॥
 घस्तु सुघटीशे धा किकिष्या च धृधर्वनौ । डो भजने डो वृष भेजिने च चन्द्रचौरयो ॥७॥
 च सूर्ये कछुपे छ तु निमंले जस्तु जेतरि । विजये तेजसि वाचि पिशाच्या जि जवेऽपि च ॥८॥
 झो नष्टे रवे वायो झो गायने घर्घरधन्वनौ । ट पृथिव्या करटे च ठो धवनौ ठो महेऽवरे ॥९॥
 शून्ये वृहद्दूषनो चद्वमडले ड शिवे धवनौ । ढो भये निर्गुणे शब्दे ढकाया णस्तु निश्चये ॥१०॥
 ज्ञाने तस्तस्करे झोडपु चछयोस्ता पुनर्दया । थो भीत्राणे महीधे द पत्या दा दातृदानयो ॥११॥
 बन्धे च धा गुह्ये केशे धातरि धीमतो । धूर्भारकर्पाचतासु नो नरे बन्धुबुद्धयो ॥१२॥
 निस्तु नेतरि नु स्तुत्या नौ सूर्ये पस्तु पातरि । पावने जलयाने च फो ज्ञानाजलफेनयो ॥१३॥
 भा: कातौ भूर्भुव स्थाने भीर्ये म शिवे विधी । चद्रे शिरसि मा माने श्रीमात्रौवारणेऽव्ययम् ॥१४॥
 मु पु सिंबं धने यस्तु मातरिश्वनि य यश । यास्तु यातरि खट्वागे याने लक्ष्म्या च रो धृतौ ॥१५॥
 तीव्रे विश्वानरे कामे रा स्वर्णे जलदे धवनौ । री भ्रमे र्भये सूर्ये ल इद्रे चलनेपि च ॥१६॥
 ल तेले ली पुन श्लेषे ली भये वो महेऽवरे । व पठिचमदिशास्वामी व इवार्थे स्मरेऽप्ययम् ॥१७॥
 श शुभे ज्ञा तु शोभार्थं शो शयने शु निशाकरे । ष शिलष्टे पुनर्गमे विमोक्षे ष परोक्षके ॥१८॥
 सा लक्ष्म्या हो निपाते च हुस्ते दारणि शूलिनि । क्षेत्र रक्षसीत्युक्ता माला प्राक्सूरिसम्मता ॥१९॥

इति एकाक्षरी नाममाला समाप्ता ॥४॥

धनञ्जय-नाममालागतशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ	अ		अन्यर्थ	८३	१७३	अन्तक	७१	१४५
अग्	२३	४५	अदभ्र	९०	१९१	अन्तरिव	२८	५३
अशुक	५९	११७	अदितिसुत	३०	५६	अन्त्य	६३	१२४
अम	५०	१०१	अदभूत	८४	१७४	अन्त्यकाश्यप	५८	११५
अहम्	६६	१३०	अटि	४	८	अन्वेषासिन्	३	४
अहिम्	५	११	अधम	{ ७३	१५४	अन्वकार	७२	१४८
अकूपार	१२	२५	अधर	{ ८१	१६८	अन्वय	६३	१२४
अक्ष	{ ६१	१२२	अधिप	५०	१००	अन्ववाय	"	"
	{ ६५	१३०	अधोक्षज	५	१०	अन्वह	७९	१८९
अधिः	४९	९९	अध्वन्	३७	७५	अन्वित	७७	१६१
अजार्हाहीर्णि	४३	८६	अध्वन्	७८	१६२	अन्वीत	"	"
अग्निल	८८	१८७	अनन्तर	६०	१४१	अहाय	७६	१५७
अग्	५	११	अनन्तात्मन्	३६	७३	अप्	७	१५
अग्नि	३३	६४	अनन्यज	३९	७७	अपघन	१९	३८
अग्निसून्	३४	६६	अनभ्राट	८	१८	अपन्य	१९	३९
अग्रज	{ २१	४३	अनल	३३	६५	अपाह्न	४९	९९
	{ ५०	११४	अनास्त	८९	१८९	अपाख्वार	१३	२५
आग्रम	७५	१५६	अनालस्व	६७	१३५	अप्राज	८०	१६६
अज	६६	१३०	अनिमिष	{ } ८	१७	आसरोनाथ	३०	५९
अङ्	८०	१६५	अनिमेष	{ } ८	१७	अबला	१५	३१
अङ्ग	११	३८	अनिल	३२	६२	अद्वज	२७	५१
अङ्गना	१४	३०	अनीक	४३	८६	अद्वित	१२	२५
अङ्गराम	६०	११९	अनुकम्पा	५४	११०	अभय	९१	२००
अङ्गाकृत	९१	१९७	अनुक्रोध	"	"	अभियोग	८४	१७४
अटिःप्र	५१	१०३	अनुग	१४	२९	अभिराम	८५	१७५
अटिःप्रा	५	११	अनुचर	"	"	अभिरूप	५५	१११
अचल	४	८	अनुज	२१	४२	अभिलाप	७७	१६०
अज	३६	७२	अनुजा	२१	४३	अभिलापुव	८४	१७५
अजय	९१	११७	अनुजीविन्	१४	२९	अभिमारिका	१७	३५
अजस्र	८९	१८९	अनुरग्म	८४	१७५	अभीष्टण	८८	१८५
अजातरिपु	७१	१४६	अनेकप	४५	८८	अभ्यण	६९	१४१
अञ्जनात्मज	३३	६३	अनेहम	६२	१३२	अभ्यास	{ ६९	१४१
अटनो	४०	७९	अनोकह	५	११		{ ८६	१८५
अटवी	६	१३	अन्त	५	९	अभ्र	{ ८	१८
अत्यन्त	८३	१७३	अन्त करण	४१	८१	अमर	३०	५६

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अमर्ष	५४	१०९	अवर्गज	२१	४२	आत्यन्तिक	५७	१६१
अमल	८४	१७३	अवलम्बन	८७	१११	आदेश	८४	१५५
अमा	७७	११०	अवसर्य	६६	१३३	आनन	४९	९८
अमित्र	२२	४४	अवसान	८२	१७१	आनन्द्य	१०	१११
अमृत	६२	१२२	अवसर्प	८६	१८२	आनन्द	५४	१०९
अमृताद्भव	१५	२५	अवश्याय	८५	१७९	आपगा	१२	२४
अम्बर	२८	५३	अविद्वार	६९	१४२	आभरण	६०	११९
	५९	११३	अशनि	०	१९	आच्य	५७	११४
अम्बु	७	१५	अइलील	७२	१०६	आस्नाय	८३	१२४
अम्बुजानन	६८	१३७	अश्व	२-	५२	आयुव	८२	८३
अम्बुवि	८	१६	अष्टगान्	४६	१०	आर्या	१३	३४
अम्भम्	३	१५	अटापद	१४३	१०	आलम्यमुख	३३	१२१
अयस्	८२	१७२	अमि	६३	५०	आलय	८८	१३२
अग्रण्य	८	१३	अमित	३२	१८८	आलम्य	५७	१६०
अरण्यानीचर	७	१४	अमुपति	७८	३३	आली	२०	६१
अरम्	८३	१३२	अमृज	८९	१५८	आवलि	१३	८८
अर्पणंद	११	२१	अमुकुकार	११	१०८	आवाम	८८	१३३
अर्गानि	२२	४४	अम्ब्र	४२	८३	आवृति	१०	१९४
अग्नि	२२	४४	अहयु	८१	२६८	आवय	५१	११०
अरुण	१२	१५०	अहन्	२८	१०	आशा	३२	६१
अर्क	२६	४९	अहन्तानि	५८	११०	आयु	८३	१५०
अर्णि	२३	४५	अहि	८४	१२८	आशुद्युवर्ण	३३	८६
अर्जुन	८७	१३	अहित	२२	६४	आरन्य	८८	१३८
	७०	१८३	अहा	८६	१३६	आमन	११६	११३
	७१	१४७					१६७	१३५
			आ					
अर्णव	१५	२६	आकालिकी	९	११	आमन्दी	५६	११३
अर्णस्	७	१५	आकाश	२८	५३	आमन्न	६९	१४१
अय	८३	१५	आकृत	८१	८१	आमव	६१	१२१
अर्भक	२०	४०	आवृत्त	३०	५७	आम्बानाविपति	५६	११२
अर्यमन्	२६	४९	आगम	३	४	आम्पद	६६	१३३
अर्वत्	२७	५२	आगार	६६	१३३	आम्य	४९	९८
अर्हन्	५८	११६	आचार्य	५१	१११	आम्वनित	८१	८१
अलकानिलय	४८	९६	आजि	४४	८७		३	
अठि	४२	८२	आज्ञा	७४	११४	उन	५	१०
अलिप्रभ	७२	१४८	आज्य	६१	१२२	उन्दिग	३८	७६
अलीक	८८	१८६	आतन	७६	१५८	इन्दीवर	११	२१,२२
अवदान	७१	१४७	आतपत्र	९०	१९४	इन्दु	२३	४६
अवद्य	७३	१५२	आताङ्क	७२	१४९	इन्दुमौलि	३५	६९
अवधि	१३	२६	आत्मज	१९	३९			
अवनि	३	५	आत्मभू	३६	७३			

ગઢ	પૃષ્ઠ	શ્લોક	ગઢ	પૃષ્ઠ	શ્લોક	ગઢ	પૃષ્ઠ	શ્લોક
ઇન્દ્ર	૫	૧૦	ઉદ્યાગ	૮૪	૧૩૪	એદ્વાકુ	૫૭	૧૧૪
	{ ૩૦	૧૭	નદ્વિ	૧૦	૧૦		ઓ	
ઇન્દ્રજિત्	૮૫	૧૨૮	ઉદ્ઘાહ	૧૯	૧૮૯	ઓષ	{ ૬૩	૧૨૦
ઇન્દ્રિય	૬૫	૧૨૯	ઉભન	૮	૧૫૮	આષ	{ ૬૯	૧૪૦
ઇમ	૪૫	૮૮	ઉપકષ્ટ	૧૩	૨૬	આષદીશ્વર	૫૦	૧૧૦
ઇન	૬૧	૧૨૦	ઉપન્યકો	૮	૯		૨૪	૪૩
ઇન્દ્રા	૩	૬	ઉપમા	૬૩	૧૩૬		૭	૧૫
ઇન્દુ	૩૯	૩૮	ઉરમાન	૬૮	૧૩૭	ક	{ ૩૬	૭૩
ઇન્ટ	૧૮	૩૭	ઉપણ	૮૨	૧૦૦		{ ૧૨	૧૦૪
ઇન્ટા	૧૬	૩૩	ઉપાનુ	૮૪	૧૦૫	કૃતુ	૩૨	૬૧
	૬૪					કથ	૬	૧૩
ઇંગિન	૫૨	૧૦૪	ઉપન્દ્ર	૨૩	૫૪	કથા	૬૩	૧૩૬
ઇંગાન	૫	૧૦	ઉમય	૮	૭	કચ	૧૦	૧૦૮
ઇંગિન	૫	૧૦	ઉમાપત્રિ	૨૧	૦	કંચ્ચુક	૧૦	૧૯૪
ઇંદ્રવર	૫	૧૦	ઉરગ	૮૪	૧૨૮	કદાથ	૬૯	૯૯
ઇંદ્રામૃ	૫૫	૧૨૩	ઉરગોકૃત	૧૧	૧૩૩	કટિ (કટી)	૫૧	૧૦૩
	૩		ઉર્ગુ	૮૦	૧૦૨	વર્દિસૂત્ર	{ ૬૦	૧૨૦
ઉગ્ર	{ ૩૫	૩૦	ઉર્વંગ	૩	૬	કટીસૂત્ર		
	{ ૮૩	૧૮૪	ઉર્વી	૩	૬	કઠિન	૫	૧૫૫
ઉચ્ચ	૭૬	૧૫૮	ઉર્વા	૯	૧૯	કઠોર	,	,
ઉચ્ચાવચ	,	૧૧૮	ઉર્વણ	૮૩	૧૮૪	કણ	૩૭	૭૮
ઉચ્ચેમ	,	૧૫૮	ઉર્દ	૮૨	૧૧	વણ્ઠ	૫૦	૧૦૦
ઉર્ચદ્રુત	,	૧૧૮	ઉર્ણવાણ	,	૧૧૬	કણીશ્વ	૮૫	૯૦
ઉર્દુ	૮૫	૪૮	ઉર્વ	૮૩	૫	કદન	૪૪	૮૭
ઉર્કટ	૮૦	૧૮૪				કદમ્બ	૬૦	૧૩૯
ઉનાલિવા	૧૨	૨૦				કટ્ટદ	૮૦	૧૬૬
ઉનમાત્ર	૫૨	૧૦૪	ઉરીકૃત	૧૧	૧૧૦	કનક	૪૭	૧૩
ઉનગાજાપતિ	૮૮	૧૬	ઉર્જમ	૧૩	૮૬	કનીયમુ	૨૧	૪૩
ઉનનદય	૨૦	૬૦	ઉર્જમ્વિન	૧૦	૧૧૩	કન્દ્રદ્વ	૮૨	૮૩
ઉન્યલ	૧૧	૨૨				કપર્દિન	૩૫	૭૦
ઉન્પ્રેધા	૬૮	૧૩૮	ઉખ	૨૫	૪૮	કપાલિન	૩૫	૭૦
ઉન્મબ	૫૪	૧૦૯	ઉખત	૮૧	૧૮૨	કપિ	૬	૧૨
ઉન્માહ	૮૬	૧૦૪	ઉખ્યિ	૨	૩	કપિદ્વજ	૬૦	૧૪૩
ઉદન્વત્	૧૩	૭૩				કવરી	૧૧	૧૦૫
ઉદર	૫૧	૧૦૨	એકપત્ની	૧	૩૬	કમન	૮૫	૧૭૭
ઉદશિવત्	૬૨	૧૨૩	એર્પિડ્ઝલ	૮૮	૧૫	કમનીય	૮૫	"
ઉદ્ગમ	૪૦	૮૦	એકાગ્રિક	૧૧	૧૬૯	કમલ	૧૦	૨૦
ઉદ્ગ્રીવ	૮૧	૧૬૮	એનમ	૬૬	૧૩૧	કમ્બ	૮૫	૧૭૭
ઉદ્વન	૮૧	૧૬૮				કર	{ ૨૩	૪૫
ઉદ્વર	૮૧	૧૬૮	એકાગ્રણાધિપ	૩૦	૫૯	કરણ	{ ૫૦	૧૦૧
ઉદ્યમ	૮૮	૧૦૪					૬૫	૧૨૯

धनकज्यय-नाममाला

शब्द	पृष्ठ	श्रोक	शब्द	पृष्ठ	श्रोक	शब्द	पृष्ठ	श्रोक
करभ	४६	११	कामिन्	१८	३७	कुमुद	११	२२
करवालक	४३	८५	कामिनी	१४	३०	कुमुदप्रिय	२४	४७
कराडगुलि	५०	१०१	कामुक	१८	३७	कुमुदविप्रिय	२७	५१
करिन्	४५	८८	कामुकी	{ १५ १७	३१ ३६	कुमिन्	४५	८८
करुण	५४	११०	काय	१९	३८	कुमिनी	३	६
करेण्	४५	८९	कार्तस्वर	४७	९४	कुरुशत्रु	८४	१४५
ककंश	७५	१५४	कार्तिकेय	३४	६७	कुल	६३	१२४
कर्ण	४९	९८	कामुक	४०	७९	कुलटा	१७	३५
कण्ठगुलिन्	७०	१४४	कार्मिन्	७०	१४३	कुत्या	१६	३२
कर्दम	१०	२०	काल	{ ७१ ७२	१४५ १४८	कुवलय	११	२२
कर्पूर	५९	११८	कालयेष	६२	१२३	कुमुम	४०	८०
कलङ्क	७३	१५२	काली	७३	१५०	कृपार	१२	२५
कलत्र	१६	३२	काश्यप	५८	११५	कूर्पासि	९०	११८
कलधौत	४७	९४	काहल	७५	१५५	कृच्छ	८८	१८६
कलभ	५२	१०५	काष्ठा	३२	६१	कृतान्त	{ ३ ७१	६ १४५
कलम	८१	१६७	काष्ठापाल	३२	६१	कृतिन्	७९	१६४
कलह	{ ४४ ८९	८७ १८८	काष्ठाम्बर	३२	६१	कृत्स्न	८८	१८७
कलापिन्	६३	१२६	किवदन्ती	७४	१५४	कृपण	८४	१७५
कलाभूत्	२४	४७	किकार	१४	२९	कृपा	५४	११०
कलिल	६६	१३१	कित्तन	७६	१५३	कृपाण	४३	८५
कलेवर	१९	३९	किजन्ति	{ ७३ ७३	१५१ १५२	कृत्स्न	{ ३९ ७२	६६ १८८
कल्माषी	७३	१५०	कितव	१०	१६०	कृशान्	३३	६५
कल्याण	९१	१९८	किरण	२३	४९	कृष्ण	{ ३९ ७२	६६ १८८
कल्लोल	१३	२७	किरात	७	१४	कृष्ण	४३	८४
कवच	१०	११४	किरीटिन	७०	१४४	केकर	४९	९०
कष्ट	८८	१८६	कित्तिवष	६६	१३१	केकिन्	६३	१२५
कस्तूरी	५९	११७	कीचकशत्रु	७१	१४५	केतु	४३	८४
कस्वर	४७	९५	कीति	१४	१५३	केवलिन्	५८	११६
कान्चन	४७	९३	कीनाग	८४	१७५	केश	९०	११५
काँडवी	६०	११९	कु	३	६	केशवन्वत	९१	"
काष्ठ	३९	७८	कुकुर	४६	९२	केयरिन्	८५	९०
कादम्बरी	६१	१२०	कुक्षि	५१	१०२	केशव	३७	७४
कानन	६	१३	कुकुम	१९	११७	केशवाप्रज	७०	१४२
कानीनजनक	२७	५१	कुच	५१	१०२	केशिन्	३६	७५
कान्त	{ १८ ८५	२७ १७७	कुबेर	४८	९५	कैरव	११	२२
कान्ता	१६	२३	कुबज	७६	१५८	कोक	६४	१२७
कान्तार	६	१३	कुमार	३४	६७	कोकनद	१०	२१
कान्तिमत्	२४	४७						
काम	३९	७७						

શબ્દ	પૃષ્ઠ	શલોક	શબ્દ	પૃષ્ઠ	શલોક	શબ્દ	પૃષ્ઠ	શલોક
કોટિ	૬૦	૭૯	ખગ	૩૯	૭૮	ગુણ્યાન	૬૮	૧૩૭
કોદણ્ડક	૬૦	૭૯	ખજ્જ	૪૩	૮૫	ગુલિકા	૪૭	૧૪
કોપ	૫૮	૧૦૯	ખણ્ડ	૮૯	૧૮૭	ગુહ	૩૪	૬૭
કોમલ	૩૫	૧૫૫	ખંકુન	૫૩	૧૦૬	ગુઢ્ચર	૮૧	૧૬૯
કોવિદ	૭૧	૧૬૪	ખરદણ	૧૦	૨૧	ગૃધ્ન	૮૪	૧૫૫
કોપ	૮૯	૧૮૮	ખલ	૨૨	૪૪	ગ્રહ	૧૬	૩૨
કોશેયક	૮૩	૮૫	ખલા	૧૭	૩૫	ગ્રહ	૬૬	૧૩૨
કૌતુક	૮૪	૧૭૪	ખલુ	૭૬	૧૫૯	ગેહ	૬૬	૧૩૨
કૌનેય	૭૧	૧૪૬	ખૈ	૮૪	૧૭૩	ગેહિની	૧૬	૩૨
કૌમુદી	૨૪	૪૭	ખાત	૬૭	૧૩૪	ગો	૩	૬
કૌરબ્ય	૭૧	૧૪૬	ખેચર	૨૮	૫૪	ગો	૨૩	૪૫
કૌલેયક	૪૬	૯૨	ખેદ	૫૪	૧૦૯	ગોત્ર	૭૯	૧૬૩
કૌણિક	૩૦	૬૦	ખેય	૬૭	૧૩૪	ગાત્રશત્રુ	૩૦	૫૮
કૌમુમ	૭૩	૧૫૯	ગ			ગોધા	૧૩	૨૮
કનુ	૫૬	૧૧૨	ગગન	૨૮	૫૩	ગોણુર	૬૭	૧૨૪
ક્રોકુન	૫૩	૧૦૭	ગજા	૩૬	૭૧	ગોમણ્ડલ	૭૮	૧૬૨
ક્રોદ	૪૬	૯૧	ગજા	૭૮	૧૬૨	ગોમિની	૩૮	૭૬
ક્રોય	૫૪	૧૦૯	ગજ	૪૫	૮૮	ગોલાડ્ગુલ	૬	૧૨
ક્રોચ	૫૩	૧૦૭	ગળિકા	૧૭	૩૬	ગોવિંદ	૩૭	૭૬
ક્રૌચભેદિન	૩૪	૬૭	ગન્ધવાહ	૩૨	૬૨	ગોનમ	૫૭	૧૧૪
ક્ષણે	૫૬	૧૫૭	ગમિની	૨૩	૪૫	ગૌર	૭૨	૧૪૦
ક્ષણદા	૨૫	૪૮	ગમડ	૬૫	૧૨૮	ગૌરી	૭૩	૧૫૦
ક્ષગમન્ચિ	૯	૧૯	ગરુમત્	૬૫		ગ્રન્ય	૩	૪
ક્ષતજ	૮૯	૧૮૮	ગર્જ	૫૨	૧૦૫	ગ્રહાથિપ	૨૬	૪૯
ક્ષાગાવર	૨૬	૪૮	ગર્તા	૮૯	૧૧૦	ગ્રામગાર્ડલ	૪૬	૯૨
ક્ષમા	૩	૫	ગર્વિન	૮૧	૧૬૮	ગ્રીવા	૫૦	૧૦૦
ક્ષામ	૮૨	૧૭૧	ગલ	૫૦	૧૦૦	ગ		
ક્ષિતિ	૩	૬	ગર્વા	૪૧	૮૨	ઘન	૮	૧૮
ક્ષિપા	૨૫	૪૮	ગહન	૧૬૮	૧૮૩	ઘન	૮૨	૧૭૦
ક્ષિપ્ર	૮૩	૧૭૨	ગહ્ર	૮૯	૧૯૦	ઘનમાર	૫૯	૧૧૮
ક્ષીર	૬૨	૧૨૨	ગહ્રી	૩	૫	ઘનઘન	૮	૧૮
ક્ષીણ	૮૨	૧૭૪	ગાણ્ડોવિન્	૭૦	૧૪૩	ઘૃણ્ટિ	૪૬	૭૧
ક્ષુણ્ણ	૭૯	૧૬૪	ગિર	૫૨	૧૦૪	ઘોર	૮૭	૧૮૪
કુર્પ્ર	૩૯	૭૮	ગિરિ	૪	૮	ઘોષ	૭૮	૧૬૨
ક્ષેમ	૧૧	૧૯૮	ગિરીશ	૩૫	૬૯	ઘ્રાણ	૫૦	૧૦૨
ક્ષોળી	૩	૬	ગીવણીશ	૩૦	૫૮	ચ		
ક્ષમા	૩	"	ગુણ	૪૧	૮૨	ચકધર	૩૮	૭૬
		ખ	ગણનિકા	૮૮	૧૧૯	ચન્દ્રવાક	૨૭	૫૧
ખ	૧૨૮	૫૩	ગુણવિલિ	૭૪	૧૫૩	ચક્કાઙ્ગ	૬૩	૧૨૫
	૬૫	૧૨૯	ગુહ	૬૨	૧૨૩	ચણી	૧૬	૩૩
						ચતુર	૭૯	૧૬૫

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
चतुर्मुख	३६	७२	जननी	१८	३८	तट	{ ४	९
चतुर्पात्	३९	१६३	जनपद	४८	९७	तटी	{ १३	२६
चन्द्र	२४	४७	जनान्त	४८	,	तटोच्छ्वाम	१३	२७
चन्द्रम्	२४	,	जनि	१६	३२	तडिन्	९	१८
चमू	४३	८६	जनोदाहणि	८४	१५३	तटिद्वन्वा	३०	५६
चमूर	४६	९०	जह	११	१०३	तनि	६९	१४०
चर	८६	१८२	जल	३	१५	तनय	२०	४०
चरण	५१	१०३	जलद	५३	१०५	तनु	१९	३८
चरण्	३२	६३	जव	८५	१३२	तनुत्र	९०	११४
चलन	५१	१०३	जवन	३२	६३	तनूदरी	१५	३६
चला	१४	३०	जद्गत्	२९	५	तनूनपात	३३	६४
चाटुकृत्	७९	१६५	जान	८१	१३७	तपन	२६	४९
चाप	८०	७०	जानस्प	८०	९३	तपनीय	४७	९४
चार	८६	१८२	जानवेदग्	३३	६४	तपश्चिन	२	३
चार	८५	१६८	जानु	५१	१०३	तम	७२	१४८
चिकुर	००	१९५	जाया	१६	३२	तमम्	७२	
चिन्त	४१	८१	जाह्वी	३३	८१	तमार्ग	२६	५०
चित्र	८४	१०४	जिन्या	७०	१४३	तर	८३	१७२
चिह्न	४३	८८	जिन	५७	११२	तरग	१३	२७
चिराय	५५	१८२	जिण्	७०	१४३	तरगिणी	१२	२४
चीटृत	५३	१०६	जिह्वा	४६	९२	तरण	२६	४९
चीर	५९	११७	जीमूत	८	१८	तरबार्ग	४२	८५
चूङ्गापाथ	९१	१२०	जाण	{ ८६	१५६	तरश्चिन	९०	१९३
चेनम्	८१	८१	जाण	{ ८२	१०१	तर	५	११
चेन	५०	११७	जीवन	८	१५	तस्कर	८१	१६०
चाय	८४	१७३	जीवा	८१	८२	तापन	२	३
चौर	८१	१३१	ज्ञा	४२	८२	तासरम्	१०	२०
	४		ज्ञा	४२	८२	तारा	२५	४८
छत्र	१०	१९४	ज्यायम्	५७	११४	तारुण्य	६२	१२४
छद्गन्	६८	१३८	ज्योठ	२१	४३	नाथं	६५	१२८
छिर	८९	१९०	ज्योति	२३	४६	निम	{ २६	४९
छल	{ ६८	१३८	ज्यवन	३३	६५	निम	{ ८७	१८४
	{ ८९	१८८				ज्ञा	८	१७
ज			जटिति	८३	१७२	निमिर	{ ७२	१४८
जगन्	५७	११३	ज्ञप	८	१७	निमिर	{ ८७	१८४
जगती	३	६	ज्ञषकेतु	४३	८४	तिमिरार्ग	२६	५०
जघन	५१	१०३	ज्ञषध्वज	४३	,	तीर	१३	२६
जठर	{ ५१	१०२	ज्ञड़ कृत	५३	१०१	तीर्थ	५८	११५
	{ ७६	१५६				तीर्थकर	५८	११६
जउ	८०	१६६	त	६२	१२३	तीर्थकृत्	५८	"
जनक	१८	३८	तक्र	६२				

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
तीर्थ कर	५८	११६	दशमीस्थ	५४	१०८	दृष्टि	४९	११
तीव्र	८७	१८४	दगा	६२	१२४	देव	३०	५६
तुक्	१८	३९	दम्यु	७	१४	देवानाप्रिय	८०	१६६
तुङ्ग	७६	१५८	दहन	३३	६५	देह	१९	३८
तुरग	२७	५२	दामोदर	३७	७४	देहिका	७९	१६३
तुरगम	२७	,	दारक	२०	४०	दैत्याणि	७०	१४४
तुरगमा॒ह	३०	६०	दारा	१६	३२	दोम्	५०	१०१
तुला	६७	१३६	दारिका	१७	३६	दोष	{ २५ ५०	१०१
तुलाकोटि	५३	१०७	दारुण	८३	१८४	द्युति	२३	४५
तुल्य	६७	१३६	दासी	१७	३६	द्युमणि	२६	४९
तुषार	८५	१७९	दिक्-दिग्	३२	६१	द्यर्घनी	३६	७१
तुहित	८५	१७९	दिक्षाल	३२	६१	द्युम्	{ २८ ३६	७१
तूर्ण	८३	१७२	दिग्म्बर	३२	६१	द्यूत	६१	१२२
तेजम्	२३	४५	दिग्गज	३२	६१	द्या	{ २८ ३०	५३
तेजस्विन्	९०	१९३	दिव	२६	५०	द्रविण	४७	९५
तोक	१९	३९	दिव-दिव	{ २८ ३०	५३ ५६	द्रव्य	४७	"
तोमर	३९	७८	दिवस	२६	५०	द्राक्	७६	१५७
ताप	७	१५	दिवा	२६	५०	द्रुत	८३	१७२
तोप	५४	१०९	दिव्यवाक्पति	५८	११६	द्रुम	५	११
त्रिकृत्	४	८	दीक्षित	३	४	द्रुहिण	३६	७१
त्रिदय	३०	५६	दीविनि	२३	४५	द्वन्द्व	२	२
त्रिनेत्र	३५	६९	दीन	८४	१७५	द्वय	२	"
त्रिपयगा	३६	७१	दीप्ति	२३	४६	द्वित्य	२	"
त्रिपुरारि	३५	६९	दीर्घ	८७	१८३	द्विप	४५	८९
त्रिमार्गगा	७८	१६२	दुर्घ	६२	१२२	द्विरद	४५	८८
अथमवत्	३५	६८	दुरित	६६	१३१	द्विरेक	{ १२ ४२	८४
द			दुर्ग	६	१३	द्विष	२२	४४
दफ्टिन्	४६	९१	दुर्जन	२२	४४	द्विषत्	२२	"
दक्षत्वा॒या	३२	६१	दुर्जूत	६६	१३१	द्वैष	५८	१०९
दण्ड	४३	८६	दुष्ट	२२	४४	द्वैषिन्	२२	४४
दन्त	४	९	दुहितृ	२०	४०	द्वैत	२	२
दन्तवाम	५०	१००	दूनी	१७	३५	घ		
दन्तिन्	४५	८८	दून	८२	१७१	धन	४७	१५
दया	५४	११०	दृढ	७५	१५५	धनजय	७०	१४४
दयित	१८	३७	दृतिहिं	७८	१६३	धनद	४८	१६
दयिता	१६	३३	दृप्त	८१	१६८	धनदाय	४८	"
दरीभूत्	४	८	दृश	४९	१९	धनुष	४०	७९
दर्शनीय	८५	१७८	दृष्ट	८२	१७०	धन्वन्	४०	७९
दर्शनच्छद	५०	१००	दृष्ट	५४	१०८	धर्मनीधर्म	५०	१००

धनञ्जय-नाममाला

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
धर्मलल	९१	११५	ननादृ	२१	४३	नित्य	७७	१५९
धरणी	३	६	नन्दन	२०	४०	निदेश	७८	१५४
धरा	३	५	नभस्	२८	५३	निषुण	७९	१६४
धरित्री	३	६	नभस्वत्	३२	६३	निबोध	७३	१५२
धर्म	१०	७९	नभ्राट्	८	१८	निभ	६८	१३८
धर्मचक्रभूत्	५८	११६	नमुचिशत्र्	३०	५८	निम्नगा	१२	२४
धर्मात्मज	७१	१४६	नयन	४९	९९	नियन्त्रित	८५	१७६
धर्व	१४	२८	नग	१३	२८	नियामित	८५	१७६
धवल	७१	१८३	नरक	८९	१९०	नियोग	७४	१५४
धातु	८२	१७०	नलिन	१०	२०	निर्धारि	९	१९
धात्री	३	५	नव	७५	१५६	निवृद्धि	६७	१३५
धानुषक	७	१४	नव्य	,	"	निलय	६६	१३३
धामन्	{ २३	४६	नाक	३०	५६	निवसन	५९	११७
	{ ६६	१३३	नाग	{ ४५	८९	निवृत्त	६६	१३२
विषणा	५५	११०		{ ६४	१२८	निवेशन	८९	१८९
विष्ण्य	६६	१३२	नागरिक	८०	१६५	निशा	२५	४८
घी	५५	११०	नागारि	४५	९०	निशाचर	८१	१६९
घुनी	१२	२४	नाथ	५	१०	निशाल	६६	१३२
घुर्य	२७	५२	नाथहरि	७८	१६३	निपाद	७	१४
घूम	७२	१४८	नायान्वय	५८	११५	निपादिन्	४५	८९
घूर्जटि	३५	६८	नाभिज	५७	११४	निष्णात	३९	१६४
घूर्तं	७९	१६५	नाम	८०	१६५	निमग	८८	१८५
घूलि	७३	१५१	नारद	३७	७३	निम्नल	८७	१८३
घूलिकुट्टिम्	६७	१३४	नाराच	३९	७८	निष्ठिरा	८३	८५
घोन्	५२	१०५	नारायण	३७	७४	नीव	{ ५६	१५८
घैय्य	१३	१७१	नारी	१८	३०		{ ८१	१६८
धवजा	४३	८४	नासा	५०	१०२	नीचैम्	७६	१५८
धवजिनी	४३	८६	निकट	६९	१४१	नीर	७	१५
ध्वानार्गि	२६	५०	निकर	६९	१३९	नील	७२	१४८
	न		निकाय	{ ६६	१३३	नीलकण्ठ	६२	१२६
	७६	१५३		{ ६९	१४०	नीलपिञ्जरी	७३	१५०
नक्तम्	२५	४८	निकृग्नव	६९	,	नीललोहित	३५	६९
नक्तन	२५	"	निकेतन	६६	१३२	नीलवसन	७०	१४२
नक्तन	२५	"	निगद्धपुरुष	८६	१८२	नीलाम्बुजन्मन्	११	२२
नग	५	११	निक्षय	६९	१४०	नीहार	८५	१७९
नगरी	४८	९७	निज	८८	१८५	नूतन	७५	१५६
नद	१२	२४	नितम्ब	{ ४	९	नूपुर	५३	१०७
नदी	१२	,		{ ५१	१०३	नृ	१३	२८
नदीवरी-नदीवर	३६	७१	नितम्बिनी	१५	३१	नृप	{ ४	७
नदीष्ण	७९	१६४	नितान्त	८३	१७३		{ १४	२८

शब्दानुक्रमणिका

११५

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
नपक्रतु	५६	११२	परामु	५४	१०८	पाशित	८५	१७८
नेढ	८०	१६६	परिखा	६७	१३४	पाशनीत	८५	१७६
नव	४९	९९	परिचित	५८	१०८	पाषाण	८२	१७०
नेक	६०	१६१	परिणयन	८०	१८९	पितामह	३६	७२
नैयायिक	५५	१११	परिगंधि	६०	१३४	पितू	१८	३८
न्यूच	७६	१५८	परिवाद	१८६	१८१	पिनद	८५	१७६
प			परिवृद्ध	५	१०	पिनाकिन्	३५	६८
पक्षिन्	२९	५५	परिषष्ट	१०	२०	पिशित	२९	५५
पड़क	{ १०	२०	पहय	५५	११५	पिशुन	८१	१६८
	१०३	१५२	पर्जन्य	८	१८	पिशगी	७३	१५०
पक्षिन	६१	१४०	पर्वत	४	८	पीठ	५६	११३
पटु	७९	१६४	पल	२९	५५	पीत	७०	१४९
पट्टन	८८	९७	पल्लक	७७	१६०	पुश्चर्णी	१७	३५
पण्डित	५५	१११	पवन	३२	६२	पुटभेदन	४८	९७
प्रथम्नी	१७	३६	पवनपुत्र	३३	६३	पुष्य	६५	१२९
पतङ्ग	{ २६	४६	पवनमस्य	३३	६४	पुण्डरीक	१०	२१
	२८	५४	पशु	७०	१६३	पत्र	१९	३९
पत्रिन्	२९	५४	पासु	७३	१५१	पुनर्भू	१७	३५
पत्राका	४३	८४	पाकशत्रु	३०	५८	पुम्स	१३	२८
पति	५	१०	पाटल	५८	११९	पुर्	४८	९७
पतिवत्नी	१३	३८	पाटीन	८	१७	पुर	८८	..
पतिवता	१३	३४	पाणि	५०	१०१	पुरन्दर	३०	५८
पत्तन	४८	९७	पाण्डु	७१	१४७	पुरन्धी-पुरन्धिर	१६	३१
पति	१४	२९	पाण्डुर	७१	१४०	पुरगण	७६	१५६
पत्नी	१६	३२	पाताल	८०	१९०	पुरी	८८	९७
पत्रिन	२६	५८	पाथम्	७	१५	पुरु	५७	११४
पथिन	७८	१६१	पाद	{ २३	४५	पुरुष	१३	२८
	{ ५१	१०३		१५१	१०३	पुरुषोत्तम	३७	७४
पद	{ ६६	१३३	पादप	५	११	पुरुहत	३०	६०
	{ ६८	१३८				पुरोगनि	४६	९२
पदग	१४	२९	पाप	६६	१३१	पुरोगनि	४२	१२३
पदानि	१४	..	पाप्मन्	६६	..	पूर्ण	६२	१२३
पद्म	१०	२०	पार	१३	२६	पुलिन्द	७	१४
पञ्चनाम	३७	७५	पारावार	१२	२५	पुलोमार्गि	३०	६०
पञ्चग	६४	१२८	पारिषद्य	५६	११८	पुष्कर	११	२१
पथम्	{ ७	१५	पार्श्व	४	९	पुष्करिन्	४५	८९
	{ ६२	१२२	पालाश	७२	१५९	पुष्कल	{ ८८	१७३
पयोधर	५१	१०२	पाली	१३	२७		{ ९०	१९४
पराग	७३	१५१	पावक	३३	६४	पुष्य	४०	८०

शब्द	पृष्ठ	इलोक	शब्द	पृष्ठ	इलोक	शब्द	पृष्ठ	इलोक
पुष्पहेनि	४२	८३	प्रवृत्ति	७४	१५४	फल	४०	८०
पुग	६९	१३९	प्रशस्त	८६	१७८			व
पूषन्	२६	४१	प्रसन्ना	६१	१२१			
पृतना	४३	८६	प्रसव	४०	८०	वठ	८५	१७६
पृथिवी	३	५	प्रमाधन	६०	११८	वन्धकी	१७	३५
पृथुरोमन्	८	१७	प्रसून	४०	८०	वन्धु	२१	४२
पृथुल	८७	१८३	प्रस्तर	८२	१७०	वन्धुर	८५	१७८
पृथु	८७	"	प्रस्थ	४	९	वल	८३	८६
पृथ्यी	३	५	प्रसन्ना	१६	१२१		७०	१४२
पृष्ट	६४	१२७	प्राग्	८७	१८३	वलयत्र	३०	५८
पैयल	७५	१५५	प्राकार	६७	१३४	वलाहक	८	१८
नेशिन्	२९	५५	प्राकन	७६	१५६	वल्लिसूदन	३७	७५
पोन	२०	४०	प्राचीनवर्हि	३०	५७	वहिष्ठ	९०	१९१
पोत्रिन्	४६	९१	प्राज्य	९०	१९१	वहु	९०	१९५
पौष्टि	८३	१७१	प्राज्ञ	५५	१११	वहुल	८७	१८३
प्रकर	६९	१४०	प्राभन	९०	१९१		९०	१९७
प्रकृति	८८	१८५	प्रायम्	६२	१२३	वाण (वाण)	३९	७८
प्रगल्भ	७९	१६४	प्रारभ्य	५२	१०४	वाणवारण	९०	१९४
प्रचर	७८	१६२	प्रालेय	८५	१७९	वाणस्दन	३३	७५
प्रचुर	९०	१९१	प्रावृत्तिक	६३	१२६	वाणी (वाणी)५४	१०४	
प्रजा	११	३९	प्रामाद	८७	१३५	वाल	९०	१९५
प्रजापति	३७	७४	प्रिय	१८	३७	वाला	१५	३१
	५७	११४		७४	१५४	वाहु	५०	१०१
प्रज्ञा	५५	११०	प्रिया	१६	३३	वाहुशिंगम्	५०	"
प्रणयिनी	१६	३३	प्रियामिका	२२	४३	विमिनी	११	२३
प्रणिधि	८१	१६९	प्रीत	१८	३७			
	८६	१८२	प्रेमन्	७६	१६०	वध	५६	११२
प्रतिरोधक	८१	१६९	प्रेयम्	१८	३७	व्रद्धन	२६	४९
प्रतीत	५४	१०८	प्रेयमी	१६	३३	व्रद्धन्	७३	११६
प्रतोली	६७	१३४	प्रेणित	५२	१०४	बीहि	८१	१६१
प्रत्यग्र	७५	२५६	प्रेष्ठा	१६	३३			भ
प्रभवजन	३२	६३	प्रेष्य	७४	१५४			
प्रभा	२३	४५	प्लवग	६	१२	भ	२५	४८
प्रभु	५	१०				भग	१३	२७
प्रसथाधिप	३५	६८						
प्रमद	५४	१०९	फणिन्	६४	१२८	भट	१४	२९
प्रमदा	१६	३३	फलिन्	५	११		५३	१०६
प्रमोद	५४	१०९	फलेयाहिन्	५	११	भद्र	९१	११८
प्रवीण	७९	१६४	फलगु	७५	१५५	भर्तृ	५	१०
प्रवीर	९०	१९३	फलगुन	७०	१४३	भर्तु स्वसा	२१	४३
						भर्तृन्	४७	९३

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
भरतान्वय	७१	१४८	आनृजानी	२१	४३	मन्यु	५४	१०९
भव	{ ३५ ९०	७० १९२	आनृव्य	२२	४४	मत्रपूतान्मन्	६५	१२९
						मय	४६	९४
भवन	६६	१३२	मवर्गवज	३९	७७	मध्यवत्	२८	५२
भविक	९१	१९८	मवग्नद	७३	१५९	मयूर	६३	१२६
भव्य	९१	१९८	मधु	८३	१७२	मगल	६३	१२५
भागधेय	६५	१३०	मगल	९१	१९८	मरीचि	२३	४५
भागीरथी	३६	७१	मद्यवत्	३०	६०	महत	३०	५९
भार्य	६५	१३०	मजीग्नक	५३	१०७	महत्	{ ४ ३२	८ ६२
भानु	{ २३ २६	४५ ८९	मठल	८६	९२	मस्तवत्	३०	५९
भासा	१५	३१	मडलाग्र	४३	८५	मस्तपुत्र	३३	६३
भासिनी	१४	३०	मणित	५३	१०६	मस्तमय	{ ३० ३३	६० ६४
भारती	५२	१०४	मतगज	४१	८८	मर्कट	६	१२
भार्या	१६	३२	मताग्नव	६७	१३५	मर्त्य	१३	२८
भाव	१०	१९२	मन्य	८	१६	मर्म	८९	१८८
भावुक	११	१९८	मतवाण्ण	६७	१३५	मलिन	७३	१५२
भास्	२३	४५	मथित	६२	१२३	मलिका	५९	११३
भासुर	९०	१९३	मदन	३९	७७	मलीमम	७३	१५२
भास्कर	२३	४६	मदिग	६१	१२०	महनि	५८	११५
भास्वर	१०	१०३	मद्य	६१	१२०	महम्	२३	८६
भिक्षु	२	३	मद्यप	६१	१२१	महावीर	५८	११५
भीक	१४	३०	मधु	७३	१५१	महाहव	४४	८७
भज	५०	१०१	मधुवारा	६१	१२१	महिला	१६	३२
भृजगम	६४	१२८	मधुवत	४२	८२	महिदी	७९	१६३
भवन	५७	११२	मधुसूदन	३७	७५	मही	३	५
भू	३	५	मध्यमण्डव	३०	१४२	महेश्वर	३५	६८
भूमि	{ ३ ३८	५ ७६	मनस्	४१	८१	महोत्पल	१०	२१
भूमिधर	३८	७६	मनस्विन्	९०	१९३	माम	२९	५५
भूयिष्ठ	९०	१९१	मनीषा	५५	११०	मा	७६	१५९
भूरि	९०	१९१	मनुज	१३	२८	मातग	८५	८०
भूषण	६०	१११	मनुष्य	१३	"	मार्तिर्घवत्	३२	६३
भृग	४२	८२	मनोज्ञ	८५	१७८	मातुजानी	२२	४३
भृतक	१४	२९	मनोहर	८१	१७७	मातृ	१८	३८
भृत्य	१४	२९	मद	{ ८० ८७	१६६ १८४	मानव	१३	२८
भृशम्	८३	१७३	मन्दाकिनी	३६	७१	मानिन्	८१	१६८
भौ	७६	१५७	मन्दिर	६६	१३२	मानिनी	१६	३२
भ्रमर	४२	८२	मन्मथ	३९	७७	मानुष	१३	२८
						मार	८१	८१०

धनञ्जय-नाममाला

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
मार्ग	७८	१६२	मैत्री	९१	१९७	रक्षस्	२९	५५
मार्गण	३०	७८	मैत्रेयिक	९१	१९७	रजत	४७	९४
मार्तंण्ड	२६	४९	मैरेय	६१	१२०	रजनी	२५	४८
माला	६०	११९	मोथ	८८	१८६	रजम्	७३	१५१
मानव	६०	"	मौण्ड्य	३	४	रण	४४	८७
मितगम	४५	८८	माविक	४७	९४	रत्नाकर	१२	२५
मित्र	२०	४१	मौर्वी	४१	८२	रथ्य	२७	५२
मित्रयुक्	२०	"	य			रत्न	८९	१९०
मिहिंग	८	१८	यज्ञाचि	३५	६९	रमण	१८	३७
मीन	८	१७	यति	२	३	रमणी	१६	३३
मीनाकर	१२	२५	यन्तृ	४५	८०	रमणीय	८५	१७७
मुख	४९	९८	यम	{ २ ७१	२४५	रम्य	८५	"
मुध	८०	१६६	यमजनक	२०	५१	रय	८३	१७२
मुद्धा	१४	३०	यमल	२	२	रवि	२६	४९
मुक्ता	१७	३५	यमुनाजनक	२७	५१	रश्मि	२३	४६
मुद्	५४	१०९	यशम्	७८	१५३	रम्य	८१	१९०
मुद्धा	८८	१८६	यातुधान	२९	५५	रहम्	८४	१७६
मृति	२	३	यातृ	४०	८०	रहस्य	८४	१७५
मृस्मृदन	३७	७५	याय	८७	१८४	राग	७७	१६०
मुहुमुहुः	८८	१८५	यादम्	८	१३	राजन्	५	१०
मृक्	८०	१६६	यक्त	३७	१६७	राजयद्दमन्	७१	१४६
मृख	"	"	युग	२	२	राजगज	४८	९६
मृह	"	"	युगल	२	२	गजमय	५६	११२
मृति	१९	३९	युम्	२	२	गतिवर	२९	५५
मृद्दन्	५२	१०४	यृत	७७	१६१	गतिजागर	४६	९२
मृग	६४	१२७	यृद्ध	४४	८७	रामा	१५	३१
मृगताभिजा	५९	११७	युधिष्ठिर	७१	१४६	रादृ	४८	९७
मृगाक	८६	६७९	यवति	१५	६१	रिपु	२२	४४
मृगेन्द्र	४५	९०	योगिन्	२	३	रुचिर	८४	१७८
मृत	५४	१०८	योग्या	८५	१८५	रुचि	२३	८५
मृत्यु	७१	१४५	योषा	१४	३०	रुच्य	६०	११९
मृद्ग	७५	१५५	योषित्	१६	३०	रुद	३५	६९
मृषा	८८	१८६	योवन	६२	१२८	रुवि	{ ५९ ८९	११८ १८८
मेखला	{ ४ ६०	११९	योविनिक	६२	१२३	रुष	५४	१०९
मेघ	८	१८	र			रुष	१७	३६
मेघपथ	२८	५३	रहम्	८३	१३२	रुपाजीवा	४७	०४
मेदिनी	३	५	रक्त	{ ५९ ७२	११८ १४९	रुप्य	४७	१५७
मेघावी	५५	१११		{ ८१	१८८	रे	७६	१५७

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
रेणु	७३	१५१	वत्स	८१	१६७	वस्त्य	६६	१३३
रेवनीदयित	७०	१४२	वदन	४९	९८	वस्त्र	५९	११७
रे	४७	०५	वथू	१४	३०	वाग्मिन्	५५	१११
रोधम्	१३	२६	वन	{ ६ ७	१३ १५	वाच्	५२	१०४
रोपण	३९	७८	वनम्पर्विन	५	११	वाचस्पति	९२	१९९
रोहिणीपति	८६	१७९	वनिना	१४	३०	वाजिन्	२७	५२
रोहिताश्व	३३	६५	वनेचर	६	१३	वात	३२	६२
ल			वहि	३३	६४	वातायन	६७	१३५
लक्ष्मी	७२	१५२	वपुस्	१९	३८	वानग	६	१२
लक्ष्मी	३८	७६	वप्र	६७	१३४	वाण(वाण)	३९	७८
लक्ष्मीपति	३८	"	वयम्	{ २९ ६२	५४ १२४	वाणवारण	९०	१९४
लवु	८३	१३२	वयस्या	२०	४१	वाणमदन	३७	७५
लज्जिका	१७	३६	वर	{ १८ ८९	३७ १८९	वाणी(वाणी)	५२	१०४
लता	११	२३	वरटा	६४	११७	वामलोचना	१५	३१
लतान्त	४०	८०	वर्ग	{ ४६ ८६	९१ ८६	वायु	३२	६२
लपन	४९	९८	वर्गह	४६	९१	वायुपत	२८	५३
लघ्य	५४	१०८	वर्हथिनी	४३	८६	वायुपत्र	७१	१४५
ललना	१६	३०	वर्ग	६३	१२५	वार्	७	१५
लव	८९	१९७	वर्ण	७४	१५३	वार्ता	७४	१५४
लागल	७०	१४२	वर्णिन्	२	३	वार्णी	४५	८८
लाच्छन	७३	१५२	वर्तुल	८९	१८३	वार्णी	६८	१२७
लुक्य	८४	१७५	वर्मन्	९८	१६२	वार्गित्रि	१२	२३
लवक	७	१४	वर्द्धमान	५७	११५	वारिगांगि	१२	२६
लैलिहान	६४	१२८	वर्मन्	९०	१९४	वारणी	६१	१२१
लेग	८६	१८७	वर्षायम्	५७	११४	वार्द्धीन	६३	१२४
लाक	५७	११३	वर्हिण(वर्हण)	६३	१२६	वासर	२६	५०
लोह	८२	१७०	वलक्ष	७१	१४७	वासव	३०	५९
लोहित	{ ७२ ८५	१४९ १८८	वलिमुख(वलीमुख)	१२		वासम्	५९	११७
लोहिती	७३	१५०	वल्लभ	१८	३७	वासुदेव	३७	७६
व			वल्लभा	१६	३३	वाह	२७	५२
वक्ता	९२	१६९	वल्लरी	११	२३	ताहिनी	४३	८६
वक्त्र	४१	१८	वल्ली	११	२३	वि	२९	५४
वक्षम्	५१	१०२	वमनि	६६	१३३	विकल	८९	१८७
वक्षोज	५१	१०२	वसु	४७	९५	विक्रम	८४	१७४
वचन	५२	१०८	वमुद्या	३	६	विवक्षण	५५	१११
वनम्	५२	१०४	वसुन्वरा	३	६	विट	१८	३७
वञ्च	९	१९	वसुमती	३	५	विटपिन्	५	११
वज्रिन्	३०	५७	वस्तु	४७	११	विडीजम्	३०	५३

धनञ्जय-नाममाला

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
विनय	८८	१८६	विवरण	३५	७०	वैशारिण	८	१७
विच्छ	४७	०५	विश्वस	८८	१८५	वैश्ववण	४८	९६
विदग्ध	७९	१६६	विश्वभरा	३	५	वैश्वानर	३३	६६
विद्यमान	८६	१३७	विष	७	१५	वश	६३	१२४
विद्युत्	९	१९	विषक्षय	६५	१२८	व्यतिकर	६८	१३८
विद्वत्	५५	१११	विषधर	६४	१२७	व्यपदेश	६८	१३८
विद्यात्	३६	७२	विषय	४८	९७	व्यसन	८८	१८६
विद्वि	३६	७२	विकिर	२९	५४	व्याघ्र	४६	९०
विद्विपुत्र	३७	७३	विकृप	५७	११३	व्याज	६८	१३७
विद्वु	२४	४७	विष्टर	५६	११३	व्याघ	७	१४
विद्वर	८८	१८६	विष्णु	३७	७४	व्यह	६९	१३९
विनातात्मज	६५	१२३	विस्मय	८४	१७४	वज	६९	१३०
विनान्य	३८	१३७	विहायम्	२८	५३	वज	६९	१४०
विपिन	६	१३	वीचि	१३	२७	व्रतनी (व्रतनि)	११	२३
विफल	८८	१८६	वीतगग	५८	११६	व्रतिन्	२	३
विभावम्	१२३	४६	वीर	५८	११५	व्रान	६९	१३९
विभु	१३३	६५	वृक	६४	१२७	व्योमन्	२८	५३
विभु	५	१०	वृकोदर	७१	१६१	श		
विभ्रम	{ १३ ४९	२७ १०	वृक्ष	४	७	शकल	८९	१८७
विष्ट	३८	५३	वृजिन	६६	१३९	शकुनि	२९	५४
वियोग	३७	१६०	वृत्त	८३	१८३	शकुनीश्वर	६५	१२८
विरचिन्	३६	७२	वृत्तान्त	६८	१३८	शकुनि	२९	५४
विरह	७३	१६०	वृत्त्वन्	३०	५८	शकुन्तकरि	८१	१६७
विष्पाद्य	३५	१०	वृद्या	८८	१८६	शक्तिमन्	३४	६७
विरोचन	२६	५०	वृषन्	३०	५९	शत्रु	{ ३० ११२	५७ १९९
विलम्बित	८७	१८४	वृषभद्यज	३५	६९	शक्तनन्दन	७०	१४४
विलेपन	६०	११८	वृषभेदवर	५९	११७	शकर	३५	६८
विलोचन	८९	११	वृषसेन	७०	१४४	शपा	१	१८
विवर	८९	११०	वृषाकपि	३३	६६	शम	३५	६८
विवाह	८०	१८९	वृहित	५२	१०५	शभविधनकर	४३	८४
विवद	{ ७२ ८४	१४८ १७३	वेग	८३	१७२	शठ	३९	१६५
विशाख	३४	६७	वेधस्	३६	७२	शतक्रतु	३०	५७
विशारद	७९	१५६	वेला	१३	२७	शतपत्र	११	२०
विशारिन्	८	१७	वेशमन	६६	१३२	शतमन्यु	३०	६०
विशाल	८७	१८६	वेश्या	१७	३६	शत्रु	२२	४४
विशालाक्ष	३५	६९	वैजयन्ती	४३	८४	शकटी	८	१७
विशिख	४१	८१	वैनतेय	६२	१२९	शबरी	३३	१५१
विश्व	८८	१८१	वैरिन्	२२	४४	शब्दभेदिन्	७०	१४४

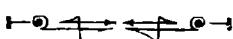
शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
शर	{ ७ ३९	१५ ७८	शिव	{ ३५ ९१	६८ ११०	श्रीद	४८	९६
शरण	६६	१३३	शिष्य	३	४	श्रुति	४९	९८
शरभ	४६	९०	शीघ्र	८३	१७६	श्रेयस्	९१	११८
शरवणोद्भव	३४	६७	शीघ्रगामुक	४६	११	श्रोणि(श्रोणी)	५१	१०३
शरीर	१९	३१	शीतल	८८	१८४	श्रोणीबिब्र	६०	१२०
शर्वं	३५	६७	शीघ्रु	६१	१२०	श्रोतस्	६३	१२९
शर्वरी	६४	१२६	शीर्ण	८२	१७१	श्रोता	९२	१९९
शर्वरीकर	६४	१२७	शील	८८	१८५	श्रोत्र	४९	९८
शल्क	८०	१८७	शुकितज	४७	९४	श्लहण	८५	१७८
शवर	७	२४	शुबल	७१	१४३	श्वन्	४६	९२
शशिन्	२३	४३	शुचि	७१	१४३	श्वभ्र	८९	११०
शशिप्रभ	७२	१४७	शुडाशुड	६१	१२१	श्वसन्	३२	६२
शश्वत्	३७	१५९	शुडाल	४५	८९	श्वेत	७१	१४७
शम्भ्र	४२	८३	शुनासीर	३०	५७	श्वेतवाजिन्	७०	१४३
शम्भजीविन्	१४	२९	शुभ्र	७१	१४७	श्वोवर्गीय	९१	१९८
शाखिन्	५	११	शुधिर	८९	११०	ष		
शानकुम्भ	८२	१७२	शुकर	४६	९	पट्टपद	४२	८२
शान्त	८२	१७१	शूर	९०	१९३	पड्डशन	८१	१६७
शारणी-सारणी	७३	१५०	शूलिन्	३५	७०	पञ्चकीण	८	१७
शर्वाह्नन्	३७	७८	शृखलिक	४६	११	पण्मुख	३४	६७
शार्वद्वल	४६	९०	शृखलित	८४	१७६	शाष्टिक	८१	१६७
शालि	८१	१६७	शृगिन्	{ ४ ९८	८	पोडन्	८१	१६७
शासन	७४	१५४	शेषुषी	५६	११०	स		
शाम्भ्र	२	४	शेल	{ ४ ३८	७	मंयत	४४	८७
शिवर्चिन्	४	८	शैल	{ ३८	७६	मयमिन्	२	३
शिविन्	{ ३३ ६३	६४ १२६	शैलधर	३८	७६	मयुग	४४	८७
शिविवाहन	३४	६६	शोणित	८९	१८८	मशित	२	३
शिखडिन्	६३	१२६	शोणी	७३	१५०	ससरण	९०	१९२
शिपिविष्ट	३५	७०	शौड	६१	१२०	ससार	९०	,
शिरस्	५०	१०४	शौडीर	८१	१६८	समृति	९०	"
शिरोधर	५०	१००	शौरि	३७	७५	सस्कृत	७०	१६१
शिरोरह	९०	१९५	शौर्य	८३	१७१	सस्तुत	५४	१०८
शिला	८२	१७०	श्यामा	२५	४८	सस्थित	५८	१०८
शिलीमुख	{ ३९ ४२	७८ ८२	श्येत	७१	१४८	सहनन	१९	३८
शिलीमुखासन	४०	७९	श्येनी	७३	११०	सहित	७७	१६१
शिलोच्चय	४	८	श्रव	४९	९८	सकल	८८	१८७
शिलोद्भव	४७	९४	श्रवण	४९	९८	सक्त	६१	१२२
			श्री	३८	७६	सखी	२०	४१
						सल्य	९०	१९७

धनञ्जय-नाममाला

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सगोत्र	२१	४२	सप्ताचिष्	३३	६४	सलिल	७	१५
सकन्दन	३०	६०	सप्ति	२७	५२	सवयम्	२०	४१
सगत	९१	१९७	सभोचित	५६	११२	सवर्ण	६७	१२६
सग्राम	४४	८७	सभ्य	५६	११२	सवितृ	५१८	३८
सघ	६९	१४०	सम	{ ६७ ७७	{ १३६ १६९	सवित्री	१८	३८
सघात	६९	१४०	समज	६९	१४०	सव्यमाचिन्	७०	१४३
सजाति	६७	१३६	समर	४४	८७	सह	७७	१५९
सजुष्	७७	१५९	समर्वित्ति	७१	१४५	सहकारित्	२१	४२
सचर	७८	१६२	समवायिक	२१	४२	सहकृत्वन्	२१	४२
सज्जा	८०	१६५	समवेत	७७	१६१	सहवरी	२०	४१
सतत	८९	१८१	समस्त	८८	१८७	सहमा	८३	१७२
सतत	८७	१५७	समाज	६८	१३९	सहाय	२१	४२
सती	१७	३४	समालम्भ	६०	११८	सहस्रपात्	३६	७३
सन्कृत	६५	१२९	समिति	६९	१४०	सहस्राश	३०	५८
सत्य	८७	१८२	समीगर्म	३३	६६	सहित	७७	१६०
सत्यकार	९१	१९७	समीप	६९	१४१	साक्ष	७७	१६०
सत्रा	७७	१६०	समीण	३२	६२	सागर	१२	२६
सदन	६६	१३२	समुद्र	१२	२६	साधन	४३	८६
' सदउचित	५६	११२	समुद्रय	६९	१४०	साधन	४३	८६
सदा	७७	१५९	समद्र	१२	२६	साधीयम्	८३	१७२
सदागति	३२	६२	समूह	६९	१३९	माधु	{ २ ८०	१७०
सदुचित	५६	११२	सम्पराय	४४	८७			
सदृक्ष	६७	१३६	सम्पूर्ण	७७	१६१	सानुवाद	७४	१५३
सदृश	६७	१३५	सम्पली	१७	३५	साध्वी	१७	३४
सद्मन्	६६	१३२	सम्भूत	३७	१६१	मान्	४	९
सधर्म	६७	१३६	सम्बन्ध	२०	४१	मानुमत्	४	८
सधृची	२०	४१	सरणि	७८	१६२	मामज	४६	८९
मनातन	६३	१२५	सगमीकृह	१०	२०	साम्राज्यम्	३१	११६
मनाभि	२१	४२	सरस्वत्	१२	२६	मान्मेय	४६	९२
सन्तति	{ ६३ ६९	{ १२४ १३९	सरस्वती	५२	१०४	माहृ	७३	१५९
सन्तमस	७२	१८८	सग्नि	१२	२४	माल	{ ६७ ८६	{ १३६ १८१
सन्तान	६३	१२५	सरूप	६७	१३६	माहम	७४	१५३
सन्देश	७४	१५४	सरोज	१०	२०	गाहाय	८२	१९७
सन्धानीत	८५	१७६	सर्प	६४	१२८	सित	{ ७१ ८१	{ १४९ १७६
सन्धिधि	६९	१४१	सपिष्	६१	१२२			
सन्मति	५८	११५	सर्वं	८८	१८७	सिद्धान्त	३	४
सपत्न	२२	४४	सर्वज्ञ	५८	११६	सिन्धु	१२	२४
सपदि	७६	१५७	सर्वदा	७७	१५९	सिन्धुर	४५	८९
			सर्ववल्लभा	१७	३६	सिंह	५२	१०५

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सीकृत	५३	१०६	सौहृद	९१	१९७	स्वाहापति	३३	६५
सीमन्	१३	२६	सौहृद्य	९१	१९७	स्वैरिणी	१७	३५
सीमन्तिनी	१४	३०	स्कन्द	३४	६६	ह		
सीर	७०	१४२	स्तन	५१	१०२	हस	६३	१२५
मुकृत	६९	१२१	स्तनधय	२०	४०	हसवाह	६३	१२५
मुचिरतन	७६	१५६	स्तनिन	५३	१०५	हसी	६४	१२७
मुन	१९	३९	स्तव्य	{ ७५ ८१	{ १५६ १६८	हहो	७६	१५७
मुधासूति	२४	४७	स्तम्बकर्णि	८१	१६७	हन्तोक्ति	५४	११०
मुनायीर	३०	५७	स्तम्बेरम्	४९	८८	हय	२७	५२
मुनिमौक	७०	१४४	स्तेन	८१	१६९	हर	३५	७०
मुन्द्र	८५	१७७	स्त्री	१४	३०	हरि	{ ६ २७ ३० ३७ ४५	{ १२ ५२ ५७ ७४ १०
मुन्दरी	१५	३१	स्थपुट	८७	१८३	हरिण	६४	१२७
मुपर्ण	६५	१२९	स्थविर	६३	१२४	हरिणी	७३	१५०
मुभट	९०	१९६	स्थाणु	३५	६८	हरिन्	{ ३२ ७२	{ ६१ १४९
मुमन	४०	८०	स्थान	६६	१३३	हरित	७२	१४९
मुर	३०	५६	स्नेह	७७	१६०	हरिद्राभ	७२	१४९
मुग	६१	१२१	स्पर्शा	१७	३५	हरिवाहन	३०	५९
मुवर्ण	४७	९३	स्पष्ट	८४	१७३	हर्ष	६७	१०५
मुष्टु	८३	१७३	स्फीकृत	५२	१०५	हल	७०	१४२
मुहृत्	२०	४१	स्फुट	८४	१७३	हलि	७०	..
मूत्रामन्	३०	५७	स्मर	४०	८०	हव्यवाह	३३	६६
मूत्	१९	३९	स्मृत	५४	१०८	हस्त	५०	१०१
मूनूत	८७	१८२	स्यद	८३	१७२	हस्तगामा	५०	१०१
मूरि	५५	१११	स्यन्दन	५३	१०६	हस्तिन्	४५	८८
मूय	२६	५०	मज्	६०	११९	हाटक	४७	९२
म॒प कार्णि	३०	७७	मष्टृ	३६	७३	हार्द	९१	१९७
मेना	४३	८६	म्बृ	३६	७३	हाला	६१	१२१
मेनानी	३४	६६	मवनी	१२	२४	हिम	{ ५९ ८५	{ ११८ १७९
मतानीपितृ	३५	६८	मोतस्विनी	१२	२४	हिमवत्सुता	३६	७१
मेन्द्र	३०	५६	मोतस्विनीपिति	१२	२५	हिरण्य	४७	९२
मेन्य	४३	८६	स्व	४७	९५	हिरण्यकशिपुसूदन	३७	७५
मोदय	२१	४२	स्वभाव	८८	१८५	हिरण्यगर्भ	३६	७३
मोमवश	७१	१४६	स्वर्	३०	५६	हिरण्यगर्भेतम्	३३	६४
सौवामिनी	९	१८	स्वर्ग	३०	५६			
साध	६७	१३५	स्वर्ण	४७	९३			
साध्य	८७	१७७	स्वसृ	२१	४३			
मोरभ	९१	१९७	स्वान्त	४१	८१			
सौरि	३८	७५	स्वामिन्	{ ५ ३४	{ १० ६७			
सोहाद	९१	१९७						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
हीन	८२	१७१	हृद	८५	१७८	हेमन्	४७	९३
हुताश	३३	६५	हृषीक	६५	१२३	हेरिक	८१	१६९
हुताशन	३३	६६	हृषीकेश	३७	७४	हेषा	५२	१०५
हृकृत	५२	१०५	हे	७६	१५६	हैयगवीन	६१	१२२
हृदय	४१	८१	हेति	४२	८३	हृष्व	५३	१५८



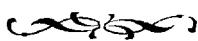
अनेकार्थनाममालास्थशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ			कैवल्य	१००	४१	दाव	९३	१८
अक्ष	९८	२६	कोटि	९६	१५	द्रव्य	१००	४१
अज	९८	२१	क्षीर	९५	१३	द्विज	९५	११
अज्ञान	९४	९	ग			घ		
अथ	१००	३९	गुण	१००	३७	धर्म	१००	४१
अद्वि	९५	११	गुह्य	९६	१५	धातु	०९	३२
अनन्त	९३	४	गो	९८	२७	धिष्ण्य	९४	७
अन्त	९८	२५	घ			प		
अन्तर	१००	३८	घृत	९३	५	पतग	९४	८
अब्द	९७	१७	च			पयम्	९६	१३
अम्बर	९४	७	चर्चा	९७	१७	पर्जन्य	०३	४
अर्ध	९६	१६	ज			पाञ्चजन्य	९५	१०
अर्थ	९८	२४	जात्य	९६	१६	पुद्गल	१००	४२
अशोक	९५	१२	जिन	९३	३	पुन्नाग	९४	९
इनि	१००	४०	जीमूत	९३	४	पुष्कर	९९	२९
			ज्योतिष्	९४	६	प्राय-प्रायम्	९८	२४
क			त			बाधा	९६	१५
कदली	९५	१२	तत्र	१००	३६	ब्रह्मवाच	१००	३७
कम्बु	९५	१०	तल्प	९४	६	भ		
कम्बर	९५	१०	तार	९५	१३	भग	१००	४३
काष्ठा	९६	१४	तार्क्ष्य	९७	१६	भाव	९८	२४
कीनाश	९७	१९	तीर्थ	९९	३१	भुवन	९३	५
कीलाल	९६	१५	द			भूरि	९५	१३
केतन	९४	७	दव	९७	१८			

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

१३५

शब्द	पृष्ठ	श्रोक	शब्द	पृष्ठ	इलोक	शब्द	पृष्ठ	इलोक
म			विवर्णत्	१३	३	सारग	१४	९
मयूर	१४	८	विष	१४	५	सारम	१४	८
	८		वृषाकपि	१३	३	साल	१४	७
रम्भा	१५	११	वैकुण्ठ	१३	४	सिन्धु	१४	७
रस	११	३०	व्यामोह	१६	१४	सुमनस्	१५	१२
राजन्	१५	११	श			सोम	१७	२१
राम	६५	६	शङ्क	१७	१८	स्तम्भ	१७	१७
			शम्भु	१३	३	स्थाणु	१७	१७
लविष	१०१	८८	शिवरित्	१५	११	स्यन्दन	१५	११
ललाम	११	३३	शृचि	२८	२३	स्यान्	१०१	४५
			म			स्वर	१९	३५
वन	१३	५	मत्त्व	१००	३६	स्वैर	१७	१७
वर्णणा	१००	८२	मन्त्र	१६	१४	ह		
वर्ण	११	३४	ममय	१३	३५			
वाम	६८	६	मग्न	०४	९			
विरोचन	१७	२०	मार	०४	८			
						हरि	१८	२८



नाममालाभाष्यस्थशब्दानामकारादिसूची

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अ			अचिग्नशु	९	२०	अन्धकरिषु	३६	४
अश्	२६	२१	अच्युत	२८	१५	अन्धनमम	७२	१२
अशुमान्	२६	२१	अण्डज	८	२८	अपशी	२३	२
अशुमाली	२६	२०	अतिमात्र	८३	१८	अपसर्प	८६	२३
अक्ष	४९	२३	अतिवेल	८३	१८	अपापित्त	३४	१६
आग	६	६	अतिनेत्रप्रसूत	२४	२५	अफल	६	२४
अस्तिनभू	३५	३	अधिघान	४९	८	अठज	२४	२५
अथग्रथन्वन्	३१	२६	अनन्त	२८	१५	अब्द	९	१२
अग्रिय	२१	१८	अनन्ता	४	६	अविजा	३८	२२
अज्ञज	३९	१२	अनदिवर	७७	११	अभिक	१८	२०
अज्ञुर	५०	२४	अनिमिष	३०	१४	अभिस्थ्या	७४	१३
अज्ञुरी	५०	२४	अनीक	४५	२	अभिजन	६३	८
अचला	४	६	अनीकिनी	४४	२०	अभिनव	७५	१७

धनञ्जय-नाममाला

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अभिमन्यी	२३	३	आ	३८	२८	उदन्त	६८	२०
अभियाति	२३	१	आ	५९	१०	उदन्वन्	७५	२
अभिसारिका	१७	१७	आच्छादन	२१	१०	उदन्वन्	१३	२
अभीक	१८	१९	आत्मीय	२१	१०	उद्गत्र	५४	२५
अभीशु	२३	१८	आदित्य	२६	१०	उधस्य	६२	१३
अभ्यग्र	७०	१	आधार	६२	७	उपकण्ठ	६९	२३
अभ्यागम	४५	२	आनन्द	८	७	उपगत	९१	१०
अमुक	१८	२०	आप्न	२१	१०	उपवृत्ति	२८	१०
अमृत	८	४	आप्तरूप	५६	८	उपमा	६८	८
अमृतनिर्गम	२५	२	आभील	८७	१०	उपलब्धि	५५	८
अमृताशन	३०	१६	आमिष	२०	२१	उपहूर	८८	१८
अम्बा	१८	२३	आयत	७६	१८	उपाधि	६८	१८
अग्रुभृत्	९	१३	आयोधन	८१	१	उरविज	५१	२३
अयन	७८	१२	आरात्	६०	२३	उरु	८७	१८
अरण्यश्वा	६४	१४	आरोह	७९	०	उपर्वृद्ध	३८	१०
अरण्यानी	६	२३	आझीविष्य	६५	१			ऊ
अरिष्ट	६२	१८	आशुग	३३	८	ऋभि	१३	१०
अर्चिष्मान्	३४	१५	आथ्रयाश	३८	१८			ऋ
अर्द्धनि	२७	२५	आश्रुत	०९	१०	ऋक्षय	८८	१७
अध	८९	४	आमन्त्र	३०	१	ऋक्षेश	२४	२५
अर्भक	२०	२	आमव	६१	१५	ऋभु	३०	१३
अल्कार	६०	११	आम्कन्दन	८५	१	ऋद्य	६८	१७
अवनमम	७२	१२	आहाय	८	१०	ऋण्डि	८३	२३
अवदान	७६	१५		३		ऋष्य	६८	१७
अवयव	१०	१३	इधूद	१३	८			ए
अविनश्वर	७७	११	इच्चिकिल	१०	१०	एकपदी	७८	१२
अविनीता	१७	१७	इत्वर्गी	७७	१७	एकाल्प	८४	१८
अव्यय	८८	१८	इन्दिन्दिन	८२	९	एण	६४	१७
अश्रुम	६६	१०	इन्दु	२८	२८			ए
अश्मन्	८२	९	इन्द्रावरज	३८	१५	ऐरावती	०	३१
आठीवान्	५१	२३		३				क
असती	१७	१७	ई	२८	२२	कक्षुद्मती	५१	१०
अस्मूर्ण	८०	८	ईशान	३६	८	कक्षपत्र	३०	२०
अमहन	२०	२		उ		कच्छ	१३	५
अमुहत	२३	२	उन्कर्ष	६१	२८	कञ्चुकी	६५	३
अम्बप	२९	२८	उदक	८	४	कटिसूत्र	६०	१०
अम्बज	३०	१३	उद्ग्र	७६	१८	कटीर	५१	१९
अहर्पति	२६	२२						

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

१२७

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
कडव	५१	१६	कालिन्दीमोदर	७१	११	कैतव	२८	१८
कटम्ब	{ ३९ ६३	२१ १२	कास्यपनन्दन	६५	१६	कोरविप्रिय	३७	८
कदर्य	८५	१	काश्यपी	८	७	कोल	४६	१५
कनिष्ठ	२१	१५	किण्व	६६	१०	कोर्विद	५६	२
कन्धग	५०	११	किम्पचान	८५	१	कौण्य	२९	२८
कन्धाह्न	५२	०	किर्म	८६	१६	कौमृतिक	८०	२
कपट	६८	१८	किरि	८६	१५	ऋतुपुरुष	३७	१६
कबन्ध	८	८	किमि	११	२७	ऋव्याद	२९	२८
कमल	८	८	कीनाय	{ २० ७१	२८ ११	कलीब	८५	१
कमला	३८	२१	कीलाल	८	८	क्षणिका	९	२०
कमिता	१८	१०	कीघ	६	१५	धिनिधर	८	३०
कम्बल	६५	२१	कुज	६	६	धीर	८	८
कर्णजप	८१	२१	कुट	६	६	धीरोदातनया	३८	२१
कर्दमज	१०	१२	कुण्डली	६१	१	धुद	{ ८१ ८५	२१
कर्पट	५९	१२	कुध	४	३०	धुत्त	८५	१
वर्वुर	{ २९ ६३	२८ १५	कुन्तल	०१	१	धुत्तक	८५	१
कर्मसाधी	२६	२२	कुमुदविवह्नम्	२७	७	धुत्तक	८५	१
कर्ष	१२	११	कुम्भीनम्	१०	३	धेत्र	{ १६ १९	१५
कलत्र	५१	१८	कुरग	१४	१३	धेत्रज	७९	२०
कलम्ब	३९	२०	कुरगम्	६१	१७	ख		
कल्यान	८७	१९	कुल	६३	२	खग	२६	२१
कलाप	{ ५३ ६०	१४ १९	कुल्या	१२	११	खम	३१	२१
कल्क	६६	९	कुहक	१०	२	खर	८३	१९
कन्मप	६६	१०	कुहर	८९	२१	खर्जर	८३	१९
कन्त्र	६१	१६	कुच	६१	१०	ग		
कन्त्र	६१	१६	कुट	६८	१८	गन्धदारिका	१८	६
कन्याण	८७	१५	कल	१३	०	गन्धर्व	२३	२४
कवि	५६	२	कूरङ्कप।	१२	१०	गन्धोत्तमा	६१	१५
कश्य	६१	१६	कृतकर्मा	७०	२०	गरिम	६२	१७
काकोदर	६५	२	कृतमुख	७०	२०	गर्भपोन	२०	२
काञ्चीपुर	५१	१८	कृतहस्त	७९	२०	गाहेय	{ ३५ ४७	४
कान्ता	१६	१	कृनी	५८	२	गाहेय	१४७	१५
कापिशायन	६१	१६	कृतिवामा	३६	५	गाढपत	३९	२१
कामध्वमी	३६	८	कृषीट्योनि	३८	१५	गिरिक	४७	१५
कार्पेटिक	८०	२	कृष्टि	५६	२	गिरिश	३६	३
कालसार	६४	१७	कृष्णवर्त्मा	३८	१६	गीर्वाण	३०	१३
कालिदृग	४५	१६	कृष्णसार	६८	१७	गडिका	४७	१९
कालिन्दीकर्षण	७०	११	केतु	२३	१९	गुरु	८७	१८

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
गुलिमनी	११	२७	चन्द्रहास	६३	३६	जैवानृक	२५	२
गूळ	४४	२०	चपला	{ ९ १७	२० १७	ज्ञ	५६	२
गूढपात्	६५	१	चय	६३	१२	ज्ञानि	२१	१०
गृहा	१६	१५	चला	३८	२२	ज्योति	६९	२३
गोकर्ण	६५	३	चामीकर	४७	१५	ड		
गोकुल	७८	६८	चिह्नुर	९०	२०	डिम्ब	२०	२
गोत्र	{ ६ १९ ६३	{ ३० १६ ८	चिकित्स	१०	१०	त		
गोत्रभिद्	३१	२६	चित्रक	८६	११	तटिनी	१२	१०
गोपति	{ २६ ३१	{ २० २६	चित्रकाय	८६	७	तटी	१३	७
गोप्य	३८	१८	चित्रपुर्व	३९	२०	तडित्तम्	०	१३
गोप्य	३८	१८	चित्रभान्	{ २६ ३१	२९ ४५	तनया	२०	१८
गोर	५२	६	चीवर	५०	११	तन्त्र	६४	२०
गोरीपुत्र	३५	३	ज			तप्तकी	६०	११
ग्रावन्	८०	९	जगच्चक्षु	२६	२०	तमाल	६६	०
ग्रावा	८	३०	जगत्कर्ता	३७	१०	तमस्त्रिवनी	२५	२५
ग्रीवी	८८	१९	जगन्प्राण	३८	७	तमालपत्र	८३	११
घ			जघन	५९	१०	तमित्र	३८	११
घन	१९	१८	जङ्घा	५१	२२	तमित्रा	३५	११
घनरस	८	३	जनान्तिक	८४	२०	तमी	२५	२५
घस	२६	२८	जन्य	८५	१	तमोधन	२१	१८
घृणि	२३	११	जम्बाठ	१०	१०	तरक्ष	८६	८
घृत	६२	७	जम्बूनद	८०	१५	तरम	२१	११
घृतोद	१३	३	जयन्त	६३	१०	ता	३८	११
घोटक	२७	२५	जयठ	६३	४	तार	६३	१०
घोणा	५१	२	जरन्	६३	५	तारका	६०	१३
च			जलचर	८	२०	तारकारि	३०	३
चक्र	४८	२०	जलमुच्	०	१३	तागपथ	२८	११
चक्रवाल	६३	१२	जलराशि	१३	२	तात्र्य	२३	१५
चक्राह्नवाह	६२	२५	जलशयन	३८	१०	तिग्माशु	२६	१
चक्री	६५	१	जाल	{ ६३ ६७	१३ २३	तिमिररिपु	२६	१०
चक्रु ध्रवा	६०	२	जालक	६७	२३	तीर	१३	१०
चञ्चरीक	६२	१	जालिक	८०	२	तुण्ड	५९	१०
चञ्चला	९	२१	जिघासु	२३	२	तोयनिधि	१३	१
चटुला	०	२१	जिन	३८	१५	त्रयीतनु	२६	१८
चन्द्रकी	६४	३	जिणु	३१	२५	त्रिक	५१	१०
चन्द्रवसु	६३	१५	जिह्वाग	६५	२	त्रिकस्थानक	५१	१०
चन्द्रसज्ज	६०	६	जीर्ण	६३	४	त्रिदश	३०	१२

त्रिदशार्दीषिका	३६	११	दीर्घ	७६	१८	धूमिका	८५	२५
त्रिदिव	२८	१५	दीर्घजडघ	४६	१९	धृणि	२३	१९
त्रिपथा	७८	१५	दीर्घपृष्ठ	६५	२	ध्रुव	७७	११
त्रिपुरान्तक	३६	३	दुर्गंति	९०	१		न	
त्रिप्रचरा	७८	१५	दुर्जन	८१	२१	नक्तमुखा	२५	२५
त्रियामा	२५	२६	दुर्वर्ज	४७	१०	नखरायुध	४६	४
त्रिवर्त्मा	२७	१५	दुर्वर्त्	२३	३	नलिनी	११	२२
त्रिविष्टपमद्	३०	१३	दुश्चयवन	३१	२५	नाक	२८	१५
त्रिमचग	७८	१५	दृक्पृथि	६५	३	नागाननक	६५	१६
त्रिमरणि	७८	१४	देवता	३०	१२	नालीक	८०	१५
त्रिमोता	३६	११	दैवत	३०	१४	नासिका	५१	२
त्र्यध्वा	७८	१४	दोषग्राही	८१	२१	नि शलाक	८८	१८
			दोषज्ञ	५६	२	निकाय	६३	११
			द्यु	२६	२८	निकुरम्ब	६३	१२
दक	८	४	द्युम्न	४८	६	निखिल	८८	२८
दक्ष	७९	२०	द्रज्ज	४९	८	निगम	{ ४९ ७८	८
दक्षाध्वरध्वसक	३६	४	दु	६	५	निंगम्	८८	११
दक्षिणापति	७१	१२	दुष्णा	४२	१	निर्ग्य	९०	१
दण्डधर	७१	११	दुन्ड	४५	२	निर्जर	३०	१२
दण्डाहत	६२	१८	द्वादशान्मा	२६	२२	निर्झिणी	१२	१०
दध्युद	१३	३	द्विजगज	२५	१	निर्व्ययन	८९	२१
दन्तावल	४५	१६	द्विजित्त्व	८१	२१	निवह	६३	११
दन्दशूक	६५	२	द्विगमन	६५	२	निशीथिनी	२५	२६
दमुना	३४	१६	द्वीपवती	१२	११	निशीथिनीनाथ	२५	१
दमृना	३४	१७	द्वीपी	४६	७	निषद्वर	१०	१०
दयिता	१६	१	द्रेषण	२३	२	तून्न	७६	१७
दर्वाकर	६५	२				नृपलद्वम	९०	२६
दल	८०	४				नैम	८९	८
दशमीस्थ	६३	४	धनञ्जय	३४	१६	नेस्ना	५१	१
दस्यु	{ २३ ८२	३ ४	धरणिधर	३८	१४	नैकपेय	२९	२८
दाक्षायणीरमण	२५	२	धर्मगज	७१	११	नैकपेय	२९	२८
दाऽऽडजिनक	८०	२	धर्षणी	१७	१७	नैकपेय	२९	२८
दाव	६	२३	धव	१८	१९	नैऋत	२९	२८
दाशाहं	३८	१४	धाम	२३	१९	न्यङ्क०	६४	१७
दामेरक	४६	१९	धाराधर	९	१२			
दिगम्बर	७२	१३	धीर	५६	१	प		
दिनकर	२६	२०	धूपक	४६	१९	पङ्क	६६	१०
दिनमणि	२६	१९	धूमध्वज	३४	१५	पङ्कज	१०	१२
दिवम्पति	३१	२७	धूमयोनि	९	१३	पञ्चशाख	५०	१९
			धूमल	७२	७	पञ्चानन	४६	४

धनञ्जय-नाममाला

पञ्चेषु	३९	१२	पिण्ड	१९	१६	प्रच्छन्न	८४	१८
पट	५९	१३	पितृपति	७१	११	प्रतन	७६	४
पटी	५९	१३	पोतवासा	३८	१३	प्रतानिनी	११	२७
पट्टसूत्र	६१	१	पोति	२७	१५	प्रतिकिट्ट	६६	१०
पताकिनी	४४	२०	पीयूष	६२	१३	प्रतिज्ञात	९१	१०
पति	१८	१९	पीयूषस्वि	२५	१	प्रतिपक्ष	२३	२
पदजेय	१४	३०	पीलु	४५	१६	प्रतिभय	८७	२२
पदवी	७८	१२	पुञ्ज	६३	१७	प्रतिभा	५५	१७
पदाङ्गद	५३	१४	पुर्वकिनी	११	२२	प्रतिम	६८	८
पदिक	१४	३०	पुण्डरीक	४६	७	प्रतिमोपक	८२	५
पद्म	१४	३०	पुत्री	२०	१४	प्रतीक	१९	१६
पद्धति	७८	१२	पुदगल	१९	१६	प्रतीपदशिनी	१६	१
पञ्चाशन	६५	१६	पुरा	{ १९	१६	प्रत्न	७६	४
पद्मवासा	३८	२१		{ ६७	२	प्रत्यनीक	२३	२
पद्मा	३८	२१	पुरुष्णी	१५	२८	प्रदह	३९	११
पद्मी	४९	१६	पूर्ज	१०	७	प्रद्युम्न	३९	११
पद्मा	७८	१२	पूलक	८२	९	प्रद्योत	२३	११
पद्म	६२	१३	पूर्णप	१४	९	प्रद्योतन	२६	११
पयोधर	९	१२	पुष्क	१०	७	प्रधन	८५	१
पर	२३	२	पुष्कर	{ ८	३	प्रपात	१३	१०
परमेश्वर	३६	३		{ २८	१४	प्रबृद्ध	५६	२
परमेष्ठी	३७	१०	पुष्ट	१०	७	प्रभाकर	२६	२१
परास्कन्दी	८२	६	पुष्पलिद्	४२	९	प्रमदा	१५	२८
परिपन्थी	२३	२	प्रग	६३	१२	प्रलम्बधन	७०	११
परिल्लुता	६१	१५	पूर्वज	२१	१८	प्रवया	६३	४
परिषज्ज	१०	१२	पूर्वदिग्यनि	३१	२६	प्रविदारण	४१	१
परिकार	६०	११	पूरुक	२०	२	प्रवृत्ति	६८	२०
पजंन्य	३१	२६	पूर्वाकु	२५	१	प्रवेणी	९१	७
पर्यवस्थाता	२३	२	पूर्णि	२३	१९	प्राशु	७६	१८
पलाशी	६	५	पूर्णदश्व	३३	८	प्राणाधिनाथ	१८	२०
पल्ल	७७	१४	पूर्णक	३९	२१	प्राळेयाशु	२५	१
पवनाशन	६५	३	पोत	५९	१३	प्रावर	५९	१३
पशु	८०	१५	प्रकट	८४	५	प्रावार	५९	१३
पशुपति	३६	३	प्रकार	६८	८	प्रीति	५४	२३
पाशुला	१७	१७	प्रकाश	{ ६८	८	प्रेत्ता	५५	७
पाक	२०	२		{ ८४	५	प्रेतपति	७१	११
पाकशासन	३१	२७	प्रकोष्ठ	५०	१६	प्लवङ्गम	६	१५
पानीय	८	४	प्रस्त्र	६८	८	फल	६	२३
पार्वतीनन्दन	३५	४	प्रग्रह	२३	१९	फलक	५१	११
पिच्छ	५१	१०	प्रचलाकी	६४	३			

ब			भुवन	८	४	माधव	६१	१६
बद्धभूमिक	६७	७	भूच्छाय	७२	१३	माधवक	६१	१५
बद्ध	८०	१४	भूतधात्री	४	६	माध्वीक	६१	१७
बन्धु	३८	१५	भृतेग	३६	३	मानसोकम्	६२	२३
बल	७०	११	भैरव	८७	२२	माया	३८	२२
बलमृदन	३१	२५	भोवता	१८	१९	मायावी	८०	३
बहिर्ज्योनि	३४	१५	भोगी	६५	२	मायी	८०	३
बहूल	३८	१४	भ्रूण	२०	३	मितम्पत्र	८५	१
बाडिश	८०	१०				मित्र	२६	११
बाणामन	४२	१	म			मित्र	६८	१८
बाल	{ २०	२	मञ्जुकेश	३८	१३	मिहिका	८५	२५
	{ ८०	१४	मण्डन	६०	११	मिहिर	२६	२०
बालिङ	८०	१५	मण्डल	६३	१२	मुकुन्द	३८	१४
बाटूलेय	३५	४	मति	५५	८	मुदिर	९	१३
ब्रक्काग	८७	२	मतिमान्	५६	३	मूर्तिज	१९	२०
बृद्धि	५५	८	मत्स्य	८	२८	मधंज	९०	२९
बृहत्	८७	१८	मधु	६१	१५	मृगदग	४७	२
बृहदृभात्	३४	१६	मधुकर	४२	८	मृगरिपु	४६	४
ब्रह्माचारी	३५	४	मयुमख	३९	१२	मृगाह्न	२५	२
ब्राह्मी	५२	२०	मनमिज	३९	११	मृगार्णि	४६	७
			मनीमी	५६	२	मृणालिनी	११	२२
म			मन्त्रज	८७	२	मृदुल	७५	१४
मग	२६	२०	मन्या	५०	११	मृद्य	४५	१
भयानक	८७	२२	मयूख	२३	१९	मृद्वीक	६१	१७
भर्ग	३६	४	मरालवाह	६३	२५	मेवपुष्प	८	४
भर्ता	१८	१९	मरहत्	३०	१३	मेधा	५५	८
भर्त्तरी	३८	२२	मस्त्रमन्	२८	१४	मोषक	८२	५
भल्ल	३९	२१	मल	६६	१०			
भल्लि	३९	२१	मलिम्लुच्च	८२	४	य		
भषण	४७	२	मस्तक	५२	९	यथार्थवर्ण	८७	१
भमल	८२	९	महानेजम्	३५	४	ययु	२७	२५
भानमान्	२६	२१	महावल	३३	८	याज्य	६२	७
भास्कर	२६	१९	महाबिल	२८	१५	यातयाम	६३	४
भास्त्रान्	२६	२०	महारजत	४७	१५	यामिनी	२५	२६
भीम	{ ३६	८	महामेन	३५	४	यथ	६३	१२
	{ ८७	२२	महिला	१६	१	यूनी	१५	२३
भीषण	८७	२२	महीरह	६	५			
भीष्म	८७	२२	महेला	१६	१	र		
भीष्मसू	३६	११	मा	{ २५	२	रजनीकर	२५	१
भुजङ्कुभुक्	६५	३		{ ३८	२२	रत्नगर्भा	४	६
			माणवक	२०	३	रत्नवती	४	६

रथाङ्गपणि	३८	१४	वरयिता	१८	१९	विल	८९	२१
रमणी	१५	२८	वरला	६४	११	विलेशय	६५	२
रमा	३८	२२	वराक	८५	१	विवसन	५५	१०
रवण	४६	१९	वरिष्ठ	२१	१८	विवस्वान्	२६	२०
रहिम	२३	१९	वर्णिनी	१५	२८	विविक्त	८४	१८
रसा	४	६	वर्णनी	७८	१२	विशारद	५६	३
राक्षस	२९	२७	वर्षीयान	२१	१८	विशिख	३९	२०
रागसूत्र	६१	१	वर्ष्म	१९	१६	विश्वम्	८८	६
राजसर्प	६५	३	वर्हण	५२	२८	विश्वसप	३८	१३
राजा	२४	२४	वशा	१६	१	विश्वाम	८८	६
रात्रि	२५	२६	वस्ति	२५	२६	विष्टर	६	६
राशि	६३	१२	वमु	{ २३	१९	विष्टरभवा	३८	१५
रिष्य	६४	१७		{ ३४	१५	विष्णुपद	२८	१५
षष्ठम्	४७	१५	वस्त्र	५९	१२	विष्णुपदी	३६	११
सम	४७	१५	वस्त्र	५९	१०	विष्णुर्य	६५	१६
सूचि	२३	१९	वत्तिरेता	३६	४	विष्वकोन	३८	१३
रुच्य	२९	२२	वातप्रभी	६४	१७	विसर	६३	११
सु	६४	१७	वायदेव	३६	८	विसार	८	२९
सोक	८९	२२	वामनेत्रा	११	२८	विस्तीर्ण	८७	१८
सोचि	२३	१८	वार्गिद	९	१३	वीचिमाली	१३	२
सोधोवक्ता	१२	११	वार्ता	६८	२०	वीणा	११	७
सोप	३९	२१	वामनेयी	२५	२६	वीतहोत्र	३४	१६
सोलस्व	४२	९	वामिता	१५	२८	वीर्ति	२७	२५
सोहिणीवत्तम्	२४	२५	वाम्नाराष्ट्रिनि	३१	२६	वीरु	११	२७
ल								
लध्य	६८	१८	विकर	६३	११	वृथ	६	५
लध्यवर्ण	५६	१	विकिर	२९	१७	वृजिन	११	१
लवणोद	१३	२	विकर्नन	२६	२०	वृत्तान्त	७५	०
लहरी	१३	१७	विक्रान्त	९०	१८	वृत्तारि	३१	२५
लेख	३०	१३	विग्रह	{ १९	१५	वृद्ध	{ ५६	२
लेड्वह	४७	२		{ ४५	२		{ ६३	४
व								
वक्षोऽह	५१	१४	विज्ञन	८४	१८	वृद्धश्च	३१	२५
वज्रधर	३१	२६	विज्ञन	८४	१८	वृद्धाश्च	३०	१३
वटु	२०	३	विवृथ	३०	१३	वृद्धाश्च	३०	१३
वनमाली	३८	१५	विभव	४८	७	वृद्धाश्च	३८	१५
वनीक्ष	६	१५	विभा	२३	१९	वृषाकपि	३८	१५
वपा	८९	२२	विभावरी	२५	२५	वृषाक्ष	३६	५
वयसी	२०	१६	विरोक	२३	१९	वृषाक्ष	९१	७
						वैणी	९१	७
						वैकुण्ठ	३८	१४
						वैजयन्त	४३	१०
						वैवस्वन	७१	११
						व्यक्त	५६	३
						व्यञ्जक	८०	३

व्याल	६५	१	शुक्लापात्र	६४	३	सदेश	६९	२३
व्यूह	६३	१३	शुचि	३४	१५	सन्	४६	२
व्योमकोश	३६	३	शुष्ठा	६१	१५	समातन	३८	१५
व्रज	६३	११	शुपि	८९	२२	सनामेय	७७	१०
व्रात	११	२७	शृग	२६	२०	सनीड	६९	२३
श			शोक	२३	२०	सन्निकट	७०	१
शकली	८	२८	शेवलिनी	१२	११	सन्निभ	६८	८
शक्तिपाणि	३५	३	शैल	४	३०	सर्पिण्ड	२१	१०
शतवृति	३७	१०	श्यामकण्ठ	६४	३	सन्नाइव	२६	२१
शतहदा	९	२०	श्राद्धदेव	७१	११	सभामद	५६	७
शतानन्द	३७	१०	श्रीकल्प	३६	३	सभास्तार	५६	७
शबल	६४	१७	श्रीनन्दन	३९	११	समय	३	१४
शम	५०	१९	श्रीपर्णि	३८	१३	समर्यादि	६०	२२
शमन	७१	११	श्रीवित्साङ्क	३८	१३	समवाय	६३	१२
शम्बुर	६८	१७	श्वलक	७४	१३	समायाया	७८	१३
शम्भु	३६	३	श्वभ्र	८१	२२	समानोदर	२१	१०
	३८	१५	श्वेत	४७	१९	समानोदर्य	२१	२०
शय	५०	१०	श्वनच्छुद	६३	२३	समिति	४५	२
श्वर्गी	२५	२५	श्वेतगोचरि	२५	१	समीक	६५	१
शतकी	८	२९	प			समीर	३३	८
शयव्यज	१३	२	पूर्णरण	४२	०	समुद्र	६३	१२
शशाङ्क	२५	१	पञ्चदिग्भ्र	४२	९	समुद्राय	४५	२
शशांगेवर	३६	३	म			समुद्रकाल्पा	१२	१२
शाखामृग	६	१५	मय	५५	१	समुद्रनवनीत	२५	२
शानकुम्भ	८७	१५	गरवा	५५	८	समूह	६३	११
शात्रव	२३	२	नर्यावान्	५६	३	सम्मद	४५	३
शाद	१०	१०	सगर	४५	३	सम्मिन्	०५	२
शारिवा	११	२७	सविति	५५	८	सरम्बर्ता	१२	११
शाल	६	५	सवेग	८०	१३	सरिहर्ग	२६	११
शालावृक	४७	२	ग्रज्ञान	५९	१३	सरीमूळ	६५	१
शाव	२०	३	ग्रन्थाय	६७	२	सर्पिणि	६४	३
शाश्वत	७७	११	मस्फाट	४५	२	सर्व सहा	८	७
शाश्वतिक	७१	११	मथा	२१	२	सर्वज्ञ	३६	३
शिक्षित	७९	२०	मग्नि	२१	१०	मवतोमुम्	८	८
शिवावल	६४	३	महर्म	२१	१०	मलि	८०	१०
शिङ्जिनी	५३	१३	मङ्गलपञ्चमा	३९	११	सविता	२६	१९
	६०	११	सञ्चय	६३	११	महचरा	१६	१५
शिरमिज	९०	२९	सत्र	६	२३	महचरी	१६	१५
शिशु	२०	२	सदानन्द	७७	११	महधर्मचारिणी	१६	३५
शीर्ष	५२	१						

सहस्रकिरण	२६	१९	सुरवत्तम्	२८	१५	स्वादूद	१३	३
सहाय	१४	३०	सुरसरित्	३६	१०	स्वापनेय	४८	६
सागराम्बरा	४	६	गुरोद	१३	३	स्वैरिणी	१७	१७
सामाजिक	५६	७	सूर	२६	१०		ह	
सामि	८०	४	सेक्ता	१८	२०	हम	२६	२१
सायक	३९	२१	सेवक	१८	३०	हमका	५३	१४
सार	४८	६	सैरिन्धी	१८	१८		२६	२०
सारङ्ग	६८	१७	सोदर	२१	१०	हरि	{ ३३	८
सारस्वत	६०	१९	स्कन्द	५०	२१		७१	११
साथ	६३	१२	स्तनयित्वु	९	१२	हरिण	७३	९
मिह	४६	४	स्तन्य	६२	१३	हरिदश्व	२६	२१
मिड्घनी	५१	२	स्तोम	६३	१३	हरिप्रिया	३८	२१
मिचय	५९	१२	स्थविर	३७	१०	हरिमान्	३१	२७
मिन	४७	१९	स्थानीय	४९	८	हरिह्रय	३१	२६
सिनाश्र	६०	५	स्थिरा	४	८	हर्यल	४६	४
सिनेतरगति	३४	१५	स्तिर्व	२६	८	हर्वि	६२	७
मीता	३८	२२	स्पशन	३३	८	हव्य	६	२३
मुकुमार	७५	१४	स्पश	८७	१	हारहर	६१	१६
मुर्चारिता	१७	९	स्पृह्य	६२	७	हिमवालु	६०	५
मुधामूर्ति	२५	२	स्पष्टा	३६	४	हिरण्य	४८	७
मुधी	५६	२	स्त्रोतम्	१२	११	हच्छय	३९	१२
मुपर्णकेतु	३८	१४	स्वजन	२१	१०	हेपण	५२	२६
मुपर्वा	३०	१८	स्वयम्भू	३७	१०	हैपा	५२	२६
मुमन्	३०	१२	स्वराट्	३१	२६	हादिनी	{ ९	२०
मुरज्ज्येष्ठ	३७	१०	स्वर्गीकम्	३०	१२		११२	११
मुग्निम्नगा	३६	११	स्वादुमा	६१	१५	हैपा	५२	२६

यौगिकशब्दानुक्रमणिका

अस्तिपर्यायभूत नेनानी	६६	जित्यापर्यायिकर वल	१४२	मनुष्यपर्यायपति नृप	१४
धैर्यपर्यायजयी जिन	१३१	अपाद्यादि ध्वजाद्यन स्मर	८४	मयूरपर्यायपति गुह	१२६
अद्वितिशब्दान्परं सुनपर्ययि-		तामरसपर्यायवती विसिनी	२३	मेघपर्यायपथ आकाश	१३
प्रयोगे देवनामानि	५६	दिनपर्यायिकर सूर्य	५०	गत्रिपर्यायिचर राखस	५५
आकाशपर्यायिग खग	५४	देवपर्यायपति इन्द्र	५७	लक्ष्मीपर्यायिपति हरि	७६
आकाशपर्यायचर खेचर	५४	देहपर्यायभव सूत	३९	वायुपर्यायपथ आकाश	५३
उड्डायार्यपति चन्द्र	८८	चुपर्यायधुनो गगा	७१	वार्षपर्यायपथ महस्य	१६
काठादिनामत पर पालप्रयोगे		भनपर्यायदायक कुवेर	९६	वार्षपर्यायिवि अम्बुधि	१६
प्रयोगे अम्बुधप्रयोगे च		धीनामवजित मूर्ख	१६६	वार्षपर्यायिद्भव पदम्	१६
दिग्याल नामानि	६१	नागपर्यायारि मृगेन्द्र	९०	वित्तपर्यायपति कुवेर	१६
कायपर्यायगह्नि मन्मय	७७	निशापर्यायकर चन्द्र	४८	विधिपर्यायपुत्र नारद	५३
वार्मुकपर्यायकोटि जटनी	७९	पन्नगपर्यायवैरि गरु	१२८	विधिपर्यायचर वनेचर	१३
किरणवाचिभ्य पूर्व शीतशब्द-		पणिपत्प्रयायज कमलम्	२०	विष्टपर्यायपति जिन	११३
प्रयाग चन्द्रनामानि,- यथा-		पवनपर्यायपुत्र भीम	६६	शम्पापर्यायपति अम्बुद	१९
शीतकिरण	४६	पवनपर्यायपुत्र हनुमान्	६३	शैलभग्यादिधरः हरि	७६
किरणवद्वेष्य पूर्वम् उष्णशब्द-		पवनवाचिसवा अग्नि	६४	मेनानीपर्यायपिता शङ्कुः	६८
प्रयोगे सूर्यनामानि , यथा-		पुष्पपर्यायशर म्मर	८०	ओतस्विनीपर्यायिपति:-	
उष्णकिरण	४६	पुष्पपर्यायाम्ब्र म्मर	८०	अधिधि	२४
कृष्णपर्यायपुत्र मन्मय	७७	प्रस्वपर्यायिवान् गिरि	९	स्वर्गपर्यायपति इन्द्रः	५७
गङ्गानदीश्वर मिन्थ	७१	भूमिपर्यायधर शैल	७	स्वर्गपर्यायवस्त्र त्रिदशः	५७
चिनापर्यायहारि मनोहरम्	१७८	भूमिपर्यायपति नृप	७	स्वान्तपर्यायोद्भव मा॒ः	८१
जाङ्गलपर्यायप्रिय राखम	५५	भूमिपर्यापहृत वृक्ष	७	हिमपर्यायिकर चन्द्र	१७९

अनेकार्थनिघण्टुगतशब्दानामकरादिसूची

अ		इ		केसरिन्	१०४	८५		
अस	१०४	७६,७७	इडा	१०२	२९	कोकिला	१०४	८२
अगारि	१०४	१०५				कोटरस्थ	१०५	१४९
अङ्ग	१०३	४०	उक्तन्	१०४	१०६	कोमल	१०२	२६
अज	१०२	३४,३५	उदवया	१०५	१३०	कौशिक	१०२	१३
अदिति	१०२	२९	उदार	१०५	१२९	ऋब्य	१०४	९५
अध्यात्म	१०१	१२३	उष्णीप	१०४	८८	क्षता	१०३	३८
अध्यूहा	१०२	३०	उत्ता	१०४	१०७	क्षय	१०३	४५
अनन्त	१०२	३७				क्षर	१०२	२१
अनिमिष	१०२	४	ऋत	१०४	७५			
अपाचीन	१०४	९३				ख	१०३	६४,६५
अवद	१०३	५७	ओ			ग		
अमृत	१०२	२२	ओषण	१०८	७५	गो	१०२	२
अन्धर	१०२	११				गोलक	१०५	१३३
अम्वरीष	१०३	६१	क	१०२	३४	ग्रावाग	१०३	७८
अर्क	{ १०२	१५	ककुप्	१०३	४४			
	{ १०४	१४	कवन्ध	१०४	८८	घ		
अलान	१०४	८६	कम्बु	१०२	११	घन	१०३	४६,४७
अवदात	१०३	५५	कर	१०२	२४	घनाघन	१०४	९३
अच्चारोह	१०४	९४	वर्षक	१०४	९०	घृत	१०२	२३
असित	१०३	६७	कल	१०४	८६			
असुर	१०३	४८	कलभ	१०४	१०८	चटक	१०४	१०४
			कलुप	१०४	१०८	चमृ	१०३	८८
आकृत	१०४	९८	कानीन	१०४	९०			
आक्रन्द	१०४	९५	किलास	१०४	१०४	छ		
आगोप	१०३	४०	कीरक	१०५	१२६	छेद	१०४	८६
आडम्बर	१०४	११२	कीनाग	{ १०३	५३,५४			
आत्मज	१०३	५३		{ १०५	१२१	ज		
आदित्य	१०३	७१	कीलाल	१०२	२५	जम्बुक	१०२	१४
आर्वि	१०४	१०२	कुण्ड	१०५	१३३	जीमूत	१०३	५८
आगतन	१०४	७८	कुण्डाशी	१०५	१३८	ज्योति	१०३	५५,५६
आर्य	१०४	९११	कूल	१०३	३६			
आलबाल	१०४	१०३	कृतघ्न	१०५	१२३	त		
आलान	१०४	९२	कृष्ण	१०२	२२	तपस्	१०५	१३१
आहत	१०४	८९	केतु	१०२	१६	तमोनुद	१०२	१६
						ताक्षी	१०३	५०

निलक	१०६	८४	पषड	१०४	९१	भार्या	१०१	११८
तुल्य	१०६	१०४	पतङ्ग	१०२	१२	भाव	१०४	८७
तंणी	१०३	५१	पदकृत्	१०६	१०१	भास्कर	१०२	१२
नेजम्	१०५	१३१	पद्मा	१०४	७७	भुवन	१०२	२५
तोदन	१०६	९२	पथ	१०२	१९	भृगिव	१०५	१४०
तोयद	१०३	८८	परचित	१०५	१३५	म		
त्रियामा	१०४	१०९	परमेष्ठी	१०६	१००	मञ्जूरा	१०१	८५
विशङ्क	१०३	६८	परिचर्य	१०६	८१	मण्डूक	१०८	८९
द			पर्जन्य	१०३	६०	मनवायिनी	१०५	१३९
दध	१०३	७०-७१	पलाश	१०४	१०६	मधु	१०३	६३, ६४
दक्षिण	१०४	९७	पवन	१०४	१११	मन्थन्	१०२	१५
दविट	१०४	९९	पानीय	१०६	१०२	मन्द	१०५	१२१, १२३
दान	१०६	९२	पाप	१०४	९९	मन्दिर	१०६	१०६
दानन	१०५	१२४	पात्तचन्द्र	१०२	११	मधूसूख	१०२	८७
दीघ	१०४	११०	पिण्डह	१०८	८३	मलिमठुन	१०३	५२
दुश्चर्वर्मन्	१०४	००	पिण्डित	१०६	९१	मस्कर	१०४	१०७
दोला	१०८	१०४	पुण्डिलोक	१०५	११७	महेषाम	१०१	११८
द्विज	१०३	५२	पुलित	१०८	८२	माया	१०३	६३
ध			पुकर	१०३	३६	मूष्ट	१०८	९६
धनञ्जय	१०२	९	पुण	१०८	७८	मेचक	१०४	८३, १०६
धार्तराष्ट्र	१०३	६५	पुस्त्व	१०३	६२	मिल्ल	१०४	९१
धिष्ण्य	१०२	१८	पृष्ठाही	१०४	१०७	य		
न			पौलस्त्य	१०३	५३	प्रजापति	१०३	३८
नवुल	१०३	६७				प्रम	१०३	६८
नत्व	१०५	१५१, १५२	प्रथान	१०३	५६	गुदधशोषण	१०५	११७
नाग	१०३	४९	प्रगा	१०४	११३	यूथप	१०५	११९
नापित	१०४	१०१	प्रभाकर	१०३	६६	यूथपूथ्यम्	१०५	११९
नास्तिक	१०५	१३२	प्रासाद	१०३	४६	र		
निकष	१०६	८४	प्लव	१०३	४५	रहम्	१०४	१०३
नितम्ब	१०३	७२				रजम्	१०३	७२
निरुपद्रवा	१०५	१२८	फेरवाहिनी	१०३	९४	रत	१०४	८३
निरुपस्करा	१०५	१२७				रत्न	१०४	१०९
निविड	१०४	८९	ब्रहु	१०४	९९	रदन	१०४	९२
नूसिंह	१०५	१२०	बीभत्स	१०२	९	रमा	१०३	७४
न्यग्रोधपरिमण्डला	१०५	१४३				राजन्	१०२	७
प			भ			राजीवलोकन	१०५	११४
पङ्कज	१०४	८१	भगवन्	१०५	१२९	राजीवलोकना	१०५	१४३
			भासिनी	१०५	१४२	राम	१०२	३२, ३३

घनञ्जय-नाममाला

रावण	१०५	१४१	विभावगु	{ १०२	८	शाक	१०४	९६
रीहिणेय	१०२	३१	विम्बोष्ठी	१०५	१३७	शेषुपी	१०४	९३
ल			विरोचन	१०२	१०	शेष	१०२	३२
लक्ष्म	१०३	६९	विलास	१०४	८७	शैलुष	१०४	१००
लक्ष्मण	१०३	६९	विशाल	१०४	९०	पड़वद	१०५	१३३
ललना	१०५	१३७	विष	१०२	२४	म		
ललाम	१०४	८१	वृकोदर	१०५	११६	सवर	१०२	२७, २८
ललिता	१०५	१३९	वृत्तिन	१०४	१०९	सत्र	१०४	१०३
लबली	१०४	८१	वृप	१०२	३०	सत्वर	१०४	८३
लावण्य	१०४	१०१	वृषा	१०२	३१	सदन	१०२	२६
लुलाय	१०४	१०६	वेहन्	१०४	१०७	सद्म	१०२	२७
लंखा	१०३	६१	वैकर्तन	१०५	११५	सत्पर्यि	१०२	१७
व			व्यक्तिवादिन्	१०५	१२०	सप्ताश्व	१०५	१४८
वक्रवक्र	१०४	८२	व्यञ्जन	१०४	११२	समाख्यि	१०१	१२४
वन्ध्या	१०४	१०७	व्याधि	१०४	१०२	समाधिम्य	१०५	१२५
वरवर्णिनी	१०५	१३८	श			समाट्	१०४	१०९
वरगह	१०२	३३, ३८	शङ्कु	१०२	१४	सांद्र	१०३	४२
वस्थ	१०३	४७	शङ्कुकण्ठी	१०५	१४५	सारग	१०३	७३
वर्षभू	१०४	८९	शम्भु	१०२	१३	मार्गम	१०२	७
वलाहक	१०३	९७	शराह	१०५	१३१	सित	१०३	६६
वल्लरी	१०४	११३	शरीरज	१०२	३९	मुमना	१०४	११३
वमा	१०४	१०७	शर्वरी	१०३	४२	स्यविष्ट	१०६	९९
वमु	{ १०२	१८	शव	१०२	२३	स्यन्दन	१०२	२१
	{ १०३	७३	शिखरिन्	१०३	५१	स्वर्	१०३	४३
वाजी	१०४	७९	शिविन्	१०२	५	ह		
वाम	१०३	३९	शिव	१०२	२०	हम	१०२	६
वलेय	१०३	५०	शिवा	१०४	९०	हरि	१०८	८०
वासर	१०३	४१	शिलीमुख	१०३	६०	हिमारानि	१०२	८
विद्वान्	१०३	६१	शीत	१०६	१५३	हिल	१०४	१०८
विषञ्ची	१०४	११२	शुक्रा	१०४	८१	हर्ष	१०४	११०
विपिन	१०६	१५२	शुचिकृत्	१०३	५९			

उद्धृतवाक्यानामकारादिसूची

अङ्गनान्व तदेक्षणा	५७	गमो अरहंताण	१	भर्ता सगर एव मृत्यु वसनि	१५
अतिप्रलापभावेन	६१	ततु हैङ्गवीन यद्	६१	मान्यत्वादालविद्याना	२
अनशनावमौदर्यवृत्ति-	२	तत्सदेहे गते ताभ्या	५८	मुदत्ति मिथीभवन्ति	१२
अमूययागम्य निशाम्य या	३३	दुज्जण सुहियउ होउ	२२	य पापपाशनाशाय	२
आत्मनि भोक्षे ज्ञाने	५२,५८	दुर्जनाना विनोदाय	६३	य उत्पन्न पुनाति वश	१९
आपो नारा इति प्रोक्ताः	३७	दित्र्यव्येऽमिन पुराण-	२५	यत्मर्वात्महित न वर्णसहित	५९
आयुः पीष्यकुण्डे स्मृति-	६२	न कु पृथिवी पिपति	१२	रेषणात् क्लेशराशीनाम्	२
आहुनेत्रोत्त्वमत्रे सृत-	२४	नक्षत्रमृक्ष भ तारा	२५	लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकमुगद१	
उड्डीय वच्छित यान्ति	१४	नक्षत्रे वाक्षिमध्ये च	२५	वर क्षिति पाणि	२२
एको रथो गजस्त्रको	४५	नभन्तु नभसा सार्ध	१	वणिगमो गवेन्द्रादौ	
ऐव्यर्यस्य समग्रम्य	६५	नवमे प्राणसन्देहो	५४	२३, २९, ४६ ५९, ६५	
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च	३४	नामाकण्ठमुरस्तालु		वाज वाजस्तु पक्षेऽपि	२७
काश्यमिन्युच्यते तेजः	५७	निष्पद्धरस्तु जम्बाल-	१०	वाहो युग्म घनो वाहो	२७
कियती पञ्चसहस्री	९६	निषादर्वभगान्त्वार	५३	वृषाकपिवस्मिदेवे	३४
कुमारकाले आमलकी-	५५	पञ्चमे दह्यते गात्रम्	५४	श्यामा गत्रिस्तु विद् श्यामा	२५
कोकिलाना स्वरो रूप	५५	पञ्चाचाचारतो नित्य	५५	वड्ज मयूर ब्रुवते	५२
वत्तचित्प्रवृत्ति वत्तचिदप्रवृत्ति	६०	पट्टन शकटैर्गम्य	४९	मत्य द्वारे विहरनि समं	१४
गिरिकन्दरदुर्गेषु	३२	पत्रिपत्रितग-	२९	सञ्चियोनी मुरज्जाया	९६
गोमवे सुरभि हन्यात्	५६	पञ्च्यज्ञस्त्रिगुणे सर्वे	४४	सर्वप्रस्य प्रयत्नेन	९६
गी स्वरं सप्रवृष्ट्यान्मा	५८	पुण्डरीक सिताम्बुजम्	१०	स व्याख्यानि न शास्त्रम्	३
गोरीः कामदुषा	५२	पुष्पसाधारणे काले	५३	स्वस्थे नरे सुखासीने	९६
चतु षष्टिकलाभिज्ञा	१८	प्रथमे जायते चिन्ता	५४	स्वानुभूत्ये भवेद्	१
चत्वार पृथ्वशाजा	५८	प्रगस्या न नमस्यापि	२२	हावो मुखविकार स्यात्	१७
जानमात्रोऽय भगवान्	३१	प्रायश्चित्तविनयवैवृत्य	२	हिसानृतस्तेया-	२
				हिंणगर्भमभवत्	३७

भाष्यगता ग्रन्थाग्रन्थकाराश्च

अकलङ्का	१	द्विसन्धानकाव्यम्	३३	विद्यानन्दी	१
अनेकार्थविनिमञ्जरी-		द्विमन्यानभाष्यम्	६१	शब्दभेदः	१
{ २६	२१	नाममाला	७२	शाश्वतः	२५
{ २७	१३	पद्यनन्दिशास्त्रम्	१	श्रीभोज	२५
अमरकोषः	८७	पूज्यपाद	१	समन्तभद्र	१
	{ १०	बहुत्रतिक्रमणभाष्यम्	५८	सूक्तिमुक्तावली	२२
	{ १२	भरतनाटकम्	५३	सोमनीतिः { ४८१९, २४, २७	
अमरसिंहः	{ ४३	भारतम्	४४	{ १९	२४
	{ ५३	महापुराणम्	{ ५७	हलायुधः { १०	२६
अमरसिंहानममाला	२९	२२, २३	२२, २३	{ १२	२४
अमरसिंहभाष्यम्	१९	५८	२८		
आशाधरमहाभिषेकः	६२	१५	हलायुधभाष्यम्-		
इन्द्रनन्दिनी तिशास्त्रम्	५५	{ २	२९	५	
कल्याणकीर्ति	१	१४	१४	हैमः	९४ १०
क्षीरस्वामी	६२	२४	२५	हैमानमाला	२७ १९
इल्लिङ्कः	२९	{ ६३	१५	हैमी	९६ १७, २५, २७
		१५		हैमीनाममाला	३४ १२

सङ्केतविवरण

अ० चि० अभिधानचिन्तनामणि
 अनेका० म० अनेकार्थसङ्ग्रह
 अम० को० अमरकोश
 अम० को० की० भा० अमर-
 कोश क्षीरस्वामी भाष्य
 अमर० अमरकोश
 अ० म० अनेकार्थसग्रह
 उ० मू० उणादि सूत्र
 कल्प० को० कल्पद्रुकोश
 का० उ० कातन्त्र उणादि
 का० ह० उ० कातन्त्र रूपमाला
 उत्तरार्थ
 का० ह० पू० कातन्त्र रूपमाला
 पूर्वार्थ
 का० ह० पू० मू० कातन्त्ररूप-
 माला पूर्वार्थसूत्र

का० मू० कातन्त्रसूत्र	यश० ति० आ० क० यशस्तिलक
की० भा० क्षीरस्वामिभाष्य	आश्वास कल्प
की० स्वा० क्षीरस्वामी	वि० को० का० विश्वलोचनकोश
जन० सम० जनपदममुहेश	कान्तवर्ग
जै० मू० जैनेन्द्रसूत्र	वि० लो० विश्वलोचन कोश
त० सूतत्वार्थसूत्र	श० च० शब्दार्थवचनिदिका
नीतिसा० नीतिसार	श० च० मू० शब्दार्थवचनिदिका
नी० वा० सम० सू० नीति वाक्या	मूत्र
यामृत ममुदेशसूक्ति	वा० कारिका शाकटायन कारिका
प०प० पद्मनन्दिपद्मचविशतिका	शा० मू० शाकटायन सूत्र
पा० उ० पाणिनि उणादि	सुर० क० सग्स्वनीकण्ठाभरण
पा० गणसू० पाणिनि गणसूत्र	सार० समा० मू० साग्मवत
पात० भाष्य पातञ्जलमहाभाष्य	समास मूत्र
पा० मू० पाणिनिसूत्र	हे० च० हेमचन्द्र
भो० उ० भोजउणादि	हे० ग० हेमशब्दानशामन
मे० को० वा० वा० मेदिनीकोश	
वानवर्ग	

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ प० अशुद्धयः शुद्धयः पृष्ठ प० अशुद्धयः शुद्धयः
७ १८ सर गर ६५ ९ विषाशय विषक्षयः
५३ २ स्तमित स्तमित ६९ २ निकुरो निकरो
५८ २१ मुक्तोषा- मुक्तोषा- ७१ २१ श्वेतो श्येतो